ॐ श्रीमती वेलाबाई तरफ

भूमिका ।

जब कि योगेश्वर स्वामीजी महाराज श्री १०८ श्री शिवगणजी ने अपनी रचीहुई साधारण धर्म्म की उर्दू पुस्तक कृपा करिके मेरे पास भेजी तो मैं ने उस को आद्योपान्त कई बार पढ़ा और अवसर मिलने पर अपने कई मित्रों को भी सुनाया जिन्हों ने उस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की और शोक प्रकाश किया कि ऐसी उत्तम पुस्तक हिन्दी भाषा में नहीं है जिस से वे और भारत वर्ष के सम्पूर्ण हिन्दी भाषा के रसिक लाभ उठा सकें मेरे परम मित्र राजा साहिब श्री विजयसिंहजी ने मुझ से अपनी इच्छा प्रगट की कि आप उस का हिन्दी भाषा में उल्था करें निदान उन के कथन और श्री स्वामीजी महाराज की आज्ञा से यह साधारण धर्म्म का हिन्दी अनुवाद छपवा-कर पाठकों की भेटकरताहूं और आशा करताहूं कि सब सज्जन पुरुष इस को पढ़कर और इस की शिक्षाओं पर चलकर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का लाभ उठावेंगे ॥

इस अविद्या के समय में धर्म्म का अर्थ सर्व साधारण मनुष्यों ने थोड़ा सी संध्योपासन करलेना और दरिद्रियों को कुछ दान देदेना ही समझ रक्खाहै यह बड़ी भूल है, जो लोग इस पुस्तक को पढेंगे उन को ज्ञात होगा कि धर्म्म का क्या अर्थ है और किस प्रकार से वह सब को प्राप्त होसक्ताहै

धर्म्म प्रचारक जितने पहिले वा इन दिनों मे होचुकेहैं उन की यही इच्छा रहीहै कि जितने मत उन से पहिले विद्यमान हैं

वे सब नष्ट होजावें और केवल उन का ही मत संसार में फैल जावे हज़रत **मोहम्मद,** स्वामी **शंकराचार्य्य गुरू नानक** और स्वामी **दयानंद** सरस्वती इत्यादि का जीवन चरित्र पढ़ने से जान पड़ताहै कि जो ढंग उन्हों ने अपने मत फैलाने का निकाला उस में दूसरेके मत का खंडन करना ही अपना मुख्य उद्देश समझा और इस उद्देश का परिणाम जो हम देखतेहैं यह हुआ कि सब मतों के एक होजाने के बदले मतों की संख्या में एक मत की और अधिकता होगई, हमारे स्वामीजी महाराज का ढंग इन पहिले मत प्रचारकों से सर्वथा निराला है. यह किसी की निंदा नहीं करते क्यों कि सोच विचार कर देखा जावे तो उत्तम सिद्धांत सब मतों के एक ही हैं और झगड़े जितनेहैं वे सब ऊपरी बातों में हैं इन सब झगड़ों के मिटाने के लिये और सत्य धर्म्म का प्रचार करने के हेतु ऐसे उपदेशकों की आवश्यकता है जैसे कि प्राचीन समय में मुनि ऋषि और महात्मा होगये हैं स्वामीजी महाराज ने ऐसे महात्मा उत्पन्न करने के लिये अपने गुरूजी की स्मरण में सतयुग के आश्रमों की भांति **शिवगिरिशांति आश्रम गुजरात** (पंजाब) में स्थापित कियाहै जहां साधुओं को योगाभ्यास की शिक्षा दीजातीहै हमारी परमेश्वर से यह प्रार्थना है कि वह सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर श्री स्वामीजी महाराज और इस आश्रम को दीर्घायु करे कि जिस में सच्चे महात्मा उत्पन्न होकर इस संसार के दुःखों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति हो ॥ इति शुभम्॥

शिवप्रताप।

राजा साहिब श्री विजयसिंहजी
की सेवा में ।

प्रिय महाशय !

आप की धर्म्म के निर्णय में रुचि, हिन्दी भाषा की उन्नति की अभिलाषा तथा मेरे साथ पूर्ण प्रीति को देखकर इस ग्रंथ को जिस का आप ही की इच्छानुसार मैं ने भाषा अनुवाद कियाहै आप की भेट करताहूं, आशा है कि आप इस को स्वीकार करेंगे और इस को पढ़कर और इस में लिखी हुई शिक्षाओं पर चलकर लाभ उठावेंगे ॥

आप का हितैषी,

शिवप्रताप ।

भूमिका ।

परमात्मा की प्रेरणा और योगाभ्यास के साधनों के प्रताप से सत्य धर्म्म का अभाव देखकर बहुत से महत् पुरुषों की इच्छा के अनुसार और बहुत से योग्य पुरुषों की सम्मति के द्वारा मैं ने यह पुस्तक **साधारण धर्म्म** नाम की लिखी है जिस से यह प्रयोजन है कि सच्चे धर्म्म के खोजनेवालों को क्रम से उन्नति करने का अवसर मिले और संसार के दुःखों की निवृत्ति होकर सुखों की वृद्धि हो ॥

इससमय बहुत से मनुष्य धर्म्म की उन्नति के लिये परिश्रम कररहेहैं जिन में से कई तो अपने लाभ के हेतु काम कर रहेहैं, कई केवल एक वा अधिक सिद्धांतों पर वादविवाद करना ही ठीक समझतेहैं और कई केवल एक वा अधिक धर्म्म के अंगों को ही फैलाना और काम में लाना आवश्यक समझकर उस की ओर पूरा ध्यान लगारहेहैं और एक बात में अदला बदली करने से अनेक बातों में हेरफेर करने की आवश्यकता पड़तीहै और उन अगणित अदलाबदली को देखकर वे लोग घबरा जातेहैं और उन का मन उच्चाटन होजाताहै और इसी कारण से जैसी चाहिये सफलता प्राप्त नहीं होती ऐसी व्यवस्था में धर्म्म का क्रम से सरल बोली में और स्पष्टता के साथ वर्णन आशा है कि धर्म्म के खोजनेवालों के लिये अवश्य लाभदायक होगा ॥

शिवगण.

साधारण धर्म्म के विषयों का सूचीपत्र ।

प्रथम विभाग.

प्रथम अध्याय-शारीरिक धर्म्म।

तीसरा अध्याय–आत्मिक धर्म्म।

चौथा अध्याय—गृहस्थ धर्म्म।

इति ।

श्रीः ।

साधारणधर्मकी-अकारादि अनुक्रमणिका ।

विषय. पृष्ठ।

तीसरा अध्याय-ज्ञान।

સ્મરણાર્થે.

इति

अकाराद्यनुक्रमणिका

समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

। अथ साधारण धर्म्म ।

धर्म एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ धारण करना है, बोल चाल में धर्म उन कर्मों को कहते हैं जिन के जानने और ठीक २ करने से इस संसार में सुख और अन्त में मुक्ति मिल सक्ती है, और इस के विरुद्ध उन कर्मों को न जानने और न करने को अधर्म कहते हैं जिस के कारण अनेक प्रकारके दुःखों में फँसना पड़ता है ।

जिन कर्मों को करते समय या फल भोगते समय अपने को वा दूसरों को आराम मिले वे धर्म में गिनेजाते हैं और जिन को करते समय वा फल भोगते समय अपने को या दूसरों को दुःख पहुँचे वे अधर्म समझने चाहियें ।

जिन कर्मों के करने से शारीरिक–मानसिक और आत्मिक शक्तियां क्रम से बढ़ती चली जावें और जिन रीतों पर चलने से मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो और इस विश्व से अपना संबंध जानपड़े वह धर्म है और इसके विरुद्ध अधर्म ।

दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्मों को अधर्म और शुभ संस्कार और शुभ कर्मों को धर्म कहते हैं ।

दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्म अर्थात् बुरे विचार और बुरे काम वे हैं जिनके करते समय भय, शंका, वा लज्जा उत्पन्न हो ।

खाना, पीना, सोना, जागना, हर्ष, शोक, मित्रता, शत्रुता आदि सारी बातों में मनुष्य और पशु दोनों बराबर हैं परन्तु मनुष्य में एक ऐसी शक्ति भी विद्यमान् है जिस के कारण से धर्म और अधर्म की पहिचान सक्ता है और धर्म को भले प्रकार जान कर

और उसके अनुसार चलकर ऊंचे से ऊंचे पद प्राप्त करसक्ता है, और इसी कारण से मनुष्य इस सृष्टि के सारे चराचर से ऊंचे पद का समझा गया है।

जिन महात्मा पुरुषों ने धर्म को भले प्रकार जानकर उसके अनुसार कर्म किये हैं उन को उस के फल में शहद से अधिक मिठास, जलसे अधिक शीतलता, चंद्रमा से अधिक शांति और आनंद और सूर्यसे अधिक तेज और प्रकाश जान पड़ता है। वे धर्मको एक पल भी छोड़ना नहीं चाहते और उस को अपने आप धारण करना और दूसरों को धारण कराना अपना सब से बड़ा कर्तव्य समझते हैं। स्वार्थी और अज्ञानी पुरुष उनको ऐसा करने से बहुधा रोकना चाहते हैं और अनेक प्रकार के कष्ट भी पहुंचाना चाहते हैं परन्तु धार्मिक पुरुष किसी रुकावट और कष्ट का ध्यान न करके धर्म के लिये अपना जीव तक अर्पण करने को तय्यार रहते हैं।

मनुष्य चाहे किसी देश का हो किसी जाति का हो, धनाढ्य हो वा कंगाल, पढालिखा हो वा अज्ञानी, बालक हो वा वृद्ध, पुरुष हो वा स्त्री, सब धर्म को प्राप्त करने और उसके फल भोगने के अधिकारी हैं।

जब मनुष्य जन्मताहै तो धर्म वा अधर्म उसके साथी बनते हैं। जन्म भर हर समय में ये बराबर साथ रहते हैं और जब मनुष्य मरजाताहै तो सारी सांसारिक वस्तुएँ स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर, धन, मान, बड़ाई इत्यादि उसका साथ छोड़कर यहां ही रह जातेहैं केवल धर्म और अधर्म साथ जातेहैं-इस कारण सब को उचित है कि धर्म को अति आवश्यक समझकर उस को जानने का और उसके अनुसार उमर भर चलने का उपाय करें और दूसरों से प्रयत्न करावे।

सांसारिक वस्तुओं के प्राप्त करने में बहुत परिश्रम उठाना

पड़ताहै फिर भी कभी प्राप्त होतीहैं और कभी नहीं, क्योंकि यदि बहुत से मनुष्य उपाय करें कि वे राजा बनजावें तो वे सब कदापि नहीं हो सक्ते और इस के सिवाय सांसारिक वस्तुओं के प्राप्त होने पर यदि उन का अनुचित वर्ताव कियाजावे तो संभव है कि अपने तई या दूसरोंको दुःख पहुँचे परन्तु धर्म को यदि लाखों और करोड़ों मनुष्य प्राप्त करना चाहें तो सब को प्राप्त हो सक्ता है। धर्म के प्रभाव से सांसारिक सामान भी थोड़े परिश्रम से मिलने संभव हैं और उन का अनुचित वर्ताव कभी नहीं हो सक्ता। और न यह कभी संभव है कि धार्मिक पुरुषों से किसी को दुःख पहुंचे ।

जैसे उत्पन्न होने से लेकर मरण पर्यंत मनुष्य की अवस्था की एक ही श्रेणी दीख पड़तीहै परन्तु उस में बालकपन, युवा अवस्था, बुढ़ापा इत्यादि भेद उपस्थित हैं और जैसा बचपन में प्रारंभ होजाताहै उसी रीति से तरुणाई और बुढ़ापा बहुधा व्यतीत होते हैं इसी रीति से धर्म अर्थात् मनुष्य के कर्मों की एक ही पंक्ति जान पड़तीहै तो भी धर्म निरूपक अर्थात् धर्मके खोजनेवालों की सुलभता और वर्ताव के लिये धर्म के थोड़े से भेद करदेना योग्य समझा गया और उन भेदों में से शारीरिक धर्म इत्यादि प्रथम कर्मों को पूर्णता से वर्णन करना उचित समझागया है क्योंकि आदि अच्छा होने से अंत तक सुगमता से सफलता होती चलीजावे ॥

प्रथम दो बड़े भेद १ लौकिक और २ पारलौकिक धर्म हैं । लौकिक धर्म से प्रयोजन उन कर्मों से है जिन को जानने और काम में लाने से शरीर आरोग्य और निर्मल बुद्धि होकर अपने मन चाहे सांसारिक सुख मिलना संभव है ।

पारलौकिक धर्म से वे कर्म समझने चाहियें जिन के द्वारा मोक्ष मिलताहै ।

लौकिक धर्मके पांच भेद कियेगये हैं •

१ शारीरिक धर्म अर्थात् देह के कर्म
२ मानसिक धर्म अर्थात् व्यवहारिक कर्म
३ आत्मिक धर्म अर्थात् जीव के धर्म
४ गृहस्थ धर्म अर्थात् कुटुंब के धर्म
५ सामाजिक धर्म अर्थात् जाति धर्म
इसी रीति से पारलौकिक धर्म के चार भेद हैं
१ सन्यास धर्म अर्थात् संसार त्यागन करने के धर्म
२ योगाभ्यास
३ ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान
४ मोक्ष

। प्रथम विभाग ।

प्रथम अध्याय

शारीरिक धर्मकी व्याख्या

शारीरिक धर्म से उन कर्मों से प्रयोजन है जो इस स्थूल शरीर से संबंध रखते हैं—जो मृत्यु के पश्चात् यहीं रहकर नष्ट होजाता है ये कर्म जन्म धारण करते ही आरंभ होजाते हैं—जैसे—दूध पीना, हाथ पांव इत्यादि शरीर के विभागों को हिलाना—मल, मूत्र का त्याग करना, सोना, जागना इत्यादि—

थोड़े समय तक ये कर्म स्वाभाविक ही होते रहते हैं—परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य बड़ा होता जाता है सृष्टिकर्ता इन कर्मों के करने का बोझा मनुष्य पर डालता जाता है ।

वे बालक बड़े भाग्यवान् हैं जिन के माता पिता इन कर्मों के अच्छेपन का अनुभव करके और स्वयं उन को भले प्रकार जान करके अपने बालकों को बचपन से ही इन कर्मों के करने का स्वभाव डाल देते हैं ।

। शरीर की बनावट वा कामों का संक्षेप से वर्णन ।

शरीर की बनावट वा कामों का वर्णन तो पारलौकिक धर्म में किया जावेगा तोभी साधारण रीति से देखने में भी इस गज़ डेढ़ गज़ के पुतले में अद्भुत चतुराई और बनावट दिखलाई देती है। हड्डियोंका जोड़–रग और पट्ठों की तारबंदी–मांस और चर्बी का लेपन–चमड़े का ढकन–फेफड़ों में वायु का लोहार की धोंकनी के समान बराबर चलकर लोहू को साफ करना–दिलके द्वारा लोहूका सारे शरीर में एक रीति से घूमना और उस के मल का गुड़दों और चमड़े के छिद्रों अर्थात् गिलटियों के द्वारा निकलते रहना कैसी अद्भुत लीला रची हुई है।

आहार चबाने के लिये मुख में दांत–उस को नर्म करने और पचाने के लिये मुख में थूक और पेट में पित्त, आहार पहुंचतेही अपना२ काम कैसी रीति अनुसार आरंभ करदेतेहैं ।

दिमाग़-अर्थात् भेजे के बचाव के लिये, कि जिस के अंदर अनेक सूक्ष्म शक्तियां काम कर रही हे, अस्थियों की दृढ डिबिया, सर्दी और गर्मी इत्यादि से बचने के लिये बाल. नेत्रों के बचाव के लिये पलक, उंगलियों के वास्ते नाख़ून और इसी रीति से शरीर के सारे अवयवों के बचाव के लिये जैसे चाहिये ठीक वैसे ही दृढ सामान बने हुए हे।

शरीर में कोई कांटा इत्यादि चुभजावे तो उसको बाहर निकालने का उपाय, कोई न खाने योग्य वस्तु मुख की राह से चलीजावे तो वमन वा दस्त के द्वारा बाहर निकालने का उपाय, नाक में कोई विरुद्ध बेमेल वस्तु जानेलगे तो बालोंसे रुकावट होनी वा छींक के द्वारा तुरंत बाहर निकाल देना, कोई घाव लगजावे तो उस को अच्छा करने वाला मसाला–लोहू-पीव इत्या-

दि चारों ओर से दौड़कर घाव को अच्छा करने का यत्न करना कैसे प्रबल प्रबंध हैं।

ऐसे प्रबल प्रबंध पर भी जब शारीरिक धर्म के नियम बार २ तोड़े जाते हैं तो शरीर में अनेक प्रकार के रोगादिक उत्पन्न होकर उस को दुःख में फँसाकरके अंत को नष्ट कर देतेहैं और यदि शारीरिक धर्मों के नियमों को भले प्रकार जानकरके निश्चय पूर्वक इन की पालना की जावे तो सब शारीरिक शक्तियाँ प्रबल होकर और यथार्थ रीति से बढ़कर पूर्ण आयु और शारीरिक सुख का कारण होती है।

। शारीरिक वेगोंका ठीक २ वर्ताव ।

शारीरिक वेगों को अनुचित रीति पर कभी उत्पन्न न करना चाहिये परन्तु जब वे अपने आप स्वाभाविक उत्पन्न हों वा किसी भूल के हेतु अनुचित तौर पर ही उत्पन्न हों तो उन को रोकना बहुत ही बुरी बात है और शारीरिक धर्म के विरुद्ध है।

वेगों को रोकने से बाहर निकलने योग्य पदार्थ शरीर के भीतर रहजाने से दुःख देता है और अनुचित वर्ताव से उन वेगों के स्थान ढीले और निकम्मे होजाने से अष्ट प्रहर का दुःख लगजाताहै और शरीर यथार्थ नहीं बढ़ने पाता।

यदि किसी वेग के समय वा चाल में कुछ परिवर्तना अर्थात अदला बदली करनी आवश्यक वा ठीक समझीजावे तो ऐसी परिवर्तना अर्थात् अदला बदली धीरे २ करनी अच्छी होतीहै. बहुत काल तक वेगों के ठीक २ वर्ताव से वे मनुष्य के आधीन हो जाते हैं।

धार्मिक पुरुषों के जानने के लिये थोड़ेसे वेगों का संक्षेप वर्णन उन के उचित और अनुचित वर्ताव के साथ इस स्थान में किया जाता है।*

१–भूख–जब पेट में आहार नहीं रहता है तब जठराग्नि का वेग उत्पन्न होताहै और उस समय पेट में आहार न पहुंचाने से शरीर शक्तिहीन होजाताहै इस कारण आहार अवश्य पहुँचाना चाहिये–भंग इत्यादि मादक वस्तुओं के काम में लानेसे यह वेग अनुचित तरह पर उत्पन्न होताहै–इस हेतु इन वस्तुओं को कभी काम में न लाना चाहिये ।

२–तृषा–अर्थात् प्यास जब शरीर में स्वाभाविक मात्रा से तरी कम रहजाती है तो प्यास का वेग उत्पन्न होताहै और जीभ सूखने लगती है इस वेग के रोकने से बहुत सी बीमारियां पित्त का निर्बल होना इत्यादि के उत्पन्न होने और इस के उपरांत मृत्यु का भी डर है ऐसी वस्तुएँ जो गर्म और रूखी हों खाने से यह वेग अनुचित तौर पर पैदा होता है ॥

३–मल त्याग–हाजत के समय दस्त को रोकने से उस का प्रभाव मग़ज़ में जाना आरंभ होताहै और माथा भड़कना, आधासीसी, क़ब्ज़ी, बवासीर इत्यादि अगणित बीमारियां उस वेग को रोकने से उत्पन्न होतीहै ॥

४–मूत्रअर्थात् पेशाब–इस वेग को रोकने से भी कई व्याधियां मूत्र का बंद होजाना वा जलन से आना इत्यादि उत्पन्न होती है अधिक ठंढी और मूत्र लानेवाली वस्तुओं के सेवन से यह वेग अनुचित तौर पर उत्पन्न होताहै ॥

५–अपानवायु–जितना चाहिये उस से अधिक अहार करलेने वा बादी चीज़ों के खाने से यह वेग बार२उत्पन्न होताहै–उचित है कि एकान्त स्थान में जाकर इस वेग को निकाल दिया जावे लज्जा इत्यादि कारणों से बहुधा बड़े बुद्धिमान् भी इस वेग को रोक कर अपनी आरोग्यता को बिगाड़ देतेहै ॥

६–**वमन करना**–जब कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य के खाने की नहीं है पेट में चली जातीहै तो मेदा अर्थात् आंतें उस को नहीं सहसक्तीं और वमन के द्वारा निकालना चाहती हैं घृणा-लाने वाली वस्तुओं के देखने और दुर्गंध के सूंघने से भी जी मचलाकर वमन आतीहुई ज्ञात होती है ऐसे अवसर पर लौन मिलाएहुए गर्म पानी से वा गले में उँगली डालकर वा मोर इत्यादि जानवर का पर डाल कर अच्छी तरह शुद्धि कर लेनी चाहिये इस वेग के रोकने से शीत-पित्त अर्थात् शरीर पर दाफड और कुष्ट इत्यादि रोगादिक होजाना संभव है।

७–**छींक**–जब अधिक सर्दी वा सर्दी और गर्मी के एकाएकही बदलने का प्रभाव पडने से वा तीक्ष्ण वस्तुएँ जैसे मिर्च तंबाकू इत्यादि की धांस हवा के साथ नाक में जाते ही एक दम छींक आती है–इसके रोकने से सिर भडकना, सिर का भारी होजाना, कनपटी और भँवारों की पीड़ा आदि कई व्याधियां उत्पन्न होजातीहैं। विना कारण बार २ बत्ती नाक में डालकर वा हुलास सूंघकर छींकें लेना इस वेग का अनुचित वर्ताव है।

८–**डकार**–बहुधा जब पेट भर जाता है खाने के पश्चात् कभी २ डकार आतीहै उस को धीरे से निकाल देना चाहिये इस के रोकने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, पेट फूल जाता है. भोजन के समय या पीछे मुंह खोलकर ज़ोर २ से डकारलेना बहुत ही अनुचित है।

९–**उबासी**–ऊंघ. आलस्य और थकावट के कारण से उबासी आतीहै विना शब्द करने और यदि बहुत से मनुष्य हों तो मुंह फेर कर और हाथ वा रूमाल इत्यादि कोई कपड़ा मुंह पर रख कर उस वेग को निकालना चाहिये इस वेगको रोकने से सारे शरीर और विशेषकरके आंखों में पीडा होने का डर है।

१०-खांसी-जब फेफड़े आदि में कोई दुःख होता है जैसे फेफडे में कफ का विशेष उत्पत्ति होना,तो खांसी के द्वारा वह उस दुःख को दूर करना चाहताहै।तम्बाकू वा चरस के अधिक पीने से, वा खटाई के अति अभ्यास से, वा चिकनाई पर पानी पीने से, वा अजीर्ण इत्यादि से यह वेग उत्पन्न होताहै और इस के बढ़ जाने से क्षय इत्यादि प्राणघातक रोगादिक उत्पन्न होने का भय है।

११-नींद-शरीर जब थक जाताहै तो सुख चाहता है, विशेष करके बचपन में आठ से दस घंटे तक, युवा अवस्था में छः से बारह घंटे तक और बुढ़ापे में जितनी नींद आजावे उतनी ही लेना चाहिये और रहनगत के हिसाब से न्यूनाधिक भी योग्य है जैसे अति परिश्रम उठावें वे किंचित् अधिक सोवें-जहांतक सह सकें, सोने के समय मुँहको वस्त्र से नहीं ढकना चाहिये जिस से अच्छी हवा सांस ले सके, जब मल वा मूत्र की शंका हो, वा भूख प्यास लग रही हो, वा अहार पचा न हो उस समय सोना शरीर की आरोग्यता को बिगाड़ता है।सोने के पश्चात् मुँह के थूक को जल से कुल्ला करके अच्छी तरह शुद्ध कर लेना उचित है। खेल, तमाशा, परीक्षा की सामग्री, और घर मे किसी रोगी की टहल करने के कारण इस वेग को रोकने से मस्तक में पीड़ा, शरीर का भारी होना, शरीर में आलस्य का आना इत्यादि अनेक रोग लग जाते हैं।

१२-रोना वा आँसू निकालना-जब मनुष्य के मन पर एकाएक ही कोई आनंद वा दुःख व्यापताहै तो आप से आप रोना आता है और आँसू टपकने लगते है और कभी २ कोमल हृदय का पुरुष अपने किये हुए व्यतीत बुरे कर्मों को स्मर्ण करके घबराता है और भविष्यत् काल में उन बुरे कर्मों से बचने का संकल्प मन से प्रण करताहै उस समय आंखों से

आंसू निकलने लगते हैं जिन के द्वारा धार्मिक पुरुषों के विचार के अनुसार उस के पिछले पापों का बल न्यून होजाता है, जब किसी कारण से सच्चा रोना आवे तो उसके वेग को कदापि नहीं रोकना चाहिये, तनिक २ सी बात पर रोने का स्वभाव डालना वा घर में किसी शोक के समय लोगों को दिखावट की रीति पर रोना इस वेग का अनुचित वर्ताव है। इस वेग को रोकने से मस्तक और कनपटी में पीडा, आंखों की पीडा और कभी२ दस्तों की व्याधि होजाती है-जिस का कारण यह है कि शोक की चोट का प्रभाव जो नेत्रों पर होना था वह आंतों पर होता है ।

१२-काम अर्थात् वीर्य का वेग-इस वेग का अधिक संबंध मन के साथ है और इसी कारण से इस को केवल शारीरिक वेग ही नहीं समझना चाहिये-जहांतक होसके बुरे विचारों को रोकना चाहिये इस का यथार्थ वर्णन मानसिक धर्म के विभाग ब्रह्मचर्य और गृहस्थ धर्म के विभाग सन्तानोत्पत्ति में किया जावेगा, वीर्य सम्पूर्ण शरीर का राजा है और सर्व शरीर में ऐसा फैला हुआ है जैसे दूध में मक्खन, गन्ने में मिठास, तिलों में तेल। मग़ज़ की ताक़त, शारीरिक बल, दृष्टि की तीक्ष्णता और मुख की क्रांति वीर्याधीन ही है इसी के द्वारा विशेष विचार शक्ति और परिश्रम उठाने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी अच्छी और उपयोगी वस्तु को कोई लुटाना नहीं चाहता और उत्पत्ति उस की खर्च करने ही पर है इस हेतु ईश्वर ने इस के निकास में भी एक निराला स्वाद रख दिया है। धर्म पर चलनेवालों को चाहिये कि सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता के समय तो व्यय करें और केवल स्वाद के वश होकर ऐसी अमूल्य वस्तु को न लुटावें क्योंकि ऐसा करना इस वेगका अनुचित वर्ताव होगा। जिस समय काम के कोप से शरीर में वीर्य का वेग उत्पन्न होताहै तो वह सर्व शरीर के अवयवों से निकलना

आरंभ होजाता है और उस समय मन को एक मुख्य आह्लाद प्राप्त होताहै ।

मस्तक के पिछले विभाग में एक मुख्य स्थान है जहां से काम का वेग उत्पन्न होताहै जब कपाल के उस मुख्य स्थान में हल चल मच जाती है तो उसी समय लोहू इत्यादि और सब अवयवों में भी काम का वेग उत्पन्न होजाताहै और वीर्य का प्रभाव पहिले उसी स्थान से चल कर पीठ की वीर्यवाहिनी नाडियों में होता हुआ और उन के रसों को साथ लेता हुआ अंडकोष में आता है और वहां श्वेत रंग का द्रव्य बनकर गर्भाधान की शक्ति उत्पन्न करने वाला होजाता है इस से यह बात निकलतीहै कि वीर्य के निकलने के तीन द्वार हैं उन में से पहिला द्वार मस्तक का पिछला भाग है इस पहिले द्वारके शुभ विचारों का ताला लगाना बहुत ही आवश्यक है ।

निर्लज्जताकी बातें वा कहानियों के पढ़ने सुनने से वा स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री के मुख्य२ अवयवों के दृष्टि गोचर होने से काम का वेग अनुचित रीति से उत्पन्न होता है ।

ऐसी अयोग्य रीतियों से विशेष करके बाल्य अवस्था में इस वेग को कदापि उत्पन्न न होने देना चाहिये जिस का व्यवहारोचित उपाय केवल यही है कि रात दिन सत्संग में रहना चाहिये—सारे संसार के धार्मिक पुरुषों ने सत्संग की बहुतही महिमा वर्णन की है और धर्म संबंधी साधनों में उस को बहुत बड़ा साधन माना है जिस का वर्णन विस्तार पूर्वक मानसिक धर्म के साथ दूसरे विभाग में किया जावेगा ।

यदि बचपन में आदि से ही बच्चों का पूरा प्रयत्न रक्खा जावे तो जब तक प्रयत्न रहेगा काम का वेग प्रगट न होगा न्यून से न्यून लड़कों की २० वर्ष की अवस्था तक और लड़कियों की

१५ वर्ष की अवस्था तक सँभाल रखनी आवश्यक है। इस सँभाल से इन का वीर्य अच्छी तरह से पुष्ट होकर शरीर की आरोग्यता आदि सुख देने का कारण होगा और इन की संतति भी पुष्ट और आरोग्य होगी यदि ऐसा होना कोई रीति से भी संभव न हो तो लड़कों के वीर्यकी १६ वर्ष तक और लड़कियों की १३ वर्ष तक अवश्य ही रक्षा रखनी चाहिये इस का पूरा वर्णन मानसिक धर्म के विभाग ब्रह्मचर्य में और गृहस्थ धर्म के विभाग सन्तानोत्पत्ति में किया जावेगा ।

। आरोग्यता बनी रखने की दूसरी रीति ।

। व्यायाम ।

यद्यपि मनुष्य के शरीर में अनेक रोगादिक भरे हैं जिन को जानना बहुत कठिन है तथापि आरोग्यता के नियमों पर चलने से बहुत से रोगों से बचाव होजाता है और निरोगता बनी रखने के लिये व्यायाम बहुत ही आवश्यक है ।

व्यायाम वह दिव्य साधन है जिस के प्रति दिन करने से मनुष्य बहुत फुर्तीवाला, निरोग और प्रफुल्लित रहताहै और पूर्ण आयु प्राप्त करताहै और यदि कोई रोग शरीर में हो और वह रोग बहुत पुराना और असाध्य न होगया हो तो इस साधन को लगातार और साधारण रीति से करने पर उस रोग का बल घटकर शनै २ आरोग्यता होनी प्रारंभ हो जातीहै और जब यह साधन करना आरंभ करदिया जाताहै तो बहुधा कोई नया रोग नहीं होने पाता कदाचित् कोई विशेष अमर्यादा न की हो ।

व्यायाम एक स्वाभाविक साधन है—बच्चे जब बहुत ही छोटे होते हैं तो अपने हाथ पांव इत्यादि शरीर के अवयवों को सदा

हिलाते रहतेहैं और जब थोड़े से बड़े होतेहैं तो निरंतर दौड़ने भागने, उछलने, कूदने के खेलों में उद्योग करते रहते हैं और उन खेलों में प्रसन्न होतेहैं और इस रीति से उन का सारा शरीर भले प्रकार पोषण होता रहता है और वे सदा फुरती वाले और प्रफुल्लित रहते हैं और जो बच्चा अभाग्यवश वे खेल नहीं खेलनेपाता तो वह जन्म भर रोगी, उदास और दुर्बल रहता है ॥

केवल मनुष्य को ही नहीं परन्तु दैव ने प्राणी मात्र को व्यायाम करना सिखलाया है और वे करते रहते हैं यहां तक कि जो पक्षी और पशु इत्यादि मनुष्य के फंदे में फँस जाते हैं वे बंधन में होने पर भी अपना बहुत सा समय व्यायाम में लगाते हैं जैसा कि चिड़िया-घर और अजाइब-घर में यह प्रतिदिन दृष्टि गोचर होताहै कि सिंह और रीछ मैना और तोते इत्यादि पशु और पक्षी अपने २ पिंजरों में बहुत सा समय चलने, फिरने, फुदकने और फड़फड़ाने में व्यतीत करतेहैं इन कारणों से मनुष्य को भी व्यायाम करना हर तरह से आवश्यक और उचित है ॥

व्यायाम का मूल तत्व यह है कि शरीर को अच्छी तरह परिश्रम होकर किंचित पसीना आजावे. अत एव चलना, दौड़ना, छलांग मारना,कुश्ती लड़ना,वृक्ष पर चढ़ना,जल में तैरना, डंड पेलना, मुद्गर हिलाना, बोझ उठाना, वा दूर फेंकना, फरी, गदका, बनेठी इत्यादि लकड़ी के खेल, चांदमारी करना, तीर लगाना, घोड़ा इत्यादि पशुओं की सवारी करना, तथा कई प्रकार के अंगरेजी खेल-क्रिकेट, फुटबोल, लान्टेनिस इत्यादि सब व्यायाम अर्थात् शरीर के साधन गिनेजाते हैं ॥

इन में से जिन साधनों में मन लगे और जो रहन-गत या

अपने व्यापार वा वृत्ति के अनुकूल हों उन्हीं को करना चाहिये व्यायाम को इच्छानुसार नहीं करना चाहिये परन्तु इसको अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ कर प्रतिदिन करना उचित है हां इतना विचार अवश्य रहे कि जितने जुदी २ तरह के और शरीर को कम थकाने-वाले साधन होंगे उतने ही अधिक लाभ दायक होंगे ॥

स्त्रियों के साधन पुरुषों के साधनों से और भी हलके होना चाहिये और रजस्वलाधर्म वा गर्भ के समय तो उन हलके साधनों में से भी केवल चुने हुए थोड़े से साधन बहुत सावचेती और पथ्य के साथ करने चाहिये ऐसी दशाओं मे न करने से इतनी हानि नहीं होती जितनी कि बिना विचारे से व्यायाम करने में होती है और उस मे भयानक फल मिलने का डर है ॥

उत्तम समय व्यायाम का स्नान के पश्चात् और भोजन से पहिले है यदि कोई दूसरा समय नियत करने की आवश्यकता हो तो शंकाओं से रहित होकर और भोजन के पूरे पाचन हो-जानेके पश्चात् व्यायाम करना उचित है, साधन करने के समय लंगोट अवश्यही कसना चाहिये और उत्तम तो यह है कि शेष सब शरीर नग्न रहे अथवा बहुत थोड़े वस्त्र पहिने जावें ॥

खुले मैदान में जहां निर्मल और स्वच्छ हवा आती हो, व्यायाम करना बहुत लाभ दायक है परन्तु ठन्डी वा प्रचंड पवन से बचना उचित है ।।

जैसे २ अवस्था ढलती जावे वैसे ही व्यायाम के साधन हलके और कमी के साथ होने चाहिये ॥

मनु आदि ऋषियों का वचन है कि हर एक मनुष्य को स्त्री हो वा पुरुष राजा हो वा रंक व्यायाम नित्यप्रति अवश्य करना चाहिये जो कोई इस रोग नाशक साधन को नहीं करते

हें उनको भोजन विष के समान लगता है आदि में बहुत थोड़ा व्यायाम करना चाहिये और सनै २ अपने बल, पराक्रम के अनुसार बढ़ाना चाहिये इस रीति से फुरती और चालाकी धीरे२ आती जाती है ॥

यदि व्यायाम के साधनों को अपने आप करके दिखलाने और पूर्ण रीति से मुख से वर्णन करने से ठीक २ और सुगमता से समझना संभव है तथापि अधिक समझवाले और व्यायाम सीखने के अभिलाषी पुरुषों के हितार्थ थोड़े से आवश्यक साधनों का वर्णन लिखना उचित समझा गया ॥

इन साधनों को हर मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार करे मुख्य परिमाण यह है कि शरीर में किंचित् पसीना आजावे किंतु विशेष थकान कदापि नहीं होनी चाहिये नहीं तो लाभ के बदले हानि होने का भय है ॥

यदि धार्मिक पुरुषों और विशेष करके साधुओं को काम के वेग को रोकने की आवश्यकता हो तो उनको छाती और बाहुओं के साधनों के द्वारा शरीर को भले प्रकार थकाना चाहिये ॥

इन साधनों में यह भी एक गुण है कि बिना किसी सहारे अर्थात् एँपैरेटस आदि के हर मनुष्य हर स्थान में सुगमता से कर सक्ता है ॥

यदि बूढ़ा आदमी भी अपने शरीर बल के अनुसार परिमाण के साथ व्यायाम के साधन प्रारंभ करेगा तो कुछ काल में उसका शरीर भी तरुण पुरुषों के समान फुर्ती वाला होजाना संभव है ॥

यद्यपि एक २ साधन की संख्या सात २ रक्खी गई है तथापि व्यायाम करने वाले अपने बल, अवकाश और रहनगत के अनुसार संख्या नियत करसक्ते हैं ॥

जिनको बैठने का या सोच विचार का काम विशेष करना पड़े उनको उचित है कि अपने काम के बीच में अर्थात् हर दो २ तीन २ घंटों के काम के पीछे दो मिनट के वास्ते छाती और बाहुओं के साधन अवश्य करलिया करें और हर साधन के बीच में थोड़े से पांवड़े टहल लिया करें ॥

साधन करने के समय जहांतक हो सके दम रोकने का उपाय कियाजावे और नहीं तो स्वास मुख बंद कर के नाक के राह निकालना चाहिये ॥

यदि ये साधन लगातार बहुत काल तक होते हैं तो सारा शरीर सुडोल होजाना संभव है ॥

वे साधन नीचे लिखे अनुसार हैं ॥

१ पांव और टांगों के साधन ।

(क) पांव की उंगलियों के सहारे खड़ेहोकर और बदन को तना हुवा रखकर और बाहुओं को ऊंचा करके एक स्थान में खड़े हुए कम से कम सात बार उछलना ॥

(ख) ऊपर लिखे अनुसार एक स्थान में खड़े रहने के बदले सात पांवड़े तक उछलते हुए चल कर उसी रीति से पीछा आना ॥

(ग) पांव की उंगलियों के बल खड़े होकर अकड़ते हुए सात पांवड़े चलना और पीछा आना ॥

(घ) सारे शरीर को तनाहुआ रखकर और टांगों को थोड़ा सा झुकाकर पहिले दाहनी टांग को एक पांवडा दूर रखना और फिर बांई टांग को उसी स्थान में लेजाना और दाहनी टांग को अपने पहले स्थान पर लेआना इसी रीति से उछल २ कर सात बार करना"। कहते हैं कि महाराजा श्री रामचन्द्रजी के

दूत अंगद ने लंकापति रावण के दरीखाने में अपनी टांग पृथ्वी पर टेक कर कहाथा कि कोई दर्बारी योद्धा उसकी टांग को उठावे बहुधा पुरुषों ने कोशिश की परन्तु टांग हिल भी न सकी अंगद ऊपर लिखा साधन प्रतिदिन एक सौ बार किया करता था ॥

(ङ) दोनों टांगों को चौड़ा करके और हाथों को ऊंचा करके और दोनों को मिला कर उछलना फिर टांगों को मिलाकर और हाथों को चौड़ा करके उछलना अर्थात् जब टांगें चौड़ी हों तो हाथ मिलजावें और और जब हाथ फैलें तो टांगें मिलजावें—सातबार ॥

(च) एक टांग से पन्दरा पावडे चलना और दूसरी टांग से उतनी ही दूर उलटे पांव पीछा आना ॥

(छ) बदन को तना हुवा रखकर और घुटने पर हाथ रखकर सात बार ऊठक बैठक करना यह साधन बहुधा बच्चों के लिये अच्छा है ॥

(ज) तने हुए खड़े होकर पहले एक टांग को पीछे दूसरी टांग को झटका देना—सात बार ॥

२ नाभी और कमर के साधन ।

(क) दोनों हाथों को कमर के दाएं बाएं रखकर और सारे शरीर को तना हुवा रखके कमर से ऊपर २ के शरीर को एक ओर कमर तक झुकाना और फिर उसी रीति से दूसरी ओर—सात बार ॥

(ख) ऊपर लिखे रीति से खड़े होकर कमर से ऊपर के सारे शरीर को आधे वृत्त वा चक्र के अनुसार जल्दी २ सात बार घुमाना ॥

(ग) शरीर को तना हुवा रखकर और दोनों बाहुओं को ऊंचा करके और हाथों को मिलाकर खड़ा होना और फिर आगे को झुककर अपने पांव के अंगूठों को छूना परन्तु घुटने मुड़ने न चाहिये—सात बार ॥

(घ) एड़ियों को ऊंचा रखकर उकड़ूं बैठकर उछलते हुए सात पांवड़े सामने की ओर चलकर उसी तरह उलटा पीछा आना ॥

३ पेट और छाती के साधन ।

(क) खड़े होकर और शरीर को तना हुवा रखकर दोनों हाथों को ऊंचा करना और छाती से ऊपर के शरीर को पहिले दाहिनी ओर फिर बाईं ओर को सात बार झुकाना ॥

(ख) ऊपर लिखी रीति अनुसार सात बार पीछे की ओर झुकना । इस साधन से पेट का बढ़ना और तिल्ली की बीमारी नहीं होती ॥

(ग) सात बार डंड पेलना अर्थात् दोनों हाथों को पृथ्वी पर धरकर और पावों को फैलाकर और चौपगा होकर एक वार दाहिनी ओर और दूसरी बार बांई ओर बल करके डंड निकालना ॥

(घ) भींत से दो पांवड़े दूर खड़े होकर दाहिने और बांए हाथ को वारी वारी भींत पर रखकर सारे शरीर को बल से सात बार झुकाना ॥

(ङ) अकड़े हुए खड़े होकर दोनों बाहुओं को थोड़ासा फैलाए हुए रखना और मूठियां बंद करके और कोहनियां मोड़-कर दोनों हाथों को छाती के पास लाना और झटके के साथ

दोनों बाहुओं को फैलाना परन्तु कोहानियां मुड़ी हुई हे–सात वार–यह साधन कफ इत्यादि बीमारियों को रोकने वाला है ॥

(च) बदन को तना हुवा रखकर और बाहुओं को लंबा करके दोनों हथेलियों को मिलाना और फिर जहांतक होसके दोनों बाहुओं को फैलाना–सात वार ॥

४ बाहुओं के साधन ।

(क) सारे शरीर को सीधा रखकर खड़े होना और बाहुओं को तना हुआ रखकर कोहनी के पास से नीचे की ओर झुका देना–सात वार ॥

(ख) सीधे खड़े होकर और दोनों कोहनियों को एक साथ मोड़कर हाथों को कंधे के पास लाना और फिर झटका देकर दोनों हाथों को एक साथ फैलाना और फिर एक दम पीछा लेजाना सात वार ॥

(ग) ऊपर लिखी रीति अनुसार हाथों को झटका देकर ऊपर की ओर एक साथ फैलाकर फिर एक दम कंधों के पास पीछा लेजाना–सात वार ॥

(घ) पहले एक बाहू को बल से पन्दरा बार घुमाना और फिर दूसरे को ॥

(ङ) दोनों बाहुओं को एक साथ चक्कर की भांति बहुत बल से परन्तु यत्न के साथ तीस बार घुमाना ॥

५ गरदन और कंठ के साधन ।

(क) खड़े हुए और सारे शरीर को तना हुआ रखकर पहिले दाहिने कंधे की ओर, फिर बांए कंधे की ओर, सात वार गर्दन को झुकाना ॥

(ख) खड़े हुए सारे शरीर को तना हुआ रखकर और मस्तक को थोड़ा सा नीचा करके गर्दन को पहिले दाहिनी ओर फिर बांई ओर झुकाकर और फिर सिर को ऊंचा करके गर्दन तक पीछे को झुकाना—सात बार।

६ मस्तक के साधन।

(क) किसी दीवार की ओर पीठ करके दीवार से दो पांवड़े दूर खड़े होना और दोनों हाथों को कमर पर रखकर जितना हो सके सिर को नीचे अर्थात् दीवार की ओर झुकाना और फिर हाथों को कमर से उठा कर पीछे की ओर दीवार से लगाकर सिर को पीछे लटकाना और सारे बदन को साध कर हाथों को दीवार से अलग करके सिर को कई पल तक लटकाए हुए रखना—दो बार।

(ख) हाथों को भूमि का सहारा और पांवों को दीवार का सहारा देकर एक २ मिनट तक उलटे लटके रहना।

७ सारे शरीर के साधन।

(क) किसी ऊंची वस्तु खूंटी वा वृक्ष की शाखा इत्यादि को पकड़ कर आधे २ मिनट तक चार बार लटकना।

(ख) पृथ्वी पर लेटकर शरीर को तना हुआ रखकर और दोनों टांगों और बाहुओं को जहांतक होसके चौड़ा फैलाकर एक मिनट तक लेटे रहना।

(ग) ऊपर लिखे अनुसार दोनों टांगों को मिलाकर पांवों की ओर और दोनों बाहुओं को मिलाकर सिर की तरफ जितना लंबा किया जा सके सारे बदन को लंबा करना एक मिनट तक।

(घ) औंधा लेटकर और दोनों हाथों को पीठ की ओर

कमर के पास ले जाकर मिलाना और फिर छाती के वल पहिले दाहिनी ओर, फिर बांई ओर सात बार करवट लेना ॥

(ङ) शरीर को साधारण तौर पर रखकर दो मिनट तक सीधे लेटे रहना ॥

ये सारे साधन आध घंटे में और अभ्यास होजाने से उस से भी कम समय में हो सक्ते हैं यदि इस थोड़े से समय को ऐसे आवश्यक और उपयोगी काम में नहीं लगाया जावेगा तो बीमारी को, दुःख उठाने और रुपया खर्च करने के उपरांत, इस से कितना ही अधिक समय देना पड़ेगा ॥

। शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और शुद्ध वस्त्र का काम में लाना ।

धार्मिक पुरुषों और धर्म के खोजने वालों को, शारीरिक वेगों का ठीक वर्ताव रखते हुए और शारीरिक व्यायाम को नित्य प्रति करते हुए, नीचे लिखी बातों पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये ॥

। वायु का ठीक वर्ताव ।

मनुष्य के लिये सब से विशेष आवश्यक वस्तु हवा है वह हर समय अपरिमाण सांस के द्वारा पी जाती है और इसी हेतु वायु सब स्थानों में अधिकता से विद्यमान है । यदि थोड़े समय भी वायु न मिले वा विषैली हवा पीने में आवे तो आयु पूर्ण होजाती है जितनी निर्मल और सुथरी वायु खुले मैदान बाग़ समुद्र और नदी के तट की मिल सके उतना ही अधिक लाभ समझना चाहिये ॥

सांस के द्वारा जो वायु अंदर जाकर पीछी बाहर निकलती है

वह गंधी हो जाती है छोटे और अंधेरे घरों में बहुधा मनुष्यों के रहने से उनके स्वासों से निकली हुई वायु आरोग्यता को हानि पहुँचाती है—इस हेतु से जहांतक हो सके हवादार और खुला हुआ घर होना चाहिये और सोने के कमरे में बहुत मनुष्य वा सामान कदापि नहीं भरना चाहिये यदि किसी मुख्य अवसर पर किसी स्थान में अधिक मनुष्य इकट्ठे होवें तो वहां पर सुगंधी फूल और लोवान इत्यादि को काम में लाना चाहिये ॥

वृक्षों से रात के समय गंधी हवा निकलती है और दिन में निर्मल इस कारण से रात को वृक्षों के नीचे अधिक समय तक कभी बैठना वा सोना न चाहिये ॥

वायु को शरीर में लेजाने और बाहर निकालने के लिये घ्राण इंद्रि अर्थात् नाक के दोनूं छिद्र हैं जिन में यह शक्ति भी है कि वे अच्छी और बुरी हवा को पहिचान सकें इस हेतु जहां बुरी हवा मालूम हो और यदि वहां से झटपट निकल जाना हो तो सांस को रोक लेना उचित है यदि विशेष समय तक रहना हो तो जहां तक होसके धीरे २ स्वास लेना उचित है ऐसे अवसर पर नाक को बंद करके मुंह के द्वारा सांस लेना बहुत ही अनुचित और आरोग्यता को हानि कारक है ॥

जहाँ दुर्गंध आती हो वहां सदा वा बहुत देर तक कदापि नहीं रहना चाहिये यदि मन उपरांत रहना पड़े तो उस दुर्गंध को दूर करने के ढंग काम में लाना आवश्यक है यदि दूर न हो सके तो सुगंधि और दुर्गंध को काटने वाली वस्तुओं के द्वारा हवा को स्वच्छ कर लेना आवश्यक है ॥

यदि प्रति दिन किसी रमणीक स्थान में कम से कम पांच बार और विशेष अपनी इच्छा बल और अवकाश के अनुसार धीरे२ स्वास को ऊपर खेंचा जावे और थोड़े समय के लिये वहां

रोक कर फिर उसी रीति से धीरे २ निकाला जावे और थोड़ी देर बाहर रोक कर फिर ऊपर को खेंचा जावे तो इसी तरह साधन करने से शरीर के बहुत से भीतरी पर्दों और फेंफड़ों इत्यादि में वायु का प्रवेश होकर शरीर के मैल के निकल जाने में सहायता मिलती है और सारा शरीर स्वच्छ और पुष्प की भांति प्रफुल्लित होजाता है। परिश्रम का काम अधिक किया जा सक्ता है और थकावट कम आसक्ती है। इस साधन के लगातार करने से थोड़े ही समय में प्राण स्थिर होने लगताहै और मन भी एकाग्र होकर प्रकाश और ईश्वर प्रेरणा होने लगती है।

। जलका ठीक बर्ताव ।

वायु से दूसरे दर्जे पर विशेष आवश्यक और काम में आने वाली वस्तु जल है और इसी कारण से परमेश्वर ने तीन चतुर्थांश के लगभग पानी रक्खा है और वनस्पति और प्राणियों के अवयवों में भी बहुत कुछ जल विद्यमान है मनुष्य के शरीर में (१००) सौ में से (७०) सत्तर भाग पानी से भरा हुआ है शरीर के कठोर से कठोर विभाग दांत, बाल और नखों इत्यादि में भी जल विद्यमान है। नस और पट्ठों की नर्मी, लोहू की तेज़ी, और दूसरे सार रसों कोजल ही सहारा देता है पट्ठों की लचक और मोड़ इत्यादि में भी पानी से मदद मिलती है और चलते समय अस्थियों में रगड़ न लगने का कारण भी पानी ही है॥

पानी को अहार और दवा दोनों कहते हैं कारण यह है कि कोई खाना बिना पानी के न चब सक्ता है और न पच सक्ता है स्वयं जल में पचाने इत्यादि की मुख्य शक्ति विद्यमान है ॥

बिना आहार बहुत समय तक मनुष्य जी सक्ता है परन्तु बिना जल जीता नहीं रह सक्ता। नैरोग्य पुरुष को दो सेर जल के लगभग की प्रतिदिन आवश्यकता समझनी चाहिये हां गर्म

ऋतु में कुछ विशेष और सर्द ऋतु में कुछ कम । और इतना ही पानी पसीने, थूक और मूत्र के द्वारा निकलता रहता है ॥

नीचे लिखे अवसरों पर पानी न पीना चाहिये ॥

(१) व्यायाम के पश्चात्.

(२) खाली पेट.

(३) तर मेवा खाने के पीछे.

(४) खट्टी और चिकनी वस्तुओं के खाने के पीछे.

(५) ऊंघ आती हो तो.

(६) विना प्यास.

ग्रीष्म ऋतु में ठंढा जल वा वर्फ का जल वा शर्वत इत्यादि विना प्यास वा प्यास से अधिक पीना बहुत ही हानि कारक समझना चाहिये इसी रीति से भोजन के समय हर ग्रास के साथ जल पीना वा बार बार अत्यंत जल पीना भी आरोग्यता को हानि पहुंचाता है श्रेष्ठ तो यह है कि भोजन के एक घंटे पीछे जल पिया जावे ॥

मोटे मनुष्य को अवश्य ही भोजन के समय जल न पीना चाहिये वा बहुत कम जल पीना चाहिये ॥

जहांतक हो सके स्वच्छ और सद्य पानी पीना चाहिये मरघट और कवरों के पास के कुओं और झरणियों का पानी वा जिस कुए का पानी बहुत दिनों से न सींचा गया हो वा जिस पानी के रंग, गंध और स्वाद में अंतर जान पड़े वह कदापि नहीं काम में लाना चाहिये ॥

जहां नदी का जल काम में लाया जाता हो वहां वस्ती से ऊपर का पानी बहुधा अच्छा होता है क्योंकि उस में मल मूत्र इत्यादि के मिलने की शंका नहीं होसक्ती जहां तालाव का पानी पिया जाता हो वहां स्नान करना, कपड़े धोना

इत्यादि काम उस में होना ही न चाहिये वा हर काम के लिये उचित दूरी पर न्यारे २ घाट बने हुए होना ठीक है जहां कुए का पानी पिया जाता हो वहां पनघट कुए के किनारे से इतना ऊंचा और पक्का बना हुआ होना चाहिये कि कीड़े मकोड़े और वर्षा ऋतु का मैला पानी इत्यादि उस में न जा सकें. और यदि ऐसे कुए चारों ओर वृक्षों से घिरे हुए हों तो उन के ऊपर छाया होना चाहिये कि वृक्षों के पत्ते इत्यादि का कूड़ा गिरने और सड़ने न पावे और ऐसे कुओं का पानी हर साल वर्षा ऋतु के पीछे निकाल दिया जाया करे तो बहुत लाभ होगा ॥

पीने के पानी को टपका कर स्वच्छ करना बहुत ही अच्छा है परन्तु जिन वर्तनों में पानी टपकाया जावे, वे वर्तन शुद्ध रहने चाहियें यदि शुद्ध न रहेंगे तो उन में मैल जमकर पानी के छोटे २ जीव उत्पन्न हो जाने का भय है ॥

पीने के पानी को अग्नि पर ओटा लेना वा लोहा गर्म करके उस में बुझालेना, फिटकड़ी के पानी से सोध लेना और कपड़े से छानना बहुत अच्छा है ॥

कई अवस्थाओं में गर्म पानी पीना भी लाभदायक है। घूंट २ करके पीने से प्यास बुझती है और रुधिर के घूमने में तेज़ी आती है और आंतों में आहार का रस अच्छी तरह बनता है, पाचन शक्ति बढ़जाती है और मूत्र को शुद्ध करके अच्छी तरह बाहर निकाल देता है। अजीर्ण में भोजन से पहिले एक छटांक गर्म पानी पीना बहुत फल दायक है। सर्दी लग गई हो, वा नींद न आती हो, वा बहुत थकावट हो, तो भी गर्म पानी पीना अच्छा है ॥

लोहे के वर्तन वा मिट्टी के घड़ों में पानी रखना बहुत

अच्छा है । वे वर्तन और स्थान जहाँ वर्तन रक्खे जाते हों ऐसे शुद्ध रहने चाहियें कि वहां काई न जमने पावे और सदा उन को ढक कर रखना चाहिये ॥

। आहार का ठीक तरह से काम में लाना ।

अवस्था-प्रकृति-ऋतु और रहनगत अर्थात् व्यवहार का विचार रखकर वे चीजें जो जल्दी पचने वाली हों, जो अच्छे स्वाद वाली हों और शरीर को भले प्रकार पोषण करें खाना चाहियें ॥

कच्ची-सड़ी हुई-जली हुई या दुर्गंध वाली वस्तु न खाना चाहिये और खाने पीने की चीजें अति गर्म कभी न काम में लाना चाहिये ॥

धातुओं अर्थात् खान से निकलने वाली वस्तुओं में से लवण-वनस्पति में से नाज-ऋतु फल-और हरा शाक-मांस अहार के स्थान पर दूध, घृत और मक्खन प्रति दिन काम में लाना अति लाभदायक है परन्तु किसी वस्तु को चाहे वह कैसी ही स्वाद-दी विना भूख खाना वा भूख से अधिक खाना सर्वथा हानि पहुंचाता है ॥

एक ही आहार को चिरकाल तक करते रहना भी आरोग्यता को हानि पहुंचाताहै क्यों कि शरीर के पोषणके लिये जुदी२ चीजों की आवश्यक्ता है और उन सब का शरीर में पहुंचाया जाना आवश्यक है इस हेतु रहनगत पर ध्यान रख के जुदे जुदे आहार अपने लिये छांटना और उन को परिमाण से काम में लाना उचित है-जैसे विचार परिश्रम के लिये कंद, मूल, सेव, अंगूर, बादाम इत्यादि फल; शारीरिक परिश्रम के निमित्त सत और चिकनाई वाली वस्तुएं जैसे चांवल, शक्कर इत्यादि; मांस बढ़ाने के लिये गेहूं, जौ, दाल इत्यादि और अस्थि

बढ़ाने और पुष्ट करने के लिये खार और चूना मिली हुई वस्तुएं—दूध, घृत आदि अधिक लाभकारी हैं ॥

खाने के समय ठीक २ नियत करने चाहियें-बहुधा प्रति दिन कम से कम दो बार और अधिक से अधिक चार बार उचित कालांतर के साथ आहार करना योग्य है ॥

कोई वस्तु जो बहुत सी हाथ आगई हो परिमाण से अधिक कभी न खानी चाहिये और इसी भांति यदि कोई निकम्मी वस्तु मिलजावे तो कभी काम में न लाईजावे ॥

भोजन के समय चित्त को बहुत प्रसन्न रखना और खाने को मुंह के थूक के साथ भले प्रकार गीला और महीन करके और दांतों से धीरे २ चिगलकर खाना चाहिये ॥

भोजन के पश्चात् थोड़े समय के लिये टहलना, कुछ समय तक दाहिनी करवट से लेटना, राग इत्यादि सुन्ना वा धीरे २ अपने आप गाना वा किसी मनोहर पुस्तक अथवा समाचार पत्र को पढ़ना उचित है। उस समय बहुत परिश्रम वा चिंता अथवा दौड़ने भागने का काम करना वा ऐसी बैठक बैठना जिस में पेट दबे वा एकाएक ही सो जाना आरोग्यता का हानि कारक है ॥

। स्वच्छता अर्थात् सफ़ाई ।

जैसे वायु, जल और आहार शरीर के पोषण के लिये आवश्यक हैं वैसे ही स्वच्छता अर्थात् सफ़ाई को भी एक अति आवश्यक और धर्म का मुख्य बिभाग समझना चाहिये ।

बाहरी वा भीतरी भेद से स्वच्छता के कई बिभाग हैं जिन में से शारीरिक धर्म संबंधी स्वच्छता का वर्णन इस स्थान में किया जाता है जो बहुधा जल, मिट्टी, पवन और अग्नि के द्वारा होती है ॥

। शरीर की शुद्धि ।

शरीर में हजारों छिद्र हैं जिन को रोम कहते हैं और यद्यपि वायु का विशेष विभाग नासिका के ही द्वारा शरीर में जाता और बाहर निकलता है, इसी रीति से जल और आहार मुख के द्वारा शरीर में जाते हैं और मल मूत्र होकर बाहर निकलते रहते हैं, तो भी बहुत सा सूक्ष्म विभाग इन तीनों वस्तुओं का संपूर्ण छिद्रों में होकर शरीर में जाता और बाहर निकलता रहता है इस कारण से सारे छिद्रों को नीचे लिखी रीतियों से शुद्ध रखने का उपाय करते रहना आवश्यक है ॥

(१) लघु शंका या मल के त्याग करने के पश्चात् उन के स्थानों की शुद्ध करना, नाखूनों से मैल निकाल कर हाथ और उंगलियों को मिट्टी से धोना चाहिये ॥

(२)दांत और जिह्वा को दांतुन से अच्छी तरह शुद्ध करना चाहिये बंबूल वा नींब के वृक्ष की कोमल शाखा विशेष लाभदायक है यदि दांतुन न मिल सके तो सुंठि और लवण के चूर्ण को काम में लाना उचित है ॥

(३) सारे शरीर को प्रति दिन जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये, जिस को बोल चाल में स्नान करना कहते हैं स्नान का जल भी निर्मल होना चाहिये बहते हुए पानी में जो थोड़ा ऊपर से गिरता हो स्नान करना अधिक लाभकारी है स्नान के समय सारे शरीर को गीले कपड़े से धीरे २ रगड़कर मैल उतारना और स्नान के पश्चात् सूखे कपड़े से पूंछना उचित है ॥

प्रश्न–स्नान के लिये उचित समय कौनसा है ॥

उत्तर–हर मनुष्य अपने अवकाश, अवस्था, आरोग्यता और ऋतु का ध्यान करके जो समय उचित समझा जावे उसी

समय पर स्नान करे, बहुधा सोने के पश्चात् मल मूत्र का त्याग करके स्नान करना चाहिये ॥

जब शरीर थका हुआ हो, गर्म हो, पेट भरा हुवा हो, मल त्याग करने की शंका हो, उस समय में स्नान करना उचित नहीं। बीमारी के समय मुख्य करके दस्त और अतिसार अर्थात् पेचिश की बीमारी में न्हाना उचित नहीं।

गर्म ऋतु में सूर्य उदय से पहिले स्नान करना अति फलदाई है जिन का शरीर नैरोग्य हो उन को बहुधा उसी समय ठंडे जल से और यदि हो सके तो बहते पानी में स्नान करना चाहिये। निर्बल और वृद्ध मनुष्यों को बहुधा सर्द ऋतु में थोड़े उष्ण से बंद मकान में स्नान करना उचित है ॥

ग्रीष्म इत्यादि सब ऋतुओं में स्नान के पीछे धोती आदि गीला वस्त्र धारण करना हानि कारक है ॥

(४) प्रति दिन, तीसरे दिन या आठवें दिन, विशेष करके शुष्क और शीत काल में सारे शरीर पर तैल मर्दन करना बहुत गुणकारी है ॥

(५) केशों को सदा स्वच्छ रखना चाहिये, आठवें दिन वा जैसा अवसर हो, किसी मैल निकालने वाली वस्तु साबुन, आंवले इत्यादि से केशों को धोकर तैल लगाना उचित है ॥

(६) स्नान के समय और सोते और जागते समय भी नेत्रों को ठंढे और निर्मल जल से भिगोना और छींटे मारकर अच्छी तरह शुद्ध करना चाहिये यदि नेत्र किसी कारण से निस्तेज और मैल से भरे हों तो त्रिफला अर्थात् हरड़े बहेड़ा और आंवले के पानी से धोकर कुछ काल पीछे वा सोते समय बच्चों के काजल और बड़ी अवस्था वालों के सुर्मा लगाना अच्छा है ॥

(७) हेमन्त ऋतु में थोड़े समय नग्न शरीर से धूप में बैठने और ग्रीष्म ऋतु में चांदनी में बैठने से, सूर्य और चंद्रमा की किरणों से शरीर बहुत निर्मल, शुद्ध और प्रफुल्लित हो जाता है ॥

। उज्वल वस्त्र ।

वस्त्र ऐसी भांति के पहन्ने योग्य हैं कि जिन में होकर सर्दी वा गर्मी अवगुण न कर सके जो ऐसे कसे और जकड़े हुए नहीं कि जिन के धारण करने और उतारने में बहुत परिश्रम पड़े और स्वास लेने में रुकावट हो वा कोई विभाग शरीर का दवा हुवा रहे और न ऐसे खुले हुए हों कि चलते समय पवन से उड़ने लगें वा इतने लंबे हों कि पृथ्वी से रगड़ते हुए जावें ग्रीष्म ऋतु में मस्तक पर एक थान का साफा और पांव पर मोजे पहन्ना उचित नहीं है ॥

वस्त्रों को समय २ पर झाड़ना और मैल निकालने वाली वस्तुओं और जल से धोना चाहिये जो जल से धोए न जा सकें उन को वायु और धूप से शुद्ध कर लेना चाहिये ॥

जैसे दिन के पहन्ने के वस्त्र शुद्ध और सुथरे रखने आवश्यक हैं, उसी रीति से रात के काम में आने वाले वस्त्र–विछोना इत्यादि और धोती को भी शुद्ध और स्वेत रखना चाहिये ॥

खाने पीने और दूसरे काम में आनेवाले वर्तन और सामान को भी स्वच्छ और सुथरा रखना उचित है ॥

। घर की सफाई ।

रहने का घर ऐसा होना चाहिये जिस में सीम वा गीलापन न हो सूर्य का प्रकाश भले प्रकार आता हो पाखाना ऐसे स्थान में हो कि सारे घर में दुर्गंध न फैलने पावे और जिस की सफाई सुगमता से हो सके ॥

रसोई भी ऐसे स्थान में हो कि धूंआं सब घर में न फैल सके, रसोई में प्रति दिन भोजन बनाने से पहिले झाड़ू देकर चूने की ज़मीन हो तो पानी से और नहीं तो मिट्टी इत्यादि से चौका देना उचित है, रसोई के घर में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि न तो जल पृथ्वी में प्रवेश होने पावे और न एक स्थानमें एकत्र होकर सड़ने लगे सीम और दुर्गंध को दूर करने के हेतु सावधानी के तौर पर यदि लोवान इत्यादि भी जलाया जावे तो अति श्रेष्ठ है ॥

पाखाना और मोरियां प्रति दिन साफ होनी चाहियें घर के बाहर वा चौक और वरामदे में तुलसी इत्यादि छोटे वृक्ष और पुष्पों की कूंडियां अनुक्रम से लगाना और कमरों को पुष्पों के गुच्छों से और ऋषि मुनियों के चित्रों से और उपदेशक वाक्यों से सजाना चाहिये ॥

वर्षा काल के पीछे सारे घर में चूने से धुलाई करा के शुद्ध कर लेना उचित है ॥

गीला पन वा दुर्गंध दूर करने के लिये वा शर्द ऋतु में तापने और घर को गर्म रखने के लिये अवश्य अग्नि जलाई जाती है इस हेतु धूम-निर्गम अर्थात् धूआं निकलने का मार्ग भी रखना आवश्यक है यदि धूआं निकलने की नाली न हो तो ऊपर छत के पास और नीचे पृथ्वी के पास ऐसे तावदान और छेद रखने आवश्यक हैं जिन के द्वारा धूंआं निकल सके और निर्मल वायु आसके जहां तावदान और प्रकाश आने के छिद्र न हों वहां कोयला इत्यादि जलाना विशेष कर के द्वार वंद करके ऐसा करना आरोग्यता को वहुत ही हानि पहुंचाताहै ॥

। प्रकाश को काम में लाना ।

रात्रि के समय प्रकाश काम में लाया जाता है । मिट्टी के तेल में जिस को लोग बहुधा जलाने के काम में लाते हैं दुर्गंध और धुंआ विशेष होने का विकार है इस हेतु तिल वा सर्सों का तेल या मोमबत्ती जलाना उचित है यदि अधिक प्रकाश की आवश्यकता हो तो मिट्टी का तेल ऐसी लम्पों में जलाना चाहिये जिन में काच की चिमनी वा कोई दूसरा उपाय ऐसा हो कि धूंआं और काजल कम निकले ॥

कम प्रकाश वा अधिक प्रकाश के सामने अति सूक्ष्म काम करने से नेत्रों को हानि पहुंचती है इस कारण यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि सूक्ष्म काम करते समय पूरा प्रकाश रहे और लेम्प इत्यादि को सनमुख रखने के स्थान में अथवा तो पीछे की ओर वा बांई ओर उचित दूरी और ऊंचाई पर रखना चाहिये और यदि बहुत काल तक काम करना पड़े तो हर घंटे, आध घंटे के पीछे नेत्र मूंदकर एक दो मिनट तक विश्राम लेना उचित है ॥

ऊपर लिखे नियमों के अनुसार चलने से शारीरिक आरोग्यता अच्छी बनी रहती है और रोग नहीं लगने पाता

प्रश्न–क्या ऐसे नियमों पर चलने से महामारी से बचना भी संभव है ॥

उत्तर–महामारी के बल का प्रभाव बहुधा उन्हीं शरीरों पर विशेष चलता है जिन में उसी प्रकार का पदार्थ पहिले से उपस्थित हो और ऊपर लिखी रीतियों पर चलने से वैसा पदार्थ बनने ही नहीं पाता इस कारण महामारी के रोगों से भी बहुत बचाव होजाता है तो भी महामारी की रोक और उस

से वचने के लिये सामाजिक उन्नती का भार उठाने वाले मनुष्यों को प्रबंध करना चाहिये जिस का वर्णन सामाजिक धर्म में विधी पूर्वक किया जावेगा ॥

। शरीर एक घर की भांति है ।

प्रगट हो कि मनुष्य का शरीर केवल घर वा यंत्र के भांति है और यद्यपि शरीर का प्रभाव, आहार और रहनगत के कारण, मन इत्यादि पर भी अवश्य पड़ता है—जैसे भूक प्यास निद्रा के कारण आलस्य, मस्तक की पीड़ा इत्यादि में मन की शक्तियाँ—स्मृति इत्यादि ठीक २ निज का काम नहीं कर सक्तीं, तो भी शरीर पर मन का प्रभाव अधिक पड़ता है—जैसे भय, क्रोध आदि शरीर को इतना अवगुण पहुंचाते हैं कि कभी २ बहुत असाध्य रोगादिक होजाते हैं इस कारण से शारीरिक धर्म्म को पालन करते हुए मानसिक धर्म्म इत्यादि शारीरिक धर्म से कई गुणा अधिक सावधानी से पालन करना चाहिये जिन का वृत्तान्त आगामी विभागों में वर्णन होगा ॥

। प्रथम भाग ।

। दूसरा अध्याय ।

। मानसिक धर्म्म ।

। मानसिक धर्म की व्याख्या ।

जैसे प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला स्थूल शरीर अर्थात् पंच महाभूत की काया त्वचा, मांस, रुधिर, अस्थि, मेद और वीर्य से बना हुआ है वैसे ही प्राण जो जीवन और चलने फिरने का कारण है, कर्म इंद्रियों, ज्ञान इन्द्रियों और प्रतिक्षण संकल्प विकल्प करने वाले मन से बना हुआ है ॥

इन सब शक्तियों से बना हुआ सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के भीतर है जिस की शक्तियां स्थूल शरीर से कई गुणा अधिक है और केवल प्रकाश रूप है—स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ढकन या खोला मात्र है जिस पर उस का प्रभाव प्रतिक्षण पड़ता रहता है ॥

। मानसिक धर्म की व्याख्या अलंकार में ।

अलंकार रूपी कथा मे धार्मिक पुरुष ऐसा कहते है कि शरीर रूपी नगर में मन राजा की भाति है, ज्ञान इंद्रियां उस के अधिकारी, कर्म इन्द्रियाँ उस के सेवक, संपूर्ण नाड़ियां और पट्ठे उस की सेना और वीर्य्य धन का भंडार है। वीर्य्य जितना अधिक होगा और सम्पूर्ण कारनारियों, चाकरों और सेना से ठीक२ काम लेकर उन को वीर्य्य रूपी धन से प्रसन्न किया जावेगा, उतनी ही

राज्य की वृद्धि होगी और यदि वीर्य थोड़ा होगा और उस के बढ़ाने का उपाय न किया जावेगा और उस को वृथा और विपरीत से व्यय किया जावेगा तो मन रूपी राजा का तेज जाता रहेगा, कारबारी निर्बल होकर थक जावेंगे और अंतमें काम करने से उत्तर दे देवेंगे और राज नष्ट को प्राप्त हो जावेगा ।

मन की शक्तियां अगणित हैं, जिन के ठीक २ बर्ताव करने से सर्व सुख प्राप्त हो सक्ते हैं और यदि अज्ञानता, आलस्य और लालच आदि विषयों के कारण सम्पूर्ण शक्तियों की ठीक २ वृद्धि न होने पावे वा उनसे पूरा २ काम ही न लिया जावे वा विपरीत काम लिया जावे तो मन इंद्रियों के बंधन में फंस कर भांति २ के दुःखों में पड़ जाता है और इन्द्रियां भी अध्यक्ष रहित सेना के अनुसार व्याकुल और बिखरी हुई रहती हैं ।

।मन को सम्पूर्ण अवस्थाओंमें एकाग्र रखना चाहिये।

जैसे दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन सदैव होते रहते हैं, और ग्रीष्म के पश्चात् शरद और शरद् के पश्चात् ग्रीष्म का तार लगा हुआ है, इसी प्रकार सांसारिक कामों में सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख लगा हुआ है । इस हेतु किसी हर्ष वा शोक में अधिक लिपायमान न होकर मन को सम्पूर्ण अवस्थाओं में सावधान और एकाग्र रखना चाहिये । न आनन्द के अवसर पर अत्यंत ही आनन्दित हो जाना उचित है, न दुःख के समय में बहुत ही घबराजाना योग्य है-इन दोनों अवस्थाओंको चिरस्थायी न समझकर अपने सदाचारों में सच्चे मन से लगा रहना चाहिये। जितने बड़े २ मनुष्य प्रसिद्ध काम करके अपना नाम कर गये-

हैं, वे सब ऊपर लिखित रीति अनुसार अपने करने योग्य कामों को करते रहे हैं उदाहरण की तरह पर संक्षेप वृत्तान्त महाराजा रामचन्द्र जी का लिखा जाता है ॥

। दृष्टान्त महाराजा रामचन्द्रजी ।

जब महाराजा रामचन्द्र जी को उन के पिता दशरथ जी ने राज्य देने का विचार किया उस समय अयोध्या वासियों और रामचन्द्र जी की माता कौशल्या इत्यादि को अत्यन्त हर्ष हुआ. जैसे २ राज्य तिलक का समय पास आता जाता था पुरवासियों का आनन्द बढ़ता जाता था। यहांतक कि जिस दिन राज्य तिलक होना था, उस से पहली रात्रि को सब रात नगर और प्रबासों में भांति २ के आनन्द मंगल किये गये, परन्तु महाराजा रामचन्द्रजी के चित्तमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ। वे जैसे सदैव रात्रि को सोया करते थे उसी तरह सो कर और पिछले प्रहर उठकर नित्य नियम करते रहे। और फिर सदैव की रीति अनुसार महाराजा दशरथ के पास गये वहां जाते ही राज्य के बदले वनवास मिला, उस समय भी महाराजा रामचन्द्रजी को कुछ भी क्लेश न हुआ--वरन वे यह कहते थे कि अब वन के रमणीक स्थानों को देखकर चित्त को प्रसन्न करेंगे और एकांत वासी महात्माओं के दर्शन और सत्संग से लाभ उठावेंगे ॥

राज्य के स्थान में वनवास मिलना कुछ कम विपत्ति न थी परन्तु उस आपदा के समय में पिता के मरने का घोर कष्ट-पतिव्रता स्त्री सीताजी को रावण का हरकर लेजाना–रावण के साथ युद्ध में योद्धा भाई लक्ष्मणजी का अत्यन्त घायल होना-निदान चोट पर चोट का पड़ना ऐसी दुखदाई बातें थीं, जिन

के सुनने से जी कांप जाता है, परन्तु महाराजा रामचंद्रजी ने सब क्लेशों को एक सच्चे धार्मिक और योद्धा पुरुष के समान सहन करते हुए चौदह वर्ष के आपत्ति काल को अति पुरुषार्थ, पराक्रम, धर्माचार के साथ व्यतीत करके फिर स्वदेश अर्थात् अयोध्या में जाकर राज्य किया ॥

। मन के बुरे विचारों को रोकने की रीति ।

मनुष्य का मन समुद्र की नाईं है जिस में संकल्प विकल्प की लहरें उठती रहती हैं ॥

भारत वर्ष के ऋषियों ने मन को दो जिह्वावाला सर्प कहा है, एक जीभ में अमृत भरा हुआ है और दूसरी में विष, अच्छे विचारों को अमृत और बुरे विचारों को विष समझना चाहिये॥

पहिले मन में संकल्प उत्पन्न होता है उस के अनुसार कर्म होता है और अपना फल सुख वा दुःख देता हुआ संस्कार रूप बीज की भांति मन में उपस्थित रहता है। इसी प्रकार संस्कार से कर्म्म और कर्म से संस्कार का चक्कर बराबर चलता रहता है और अच्छे वा बुरे विचारों में मन अहर्निशि फंसा रहता है ॥

बुरे विचार एक दिन में उत्पन्न नहीं होते हैं परन्तु धीरे २ बहुत कालतक उन में फंसे रहने से वे बलवान् हो जाते हैं। बहुधा आदि में किसी कुसंग के कारण, किसी एक विषय की निर्बल इच्छा उत्पन्न होती है, विषयों में, चाहे धन की अभिलाषा हो, चाहे नाम की, चाहे अच्छे घर और अच्छे अहार की, चाहे गौरवताई वा प्रभुताई की, चाहे भोग विलास की, मन उस विषय को धीरे २ पसंद करने लगता है ॥

फिर उस को भोगने की इच्छा उत्पन्न होती है, उस समय उस विषय के प्राप्त होने के उपाय सोचे जाते हैं। पहिले

उचित उपायों पर दृष्टि पड़ती है परन्तु उन में कष्ट होने के हेतु वा निष्फलता के कारण अनुचित साधन काम में लाये जाते हैं परन्तु यह सावधानि रखनी पड़ती है कि उन अनुचित साधनों को कोई जानने न पावे और साथही उन अनुचित साधनों को उचित स्थापित करने की चिंता रहती है- कि बात चौड़े आजाने पर उस के प्रमाण दिये जासकें. अंत में यह दशा होजाती है कि कोई चाहे जितना बुरा कहे, चाहे जैसे कष्ट उत्पन्न हों, चाहे जैसे अपराध वा पाप करने पड़ें, परन्तु चित्त उस ओर से नहीं हट सक्ता. घरबार को छोड़ देना, सर्दी गर्मी को सहलेना, प्राणतक का त्याग कर देना, सुलभ जान पड़ता है परन्तु उस बुरे स्वभाव को छोड़ना कठिन दीख पड़ता है । यदि जो बुरा बिचार पहली बार उत्पन्न हुआ था उस को बुरा समझकर रोक दिया जाता, तो मन फिर कभी उस ओर न जाता और विषय रूपी शत्रु हृदय रूपी कोट में कभी न घुसने पाता ॥

अतएव बुरे विचारों से मन को शुद्ध करने के लिये, कुसंग का त्याग और सत्संग का ग्रहण करना उचित है- सत्संग की सहायता से सम्पूर्ण बुरे विचारों को एक २ कर के मन से निकाल देना चाहिये ॥

यदि ऐसे महात्माओं का सत्संग न मिल सके, जिन की विद्या और व्यवहार सम हैं, तो उस के बदले ऐसे महात्माओं की बनाई हुई धर्म्म संबंधी पुस्तकें, जो प्रति अवसर और स्थान में सुगमता से मिलनी संभव हैं, अवलोकन करना चाहिये-

बचपन से ही यदि मनुष्य कुसंग से बचकर सत्संग रूपी धन को प्राप्त करता रहे तो उस का मन स्वाभाविक ही शुद्ध रहेगा ॥

। मन को शुद्ध करने की दूसरी रीति ।

निम्न लिखित विषयों अर्थात् बुराइयों से, जहां तक हो सके मन को बचाना चाहिये, यद्यपि मुख्य २ अवस्थाओं और अवसरों में इन विषयों से बचना इतना दुर्लभ है, कि प्रायः असंभव कहना चाहिये तोभी सोच विचार रखने और उद्योग करते रहने से इन विषयों के प्रभाव से बहुत कुछ बचना सम्भव है. वे दोष नीचे लिखे अनुसारहैं:–क्रोध, अभिमान, सुकुमारता, ईर्षा, द्वेष, निन्दा, भय, लज्जा, शंका, लोभ, मोह, हठ वा वाद, पक्षपात, स्वार्थ, चिन्ता, असावधानी, आलस्य, आतुरता, लल्लो पत्तो, छल, असत्य अर्थात् झूंठ ॥

। १–क्रोध वा रिस ।

यह दोष थोड़े से कारण से ही उत्पन्न हो जाताहै और शरीर को अग्नि की भांति तपाने और जलाने लगताहै. क्रोध की व्यवस्था में मन और इंद्रियां पराधीन हो जाती हैं और उस अविवेकता के झक्कड़ और रोष की अवस्था में कई ऐसे अयोग्य और अनुचित कर्म्म हो जाने संभव हैं, जिन का बुरा प्रभाव समस्त अवस्था भर सहना पड़े और पश्चात्ताप करना पड़े, शास्त्रार्थ के समय क्रोध करने से विचार शक्ति और तर्क नष्ट होजाते हैं न्याय, निष्ठुरता, प्रबलता, और निर्दयता से बदल जाता है सत्य निर्णय की खेवट बंद होकर अपनी जय का उपाय प्रारंभ होजाता है, इस हेतु सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी कोई बात न होने पावे जिस से क्रोध उपजे और उन सब बातों से जो क्रोध दिलावें दूर रहना चाहिये। क्योंकि जिस मनुष्य को ज्वर का भय हो उस को उन संपूर्ण बस्तुओं से जो ज्वर वृद्धि कारक हों अवश्य त्याग करना उचित है। क्रोध को रोके जाने वा कम किये जाने की अपेक्षा

क्रोध को उत्पन्न ही न होने देना बहुत अच्छा है, यदि किसी मुख्य कारण से क्रोध आजावे, तो अपने आप को निरपराधी निश्चय कराने के बदले,वहांसे हट जाना उचित है—जैसे सर्प को किञ्चित् स्थान मस्तक टेकने को भी मिलजाता है, तो वह अपने सकल शरीर को भी समेट कर वहां लेजाता है, इसी रीति से जिस मनपर क्रोध को थोड़ा भी अधिकार होजाता है उस मन का क्रोध अधिपति हो जाता है ॥

क्रोध को रोकने का एक यह भी उपाय है, कि जब क्रोध का आना जान पड़े तो बड़े धीरज और गंभीर वृत्ति के साथ मन को सँभाले रखना चाहिये ॥

स्वाभाविक एक मनुष्य दूसरे को कष्ट पहुंचाना कदापि नहीं चाहता है परन्तु तामसी पुरुष बहुधा वृथा ही ऐसा सोच लेता है कि उस दूसरे मनुष्य ने मुझ को पीड़ा पहुचाने का विचार किया था ॥

यदि क्रोध का बल न रुक सके, तो जिह्वा को रोकने का उद्योग करना चाहिये, कटु और तिरस्कार युक्त वचनों से आक्षेप करना वा क्रोध की बातों को रोष के साथ कहना अग्नि को अधिक प्रज्वलित करना और ज्वाला को भड़काना है. चुप होजाने से क्रोध आपसे आप चला जाता है और शान्ति अपनी छाया डाल देती है ॥

प्रगट हो कि किसी मनुष्य पर प्रीत के हेतु उस की भलाई के लिये क्रोध करना अनुचित नहीं है—भलाई से अथवा प्रेम से किसी बुराई वा अन्याय के विरुद्ध क्रोध वा अप्रसन्नता दिखलाना निंदा के योग्य नहीं है ॥

। २ अभिमान वा अहंकार ।

सोच विचार कर देखो तो क्षणभंगुर मनुष्य की आयुर्दा जल के बुदबुदे के समान है, रोग इत्यादि के समय निपट

पराधीन होजाता है और थोड़े समय में जैसे रीते हाथ आया था वैसे ही इस असार संसार से कूच कर जाता है. यदि विद्या धन और राज्य का अभिमान किया जावे तो संसार में एक से एक बढ़ चढ़कर विद्यावान, धनाढ्य और बड़े से बड़े राज्य वाले विद्यमान हैं ॥

अपने से एक वा अधिक पद ऊंचे मनुष्यों की भांति रहना वा दिखलाना अभिमान का यथार्थ लक्षण है, कंगाल जो दिखावट में अपने आप को धनाढ्य जतलाते हैं अर्थात् विवाह इत्यादि अवसरों पर रुपया उधार लेकर वृथा व्यय करते हैं या मांगे के आभूषण वस्त्र पहिन कर अपनी भड़क दिखलाते हैं-थोड़ी विद्यावाले जो अपने आप को बड़े विद्वान दिखाना चाहते हैं ये सब एक प्रकार के घमंडी है । अभिमानी की इच्छायें इतनी अधिक होती हैं कि वे कभी पूरी नहीं हो सक्तीं. मन एक छोटी सी वस्तु है, परन्तु बड़ी २ वस्तुओं की इच्छा करता है, वो सेर भर नाज नहीं खा सक्ता किंतु सब जगत् को भी अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता । घमंड से अंत में सदैव नीचा देखना पड़ता है और इस दुःख को असहन समझकर अभिमानी सदैव व्याकुल रहता है ॥

यह अच्छा है कि कोई मनुष्य भला हो और बुरा कहा जावे, विरुद्ध इस के कि बुरा हो और भला प्रसिद्ध किया जावे, प्रथम अवस्था में विनय और नम्रता प्राप्त होकर शान्ति होती है और दूसरी में झूठे यश और कीर्ति से मनुष्य घमंडी हो जाता है. न्यूनता से अपने को छोटा दिखलाना वा दीनता से बातें करना भी एक भांति का घमंड है, जिस से बचने के लिये मनुष्य को चाहिये कि जैसा हो वैसा ही अपने को बतलावे और अपनी अल्प शक्ति पर दृष्टि डालकर और पर-

क्रोध को उत्पन्न ही न होने देना बहुत अच्छा है, यदि
मुख्य कारण से क्रोध आजावे, तो अपने आप को
निश्चय कराने के बदले,वहांसे हट जाना उचित है-जैसे सा
किञ्चित् स्थान मस्तक टेकने को भी मिलजाता है, तो
अपने सकल शरीर को भी समेट कर वहां लेजाता है,
रीति से जिस मनपर क्रोध को थोड़ा भी अधिकार होजा
उस मन का क्रोध अधिपति हो जाता है ॥

क्रोध को रोकने का एक यह भी उपाय है, कि जब
का आना जान पड़े तो बड़े धीरज और गंभीर वृत्ति के
मन को सँभाले रखना चाहिये ॥

स्वाभाविक एक मनुष्य दूसरे को कष्ट पहुंचाना
उस को अच्छा है परन्तु तामसी पुरुष । सुनने की अभि
रखता था, एक बार सोलन जो यूनान के मुख्य सार
में से था, क्रूसन के दरबार में गया क्रूसन ने अप
के अनुसार उस हकीम को भी अपना धन दिखलाया
प्रशंसा सुनने की अभिलाषा की, सोलन ने उस की
ऐश्वर्य और प्रताप को देखकर प्रशंसा करने के ना है,
धारण की । क्रूसन को यह मौन अप्रिय लगी और ान्ति अ
करने लगा कि तुम संसार में सब से अधिक भाग
को समझते हो! सोलन ने एक मनुष्य का नाम की भ
अपने देशकी स्वाधीनता बनी रखने के हेतु, वि यथा
मारागया था-क्रूसन ने फिर पूछा कि उस से दूसर अप्रसन्न
किस को सुखी जानते हो! सोलन ने उत्तर दिया
बालक थे जिन्हों ने अपने माता पिता की भले प्रक
थी और आज्ञा मानी थी, जिस के बदले उन की मा
आशीर्वाद दिया कि सब से बड़ा सां उन को
हो! और वह सुख शान्ति के साथ मृ प्र

पराधीन होजाता है और थोड़े समय में जैसे रीते हाथ आया था वैसे ही इस असार संसार से कूच कर जाता है, यदि विद्या धन और राज्य का अभिमान किया जावे तो संसार में एक से एक बढ़ चढ़कर विद्यावान, धनाढ्य और बड़े से बड़े राज्य वाले विद्यमान हैं ॥

अपने से एक वा अधिक पद ऊंचे मनुष्यों की भांति रहना वा दिखलाना अभिमान का यथार्थ लक्षण है, कंगाल जो दिखावट में अपने आप को धनाढ्य जतलाते हैं अर्थात् विवाह इत्यादि अवसरों पर रुपया उधार लेकर वृथा व्यय करते हैं वा मांगे के आभूषण वस्त्र पहिन कर अपनी भड़क दिखलाते हैं-

थे। क़ाफ़न के देश पर चढ़ाई करके उसने आप को बड़े हराकर बंद कर लिया और आज्ञा की कि वह गाढ़े कांटों में जला दिया जावे ॥

जब अग्नि भले प्रकार प्रज्वलित होगई और क़ाफ़न को उस में डालने का विचार किया गया, उस समय उस को सोलन का वचन स्मरण आया और उस के मुख से स्वतःही सोलन ३ नाम तीन बार निकला। कैखुसरो ने उस शब्द का अर्थ और उच्चारण का कारण पूछा और सकल वृत्तान्त ज्ञात होने पर उस के मन पर भी सोलन की शिक्षा और संसार की चपलता का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसने क़ाफ़न को जीवदान दिया और उस का राज्य भी पीछा उस को दे दिया ॥

इस संयोग के पीछे क़ाफ़न को धन संपदा का अभिमान कभी नहीं हुआ ॥

। ३ सुकुमारता ।

मन को नित्यप्रति सुख चैन में रखना भी बड़ा दोष है. ग्रीष्म ऋतु में पंखे और ख़स की टट्टी के नीचे बैठे हुए भी

मस्तक की पीड़ा होना और सर्द ऋतु में अनेक वस्त्रों के पहने हुए और अंगीठीसे तापते हुए भी, सर्दी का लगजाना सुकुमार पुरुषों की प्रकृति में गिना जाता है और उन का मन अति कोमल होने के हेतु तितीक्षा अर्थात सर्दी गर्मी सहने के योग्य कभी नहीं रहता ॥

। नव्वाब वाजिद अलीशाह का संक्षेप वृत्तान्त ।

नव्वाब वाजिद अली शाह बाल्य अवस्था से ही बहुत लाड में पले थे. यह एक प्रसिद्ध बात है कि जिस दिन किञ्चित् मात्र भी अधिक दूध लेने में आ जाता था, तो नव्वाब साहब को दस्तों का रोग होजाता था. दही खाने से सर्दी लग जाती थी और कची सुंठ (अदरक) खाने से मुख में छाले हो जाया करते थे । और यदि कोई मनुष्य थोड़ा चिल्लाकर बोलता तो मस्तक में पीड़ा होने लगती थी ॥

जब गवर्नमेंट अंगरेजी ने अवध के देश पर अपना अधिकार जमाया और नव्वाब साहब के महलों को रातोंरात सेना के योद्धाओं ने घेर लिया, उस समय नव्वाब साहब अज्ञात प्रमत्त अवस्था में और साधारण स्त्रियों के वस्त्र और हाथों में चूड़ियाँ इत्यादि पहिने सोते हुए थे। जब वे एक महल से दूसरे महल में जाने लगे, पहरे के जवान ने अपनी सदैव की रीति के अनुसार उग्र ध्वनि से पुकारा " होल्ट हू कम्ज़ देअर " अर्थात् ठहरो तुम कौन हो जिस को सुनकर नव्वाब साहब की छाती धड़कने लगी और मूर्छा आगई और जब नव्वाब साहब अंगरेजी अफसर के सामने आए तो यद्यपि वे बड़े पुष्ट और रूप यौवन सम्पन्न थे परन्तु यह कहकर कि मैं निपराधी हूँ डाढ़ें मारकर बच्चों के समान रोने लगे ॥

। ४ ईर्षा ।

इस संसार में सम्पूर्ण मनुष्यों को सुख वा दुःख, हानि वा लाभ, स्तुति वा निंदा, संपत्ति वा विपत्ति, केवल अपने कर्म्मों के अनुसार मिलती है अतएव किसी मनुष्य को बढ़ा हुआ देखकर ईर्षा करने से उस की उन्नति में किसी प्रकार की हानि नहीं हो सक्ती, केवल द्वेषी का जीव जलता रहता है और वह सब की दृष्टि में तुच्छ होजाता है और उस का ईर्षा करने का स्वभाव जैसे २ बढ़ता जाता है उतनी हीं अचैनता उस मनुष्य को रहती है और न्याय शक्ति उस से पृथक् हो जाती है ॥

ईर्षा बहुधा दूसरों के सुख को देखकर उत्पन्न होती है– बड़ों से इस कारण कि वे हमारे बराबर नहीं हैं–छोटों से इस हेतु कि वे कदापि हमारे बराबर न हो जावें–और बराबर वालों से इस निमित्त कि वे हमारे बराबर क्यों हैं। द्वेषी ऊपर लिखित कारणों से दूसरों के दोष, दुःख और विपत्ति को देखके प्रसन्न हुआ करता है ॥

द्वेष रखना चौड़े बैरभाव रखने से अधिक अधम और भयंकर है, क्यों कि कलह करने वाला जब कलह का कारण नहीं रहता है तो विरोध रखना त्याग कर देता है, परन्तु द्वेषी कभी मित्र नहीं होता शत्रु तो चौड़े लड़ाई करता है और शत्रुता का सच्चा कारण होने से उस को चौड़े करने में कभी भय वा शंका नहीं लाता, परन्तु द्वेपी केवल अपनी कुटलता के कारण द्वेष करता है जिस को किसी मनुष्य के सामने चौड़े नहीं करसक्ता और प्रगट लड़ने के विरुद्ध छिप २ कर अति तुच्छता और कातरता के साथ आक्षेप करता रहता है ॥

द्वेपियों ने अपनी निंदनीय प्रकृति ईर्षा के वश होकर धर्म्म पर अधर्म्म रूपी शस्त्रों से अनेक बार आक्षेप किये हैं और

उस को नष्ट करने में अपनी शक्तिभर कोई बात शेष न छोड़ी, महात्माओं को दुःख पहुंचाया, मित्रों के साथ छल किया, भले मनुष्यों की निंदा की, निष्पापियों का हनन किया,यहांतक कि अनेक प्रकार के बुरे कर्म्म करते २ अपने आप को नष्ट किया– अतएव धार्मिक पुरुषों को उचित है कि ईर्षा रूपी बीज को अपने मन रूपी भूमि म कदापि न बोवें ॥

। ५ द्वेष अर्थात शत्रुता ।

जब मनुष्य जन्म धारण करता है तो उस का न कोई शत्रु होता है न मित्र, धीरे २ उसी के कर्तव्य ही शत्रुता वा मित्रता के कारण होते जाते हैं. द्वेष दोष से मन में नित्य एक प्रकार की जलन् और अप्रसन्नता रहा करती है और जिस के साथ द्वेष किया जाता है उस की ओर से प्रतिक्षण भये लगा रहता है, इस कारण उचित है कि सम्पूर्ण पुरुषों के साथ यथायोग्य बर्ताव करते हुए, मन में किसी से भी द्वेष भाव न रक्खा जावे ॥

यदि मनुष्य अच्छे कर्म्म करने वालों से मित्रता रक्खे, दातारों का धन्यवाद करता रहे, दुःखियों की सहायता करता रहे, और कुकर्म्मियों से अलग रहने का उपाय करता रहे, तो द्वेष के बुरे प्रभाव से बहुत कुछ बच सक्ता है ।

। ६ निंदा ।

प्रति मनुष्य में बुराई और भलाई दोनों गुण होतेहैं नित्य प्रति बुराई को ही, जैसे मक्खी घावपर ही बैठती है, देखते रहना और उस का बढ़ावे के साथ वर्णन करना वा भलाइयों को बुराइयां कर के दिखलाना निन्दा कहलाता है । इस निन्दा दोष के करने वाले का मन बहुत मलीन होजाता है ।

सज्जनों को निन्दा करने वालों से लाभ मिलता है, क्योंकि वे निन्दक पुरुषों के भय से सदैव नियमों पर चलते हैं और यदि वास्तव में कोई बुरी प्रकृति उन में होती है, तो उस से सचेत होकर उस को सुधारने का उपाय करते हैं. यथार्थ में देखो तो निन्दक पुरुष सज्जनों के बिना वेतन के रक्षक अर्थात् चौकीदार हैं ॥

निन्दक पुरुषको उचित् है कि वह अपने छिद्र और दोषों को न्याय की दृष्टि से सदैव देखता रहे. ऐसा करने से नतो उस को दूसरों की निन्दा करने का समय मिलेगा और न वह निन्दा करने का साहस कर सकेगा ॥

। ७ भय अर्थात् डर ।

भय से मन पर बहुत बुरा प्रभाव होता है नित्य प्रति भय में फंसे रहने से आरोग्यता बिगड़ जाती है और आयु शीघ्र पूर्ण हो जाती है एका एक ही भय उत्पन्न होने से मनुष्य बहुधा अचेत हो जाता है कभी २ प्राण भी जाते रहते हैं इस प्रसंग की एक प्राचीन कहानी चली आती है कि एक मनुष्य किसी अंधेरी कोठरी में खूंटी गाड़ने गया था उस का वस्त्र खूंटी में आ गया जिस के कारण भय से वहीं प्राण मुक्त हो गया ॥

सब से बड़ा भय मन के स्वभाव के विरुद्ध काम करने से उत्पन्न होता है. भरतखंड के ऋषियोंने इसी हेतु भय को एक बड़ा दुःख माना है, वे भय से बचने के लिये नित्यप्रति मन में ऐसी प्रार्थना करते रहते थे कि हे परम पिता परमेश्वर ! आप हम को ऐसे शुभ कर्म्मों के करने की सदैव प्रेरणा करते रहिये कि जिन के कारण हम को इस संसार में किसी दूर देश अथवा समीप देश में अर्थात् मन इंद्रियां इत्यादि से अपने अन्तर में और दूसरी प्राणियों से बाहिर में जो भय उत्पन्न होता है

वह नष्ट को प्राप्त हो जावे—हे परमात्मन्! आप हम को मित्र और अमित्र, ज्ञात और अज्ञात सम्पूर्ण पदार्थों से भय रहित कीजिये और ऐसी कृपा कीजिये कि सम्पूर्ण पदार्थ हम को मित्र भाव से सुख दायक होवें ॥

। ८ लज्जा ।

वे इच्छाएं और विचार जिन के करने से अपने मन में वा दूसरे मनुष्यों के सामने लज्जा आवे, सदा त्याग करने के योग्य हैं—बार २ लज्जा आने से मन की कई शक्तियां निर्बल और नष्ट हो जाती हैं— और निर्लज्जता के काम सदा करते रहने से प्रकृति ऐसी बिगड़ जाती है कि उन को चौड़े करने पर समर्थ हो जाता है और इस प्रकार सम्पूर्ण मनुष्यों की दृष्टि में तुच्छ और अधम होकर अथवा तो वह अपने मन में ही अपने आप को नीच समझने लगता है वा इतना निर्लज्ज हो जाता है कि संसार में कोई बड़ा वा अच्छा काम करने का उत्साह उस को नहीं रहता है और पुरुषार्थ, वीरता इत्यादि गुण उस के भीतर से नष्ट हो जाते हैं वा बुराई की ओर लगजाते हैं ॥

। ९ शंका ।

शंका की अवस्था में मन को बहुत क्लेश रहता है—अतएव जिस काम में शंका उत्पन्न हो उस को भले प्रकार से दूर कर लेना चाहिये. शंका का स्वभाव जितना अधिक हो जाता है, उतना ही विवेक कम हो जाता है और अप्रसन्नता सी ज्ञात पड़ती है ॥

शंका, सत्य पूंछो तो, कोई बुरी वस्तु नहीं है यथार्थ में किसी काम को शंका उत्पन्न होने पर भी कर लिया जाता है तो वह अच्छा नहीं है ॥

शंका रूपी चमगादड़ें, अविद्या रूपी सूर्य्य के अभाव में, निकला करती हैं—उन के दूर करने का यथार्थ उपाय यही है, कि जिस विषय में शंका उत्पन्न हो उस को बुद्धि और निरूपण के द्वारा यथोचित तुरंत ही दूर कर लिया जावे और सदा यह विचार रखना चाहिये कि शंका ही शंका में अवसर हाथ से न निकल जावे ॥

। १० लोभ अर्थात् लालच ।

जैसे लालच के कारण मछली जाल में फँस जाती है वैसे ही बड़े २ बुद्धिमान् मनुष्य भी लोभ के वश होकर अयोग्य काम कर बैठते हैं द्रव्य के लालची मतिहीन होकर जुएमें रुपया खो बैठते हैं—रसायण बनाने के ध्यान में तांबे से सोना बना लेने के लालच में आकर सैकड़ों मनुष्य नाश को प्राप्त हो गये ॥

प्रयोजन यह है कि जहां विपरीत से लालच ने मनुष्य के मन पर अधिकार पाया वहां ही वह पुरुष अनेक दुःख और पापों की रज्जु से बँध जाता है लालच के बेग में जो २ भूल मनुष्य करता है उन के लिये यावत् जीवन पछताना और लज्जित होना पड़ता है ॥

। ११ मोह ।

किसी सांसारिक पदार्थ में अनुचित प्रीति रखने को मोह कहते हैं जिस के प्रबल होने पर मन की विचार शक्ति पर तम रूपी असावधानता का आवरण पड़ जाता है ।

माता पिता जब बच्चों को किसी बुरी बात वा रोग ग्रस्त होने पर औषध देते समय रोने के कारण रुकजाते हैं वा

अपने नेत्रों से दूर होने के भय से विद्याध्ययन के लिये दूर देश में नहीं भेजते हैं–युवा पुरुष अपनी स्त्री के कहने से मा वाप और दूसरे संबंधियों मित्र और अनुचर आदि से अनुचित् वर्ताव करते हैं, वा व्योपारी आदि देश की प्रीति से देशाटन करने में बिलंब करते हैं, वा शूर वीर योद्धा मृत्यु के भय वा स्त्री पुत्रों के प्रीति के हेतु युद्ध से पृथक खड़े रहते हैं, तो यह सम्पूर्ण मोह के लक्षण हैं जिन के कारण से अगणित हानियां उठानी पड़ती हैं ॥

। १२ हठ वा वाद ।

जब किसी बात को अपने अनुभव, अभ्यास और निरूपण के द्वारा उचित वा अनुचित समझ लिया जावे तो भी उस के विरुद्ध किया जावे उस को हठ कहते हैं–इस दोष से अंत में अवश्य हानि और अपमान उठाना पड़ता है ॥

प्रसिद्ध है कि जब लंकापति रावण महाराजा रामचंद्रजी की स्त्री सीताजी को चुरा कर ले गया और महाराजा रामचंद्रजी सेना सहित उस से लड़ने को गये उस समय रावण के भाई बिभीषण और उस की भार्य्या मंदोदरी इत्यादि ने कई प्रकार से समझाया कि महाराजा रामचंद्रजी को उन की स्त्री पीछी देकर क्षमा माँगो परन्तु रावण ने वाद किया और अंत को युद्ध में मारा गया ॥

। १३ पक्षपात ।

सम्पूर्ण प्राणी मात्र को अपने अनुयायी समझकर और मनुष्य को स्वजातीय जानकर उन के गुण कर्म्म और स्वभाव के अनुसार वर्ताव करना चाहिये–मुख्य २ मनुष्यों को अपना समझकर उन के साथ पक्षपात करने से विचार शक्ति और न्याय शक्ति निर्बल होकर मन मलीन हो जाता है ॥

संसार में जितने क्लेश, झगड़े और युद्ध हुए हैं और जितनी आपत्तियां इस समय उपस्थित हैं जिन के कारण संसार दुःख सागर प्रतीत होता है उन सब पर गहरी दृष्टि डालकर खोज किया जावे तो बहुधा पक्षपात ही उन का हेतु जान पड़ेगा ॥

महाराजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन की पक्षपात करके युधिष्ठिर को राज्य से पृथक् करना चाहा जिस का परिणाम महाभारत की घोर लड़ाई हुई जिस ने भारत वर्षी राजा और प्रजा को भांति २ की हानियां पहुंचाकर निर्बल कर दिया ।

। १४ स्वार्थ ।

सदा अपने स्वार्थ को ही दृष्टि में रखना, अपने रत्ती भर लाभ के लिये दूसरों की मन भर हानि कर देना भी उचित समझना, अपने लाभ के अवसर पर दूसरों के अधिकार को सर्वथा भूल जाना, धर्म्म संबंधी बातों में अपने स्वार्थ के हेतु अपने असत्य को सत्य और दूसरों के सत्य को असत्य करके दिखलाना, इस को स्वार्थ दोष कहते हैं ॥

भारतवर्ष के ऋषि स्वार्थ को बहुत ही बुरा समझते थे वे अपने जीवन का मुख्य उद्देश दूसरों को ही लाभ पहुंचाना जानते थे और दूसरों को लाभ पहुंचाने की बातें सोचने और करने में ही अपना जन्मभर व्यतीत करतेथे और मनुष्य मात्र के लाभ में ही अपना लाभ समझते थे इस कारण उन्हों ने निष्काम कर्मों की बहुत महिमा वर्णन की है ।

। १५ चिन्ता ।

बहुधा धन इत्यादि सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने, रक्षा करने, वा खोए जानेपर मन में चिन्ता होती है चिन्ता से मन

की बहुतसी शक्तियां निर्बल हो जातीहैं और वृद्धावस्था समय से पहिले आ जाती है ॥

बुद्धिमान पुरुष चिन्ता करने के बदले धैर्य्य के साथ उद्योग करते हैं कि जिस पदार्थ की इच्छा हो वह प्राप्त होजावे और उस की रक्षा और पूरी वृद्धि होती रहे। यदि किसी वस्तु के प्राप्त करने में वा उस की वृद्धि करने में सच्चे मन से उद्योग किया जावे तो बहुधा सफलता प्राप्त होती है ॥

उद्योग करने पर भी असफलता रहे तो उद्योग की कमी समझ कर दूसरी तीसरी बार जबतक सफलता न हो प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥

। ब्रूसकी कहानी ।

स्कोटलैंड के प्रसिद्ध स्वदेशभक्त जोन ब्रूस राज्य प्राप्त करने का बहुत उद्योग करता रहा परन्तु सदैव निष्फलता हुई और बड़े २ दुःखों में फँसगया—यहांतक कि उसका उत्साह कम होने लगा—उस निराशा में जब कि वह एक बार खाट पर लेटा हुआ था उसने एक कीडे को भीत पर चढ़ते देखा कि जो भीत पर होकर छत पर जाना चाहताथा परन्तु बार२ गिरपडताथा जब छःबार गिरचुकने के पश्चात् सातवीं बार चढ़ने लगा तो ब्रूस ने जिस की भी छःबार हार हो चुकी थी बहुत ध्यान और अनुराग से उस कीड़े को देखना प्रारंभ किया और मन में विचार किया कि यदि सातवीं बार कीड़ा भीत पर चढ़गया तो मैं भी सातवीं बार फिर उद्योग करूंगा—कीड़ा उसबार छत पर चलागया अतएव उस तुच्छ कीड़े से धैर्य और उत्साह की संथा लेकर ब्रूस ने सातवीं बार अति धीरज और हिम्मत से उद्योग किया और सफलता प्राप्त की— ।

संसार में अनेक पदार्थ हैं जिन को मनुष्य प्राप्त करना चाहता है परन्तु वे ही पदार्थ मिलते हैं जिन के लिये पूरा उद्योग किया जाता है अतएव वे वस्तुएं जिन के लिये मनुष्य पूर्ण उद्योग न करें और वे न मिलें उन के लिये चिन्ता करने के बदले संतोष करना उचित है।

संतोष करने से कोई पदार्थ मिलता नहीं परन्तु जो सुख पदार्थ के मिलजाने से होता है उतना ही वा अधिक सुख का होना संतोष के द्वारा संभव है।

इस संसार में मनुष्य जन्म से मरण तक अपनी अवस्था को अपने ही कर्मों के अनुसार बहुत अच्छी वा बुरी कर सक्ता है—अतएव अपने उद्योग से प्राप्त किये हुए पदार्थों ही में प्रसन्न और संतोष वृत्ति से रहना चाहिये।

। शेख सादी का वृतान्त ।

प्रसिद्ध कवि शेख़ सादी शीराज़ी बहुत कंगाल थे यहां तक कि एक बार बहुत काल तक एक जोड़ा पगरक्षियाँ उन को पहनने को न मिलीं और सादी साहब यह सोच कर कि इतनी योग्यता होने पर भी एक जोड़ा जूता मुझ को न मिला शोकातुर होगये उसी समय सामने से एक मनुष्य को आते देखा कि जिस की दोनों टांगें टूटी हुई थीं, उस को देखकर संतोष आगया कि यदि पगरखियां न मिलीं तो कुछ शोक की बात नहीं टांगें तो अच्छी हैं॥

। १६ असावधानता ।

असावधान रहते हुए मन अपने शरीर रूपी नगर में यथोचित राज्य नहीं कर सक्ता जब तदाधीन शक्तियां इन्द्रियां प्राण इत्यादि निरंतर अपने २ काम में तत्पर रहती हैं तो

मन यदि पूरा सावचेत न रहे तो उन की भले प्रकार सहायता नहीं कर सक्ता और न अपना पूरा अधिकार उन पर रख सक्ता है ॥

मन में थोड़ी सी भी असावधानता हो तो इंद्रियां दुःख देकर वा हट करके बुरे मार्ग पर चलना चाहती हैं और यदि कुछ काल तक उन से हिसाब न समझा जावे तो ऐसी निठुर होजातीहैं कि फिर उन को बस में लाना और ठीक ठीक मार्ग में चलाना बहुत कठिन होजाता है इस कारण असावधानता के दोष से सदैव बचना उचित है ॥

। १७ आलस्य ।

जिस काम को मनुष्य कर सक्ता हो और न करे वा धीरे२ वा विना पराक्रम वा विना मन लगाये करे उस को आलस्य दोष कहते हैं–अधिक निद्रा लेना वा जगने के पीछे विछौने पर पड़े रहना वा विना काम बैठे रहना वा पुरानी बातों की सोचने में ही वर्त्तमान समय को बिताना यह सब आलस्य के लक्षण हैं ।

आलस्य को पापों की जड़ समझना चाहिये क्योंकि इस दोष के बढ़ने से कोई कर्म्म भी ठीक २ नहीं हो सक्ता और मन बहुधा बुराइयों की ओर अधिक लगजाताहै इसलिये इस दोष से मन को उचित उपाय करके दूर रखना चाहिये ।

। १८ आतुरता ।

जैसे आलस्य एक दोष है ऐसे ही प्रति काम में आतुरता करना भी दोष है आतुरता से किसी काम के गुण और दोषों की यथोचित जानकारी नहीं हो सक्ती उस के संपूर्ण अंगों पर दृष्टि नहीं डाली जा सक्ती हाथ पांव फूल जाते हैं मन को

अप्रसन्नता होजाती है और इन सब कारणों से वह काम पूरा और सफलता के साथ नहीं होता जिस से निरास होकर मन निर्बल हो जाता है ॥

उचित यह है कि आलस्य और आतुरता दोनों को छोड़ कर मध्यभाग में धैर्य्य के साथ हर काम को सूर्य्य और चंद्रमा के चक्कर की भांति रीति अनुसार किया जावे ॥

। १९ लल्लो चप्पो ।

मन में चाहे जो ध्यान वा मनसूबा हो परन्तु किसी को प्रसन्न करने के हेतु अथवा मिथ्या उपकार जतलाने के लिये मिलते ही कुछ चापलूसी करदेनी वा मीठी २ बातों से मिथ्या विश्वास दिलाने को लल्लो चप्पो कहते हैं ॥

जो जन झूठ बोलने–मिथ्या प्रशंसा करने–धोखादेने–और दुःख देने को बुरा स्वभाव समझकर उन से बचते है वे भी लल्लो चप्पो करने में कुछ सोच विचार नहीं करते ।

संभव है कि मुख्य २ अवस्थाओं में लौकिक दिखावट की तरह पर मन उपरांत बातें बनानी पड़ें परन्तु ऐसी अवस्थाओं को जहां तक हो सके न आने देना चाहिये ।

बहुधा मनुष्य लौकिक दिखावट को राजनीति का एक तत्व समझते हैं और कुछेक राज्याधिकारियों के लिये ऐसा करना ठीक भी है परन्तु सब अवस्थाओं में सब मनुष्यों के साथ ऐसा बर्ताव अनुचित है ।

राजनीति के अनुसार भी इस लल्लो चप्पो के तत्व को यदि बर्ता जावे तो बहुत सावधानी और मध्यम रीति से वर्तना चाहिये ।

लल्लो चप्पो के दोष से मन मलीन हो जाता है और जिस मनुष्य को मीठी २ बातों के द्वारा मिथ्या विश्वास दिया जाता है वह उन बातों पर विश्वास करके दूसरे उपाय करना छोड़ देता है और हानि उठाता है इस का पाप लल्लो चप्पो करने वाले के सिर पर पड़ता है इस कारण इस दोष से सम्पूर्ण धार्मिक पुरुषों को बचना उचित है ॥

। २० छल अर्थात् धोका ।

धोका देने से जब कभी उस धोका देने का चिंतवन मन में आता है तो लज्जा-बेचैनी-पश्चात्ताप और भय उत्पन्न होकर मन कुमला जाता है और जिस को धोका दिया जाता है उस से चार आंखें नहीं की जा सक्तीं और वह सदैव के लिये वैरी और बुरा चाहनेवाला हो जाता है और जब अवसर पाता है तब ही बदला लेने का उद्योग करता है ॥

झूंठा वचन देना भी एक प्रकार का धोका देना है मुख्य कर के वह वचन कि जिस को देते समय ही सोच लिया जावे कि कदापि पूरा न करेंगे ॥

। २१ असत्य अर्थात् झूठ बोलना ।

इस बुरी प्रकृति से मन बहुत मलीन होजाता है जब मनुष्य झूठ बोलता है तो मन भीतर से धिक्कार देता है परन्तु धीरे२वह सूक्ष्म भीतरी शब्द फिर सुनाई देना सर्वथा बंद होजाता है ।

झूठ बोलने वाले को सदैव चिंता रहती है कि उस का झूठ चौड़े न आजावे इस कारण एक झूठ को छिपाने के हेतु दूसरी अनेक झूठी बातें बनानी पड़ती हैं तथापि सहस्रोपाय करने पर भी कभी न कभी झूठ चौड़े आही जाती है और

जिस के सनमुख झूठ बोला जाता है और जिस २ को उस झूठ का वृत्तान्त विदित होजाताहै वे सब झूठ बोलने वाले को तुच्छ समझने लगते हैं और जीवन पर्यंत उसकी बात का चाहे वह सत्य भी बोले सर्वथा विश्वास नहीं करते हैं।

भय, चापलूसी, धोका देने और जल्दी में बचन देते समय बहुधा झूट बोल दिया जाता है अतएव ऐसे अवसरों को हो-सके तो आने ही नहीं देना चाहिये वा बहुत सावधानी और धैर्य के साथ सत्य को बरतना चाहिये नहीं तो पश्चत्ताप करना पड़ता है॥

। रुस्तम की कहानी ।

कहते हैं कि ईरान के बादशाह कैकाऊस के समय में रुस्तम नाम एक प्रसिद्ध जेठी मल्ल हुआ है जब रुस्तम के सोहराब नामी एक पुत्र जन्मा तो रुस्तम की स्त्री ने अपने पति को समाचार भेजे कि उस के पुत्री हुई है जब सोहराब तूरान के बादशाह अफरासियाब की सेना में भरती होकर कैकाउस से लड़ने आया और रुस्तम के और उस के युद्ध ठहरा तब युद्ध करने से पहिले सोहराब ने रुस्तम से उस का नाम पूछा रुस्तम झूठ बोला और अपने आप को रुस्तम का शागिर्द अर्थात् शिष्य बतलाया जब सोहराब हारा तो जीव निकलते समय रुस्तम से कहा कि मेरा पिता तुझ से बदला लेगा–रुस्तम ने उस के बाप का नाम पूछा सोहराब ने उत्तर दिया " रुस्तम " उस समय रुस्तम की जो दशा हुई सोहराब को जो दुःख हुआ और दूसरे संबंधियों इत्यादि को जो क्लेश

हुआ उस का अनुमान प्रत्येक मनुष्य अपने जी में कर सक्ता है ॥

यह संताप युक्त आख्यान रसातल के पृष्ठ पर क्यों लिखी गई ? केवल इस कारण से कि रुस्तम की स्त्री ने रुस्तम से और रुस्तम ने सोहराब से असत्य बात कही ॥

मनुष्य जितना अधिक झूठ बोलने का स्वभाव डाल लेता है सत्यता जो सम्पूर्ण भलाइयों की जड़ है उस से उतनी ही दूर होती जाती है इस कारण किसी व्यवस्था में झूठ बोलना उचित नहीं ॥

। मन को शुद्ध करने की तीसरी रीति ।

इन्द्रियों के द्वारा मन को सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों का ज्ञान होता है और उसी से विचार उत्पन्न होते हैं जो वस्तु देखी न हो, सूंघी न हो, चक्खी न हो, और छुई नहो, उस का अनुभव मन में कभी नहीं होताहै—अतएव इन्द्रियां मन को बोध होने के द्वार समझने चाहियें इस कारण इंद्रियों को वश में रखने और उन के ठीकरवर्ताव से मन सदैव शुद्ध रह सक्ता है इंद्रियों को नियम में रखने के लिये कई एक उपदेशों का संक्षेप वर्णन किया जाता है ॥

। १ चक्षु अर्थात् नेत्र ।

नेत्र देखने की शक्ति का यंत्र है जब नेत्र के भीतरी पटलों में प्रकाश की किरणें पड़ती हैं तो पट्ठों में हलचल उत्पन्न होकर वही भेजे में पहुंचती है तब मन को उस प्रकाश का ज्ञान होता है ॥

प्रकाश का प्रभाव नेत्र के पटलों से एका एक ही नहीं जाता रहता है परन्तु कुछ काल तक बना रहता है, यही

कारण है कि प्रकाश को देखने के पश्चात् यदि नेत्र मूंदे जावें तो भी कुछ काल तक वह प्रकाश दिखलाई देता रहता है,इसी कारण किसी बुरे पदार्थ को देखने से और विशेष करके बार२ देखने से उस का प्रभाव बहुधा नेत्र पर और नेत्र के द्वारा मन पर होने लगता है ॥

जब किसी पदार्थ से किरणें खिंचकर नेत्र के दो सूक्ष्म आक्षि पटलों पर पहुंचती हैं तो तुरंत उस पदार्थ का चित्र उस स्थान में बन जाता है और उस चित्र का संस्कार अर्थात् बीज मन में सदैव बना रहता है ॥

अतएव नेत्र को बुरी वस्तुओं के देखने से सदा बचाना चाहिये नेत्र देखने से नहीं अघाते हैं परन्तु मध्यम रीति से प्रत्येक वस्तु को देखने से बश में रहते हैं ॥

विषय और लालच की दृष्टि से बहुत हानि होती है उस से सम्पूर्ण मनोविकार जाग पड़ते हे और मन रूपी दुर्ग में द्रोह मचजाता है जो मनुष्य किसी को बुरी दृष्टि से देखता है वह मानसिक पाप का भागी होता है ॥

इस कारण नेत्रों को इतना बश में रखना चाहिये कि उन पर बुरे पदार्थों का प्रभाव न होने पावे और जब इच्छा हो उन पदार्थों से हटालिया जावे वा बुरे पदार्थों की ओर जाने ही न देना चाहिये ॥

नेत्र मन की ताली है इन के द्वारा मन तक सहज ही पहुंचना हो जाता है इसलिये सदैव नेत्रों को महात्माओं के दर्शन और उन के बनाये हुए पवित्र ग्रंथों के अवलोकन करने में और दूसरे मनोहर रचनाओं के देखने में ही लगा रक्खे ॥

बुरे पदार्थों के देखनेवाले विषयों के आधीन होके प्रसन्न होकर जाते हैं और शोकाकुल होकर पीछे आते हैं उन की प्रसन्नता रूपी रात्रि दुःख रूपी प्रातःकाल से बदल जाती है॥

। २ कर्ण अर्थात् कान ।

प्रथम वायु कान के बाहरी विभाग में इकट्ठी होती है अर्थात् वायु की लहरें कान में आती हैं, फिर दूसरे विभाग में जाकर तीसरे विभाग में मुख्य शक्ति बनकर पट्ठों को हिलाती है जिस से शब्द सुनाई पड़ता है । उस शब्द के द्वारा मन पहिचान लेता है कि यह कैसा है और किस का शब्द है और उस शब्द का संस्कार अर्थात् बीज मन में सदैव बना रहता है ॥

कान विद्याध्ययन के पवित्र द्वार हैं अतएव उन को निर्लज्जता की और बुरी बातों से बचाते हुए महात्माओं के उपदेश और बुद्धिमानों की शिक्षाओं के सुनने में लगाना चाहिये ॥

बुरी बात को चाह करके सुनना पाप है और ऐसा सुनना रोका जा सक्ता है और रोका न जावे—वा बुराई सुनने पर उस को बुरा न कहा जावे—तो वह भी पाप और अधर्म्म समझना चाहिये ॥

नीच और निर्लज्जता के शब्द कान पर पड़ना अच्छा नहीं और इच्छा करके उन को सुनना पाप समझना चाहिये ऐसे शब्द मन के विकारों को अग्नि के कणिकाओं की भांति गर्मी पहुंचाते हैं और तपाते रहते हैं ॥

मिथ्या प्रशंसक अर्थात् खुशामदी और स्वार्थ दृष्टि मनुष्य की बातों से कानों को बचाये रखना चाहिये—कानाफूंसी करने और दूसरों की गोप्य बातों को सुनने से भी बचना उचित है ॥

जो मनुष्य बुरी बातों को मन लगाकर सुनते हैं, वे वैसा ही बोलने भी लगते हैं. जिन का मन दृढ़ नहीं है, उन को अवश्य ही बुरी बातों के सुनने से बचना चाहिये, क्योंकि बुरे शब्द निर्बल मन पर ही अधिक प्रभाव डालते हैं और अच्छे मन वाले बुरे शब्दों को घृणा और अप्रीति से सुनते हैं और तुरंत ही भूल जाते हैं ॥

यदि बुरे शब्दों को सुनने वाले नहों,तो बोलने वाले भी नहीं रह सके-जैसे जीभ को कड़वी वस्तुओं के खाने का स्वभाव होजाता है, वैसे ही कानों को भी बुरे शब्दों के सुनने का चस्का पड़जाता है, जिस का यत्न यह है, कि सदैव बुरे शब्द बोलने वालों के समीप बैठने से बचने का उद्योग किया जावे॥

दूसरों की बुराई सुनकर कदापि प्रसन्न न होना चाहिये और कहने वाला चाहे कितना ही भरोसे वाला हो, फिर भी ऐसी बातें संदेह और शंका से ही सुनना उचित है और निन्दक को यथाशक्ति मुँह न लगाना चाहिये ॥

। ३ जिह्वा अर्थात् जीभ ।

इस इन्द्री से दो काम निकलते हैं एक चखने अर्थात् स्वाद लेने का और दूसरा बात चीत करने का-

यह बात जानने की जिह्वा बहुधा सहायता देती है, कि कौन सी वस्तु खाने के योग्य है। यह थोड़ी सी सहायता नाक और नेत्रों से भी मिलती है-और इसी कारण से वे इन्द्रियां भी जीभ के पास ही रक्खी गई हैं। बारम्बार तीक्ष्ण और कटु वस्तुओं के बर्ताव से चखने की शक्ति निर्बल और नष्ट होजाती है ॥

बोलने की शक्ति के लिये जीभ की जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है इस चार अंगुल की जीभ के द्वारा पढ़ने पढाने

का काम चल रहा है, इसी के द्वारा शिक्षा और उपदेश रूपी झरना बह रहा है-यही सभा और उत्सव का स्वरूप है और इसी के द्वारा धर्म्म संबंधी सभाओं में पवित्र भजनों और सत्य उपदेश रूपी अमृत की वर्षा हुआ करती है ॥

यही जीभ जब इस का अनुचित वर्ताव किया जावे, तो बहुत भयानक शस्त्र बनजाती है बडे २ युद्ध और संग्राम, झगड़े और घर की लडाइयां, जीभ की अणी के हिलने से हो जाती हैं. यही छोटी सी जीभ असत्य और कपट प्रबंध का शस्त्र-निन्दित वचन बोलने का आयुध-प्रपंच करने का कारण और मूर्खता प्रगट करने का हेतु होजाती है ॥

जैसे अग्नि की छोटी सी कणिका लकड़ी के बड़े ढेर को जला देती है, इसी भांति शरीर का एक तुच्छ भाग जीभ अनेक प्रकार के फन्द मचा देती है ॥

अतएव जीभ को सदैव वश में रखने का उपाय करते रहना चाहिये ॥

अयोग्य और बिन अवसर का ठठ्ठा वा निर्लज्जता की बातें करते रहने से, जिह्वा भी अशुद्ध हो जाती है और मन भी मलीन हो जाता है ॥

जीभ को न तो कांटों की झाड़ी के अनुसार होना चाहिये, कि जो कोई समीप होकर निकले उसी के वस्त्र फटजावें-और न सूखे वृक्ष की भांति होना चाहिये, कि जिस से किसी को कुछ लाभ न पहुंच सके-परन्तु मनोहर और हरे भरे, मीठे फल युक्त सुगंधी छाया वाले वृक्ष की भांति होना उचित है, जिस से सब को कुछ न कुछ लाभ अवश्य मिले ॥

सुनी हुई बात को अपनी देखी हुई बात के भांति दूसरों से न कहना चाहिये-क्योंकि संभव है, कि जिस से तुमने उस

बात को सुना वा जिसने किसी दूसरे से उस को सुना, उन में से किसी न किसी ने अपने कुछ प्रयोजन के हेतु कुछ झूठ की मिलावट करदी हो ॥

जिस के दो अर्थ लगसकें, अथवा निरर्थक बातें करने का स्वभाव न डालना चाहिये जहां सत्य बोलने का अवसर न हो वहां चुपचाप बैठे रहना उचित है ॥

शत्रु हो वा मित्र उस के निमित्त वा उस से दूसरों की प्रावेट बातों के निमित्त बात चीत करना उचित नहीं है, इसी भांति जहां तक होसके किसी का भेद भी चौड़े न करना चाहिये ॥

आदर और अनादर दोनों जीभ में हैं, कृपाण का घाव भरजाता है परन्तु जीभ का घाव नहीं भरता, इस कारण पहले अच्छी तरह बात को मन में तोलो, फिर मुख से बोलो॥

। ४ नासिका अर्थात् नाक ।

यही इन्द्री फूलों की सुगंध और मल की दुर्गंध का प्रभाव पहुंचा कर, मनको प्रफुल्लित वा मलीन करती है. बहुत काल तक अति तीक्षण सुगंध वा दुर्गंध के सूंघने से यह इन्द्री निर्बल हो जाती है-जैसे गंधियों और भंगियों की अपने पास की वस्तु की सुगंध वा दुर्गंध आनी बंद हो जाती है, जिस के हेतु अज्ञानता में बहुत काल तक दुर्गंध का प्रभाव नाक में पहुंचने से मन मलीन हो जाता है-अतएव अधिक तीक्षण सुगंध वा दुर्गंध को सूंघने से और बहुधा वारम्बार और बहुत काल तक सूंघने वा सांस लेने से सदैव बचना उचित है, इसी प्रकार दुर्गंध वाले खाने पीने के पदार्थों से भी बचना योग्य है ॥

। ५ त्वचा ।

त्वचा अर्थात् स्पर्श इंद्री सम्पूर्ण शरीर की रक्षा के लिये है, इसी कारण इस का एक स्थान नहीं है-अतएव संपूर्ण शरीर का चर्म इस का स्थान है परन्तु हाथों में यह शक्ति दूसरे स्थानों से कुछेक अधिक दीख पड़ती है ॥

जिस प्रकार यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर से संबंध रखती है, वैसे ही इस का बल भी दूसरी इन्द्रियों के बल से अधिक प्रकार का है-जैसे कड़ापन वा कोमलता को जानना-गर्मी वा सर्दी का पहिचानना-समता वा विपमता का ज्ञानहोना इत्यादि इस इन्द्री के द्वारा होताहै ॥

शरीर के जिस भाग को बहुत काल तक अधिक सर्दी वा गर्मी में वा बिना काम लिये वा मैला रक्खा जाता है,उस भाग से इस शक्ति का बल कम होने लगता है और उस बल के अभाव से मन, जो सम्पूर्ण शरीर की रक्षा और पालना करता रहता है, उस भाग की रक्षा वा पालना बहुत कम वा कुछ भी नहीं कर सक्ता है ॥

जब कभी इन्द्रियां अच्छे मार्ग को छोड़कर, कुमार्ग पर चलें वा चलने के लिये आग्रह करें तो क्रोध दृष्टि वा ताड़ना करने के बदले बहुत धीरज और गंभीरता के साथ उन को रोकने का उपाय करना उचित है ॥

इन्द्रियों को वश में रखने के लिये,यह भी आवश्यक है,कि पेट नियम में रक्खा जावे-खाने पीने में अमर्यादा न करनी चाहिये-अच्छे भोजन का लालच करना वा उस को असंतोष वा असमभावना से खाना कदापि उचित नहीं ॥

जैसे अधिक खाने पीने से शारीरिक आरोग्यता बिगड़ जाती है, उसी प्रकार मन और इन्द्रियां भी सिथिल होजा-

तीहैं और उन को बुरी इच्छाएं और मनो विकारादि घेरे रहतेहैं ॥

यदि शरीर को आवश्यक्ता से अधिक खाने को दिया जावे, तो अनुभव द्वारा निश्चय होचुकाहै, कि बहुत से रोगादिक अधिक भोजन से ही होतेहैं और यदि न्यून भोजन दिया-जावे तो मानो भजन के घोडे को निरर्थक बनाना है ॥

बहुत से मनुष्य बिना सोचे समझे अपने विचार और कामों से यह स्थापित करते हैं, कि उन की समझके अनुसार तन और मन से जैसी इच्छा हो काम लिया जा सक्ताहै और जब सृष्टि नियमों से विरुद्ध चलने के कारण उन को कुछ दुःख होताहै तो उस को प्रारब्ध बतला देते हैं और यह नहीं जानते, कि निज की अमर्यादा, असावधानी, और भूल से वह दुःख उत्पन्न हुआ है–जिस का बुराफल जो कुछ उन पर उनकी संतति पर वा दूसरे मनुष्यों पर होगा, उस के स्वयं अपराधी और उत्तर दाता हैं ॥

कोई विचार और काम मनुष्य का ऐसा नहीं होता है, जिस से असंख्य फल न निकलते हों और असंख्य मनुष्यों पर उस का प्रभाव न पड़ता हो ॥

विचार से देखा जावे, तो सम्पूर्ण मनुष्य और पशु बरन सम्पूर्ण चराचर एक ही माला के मणिये हैं. वे सम्पूर्ण एक दूसरे के आश्रय हैं, इस कारण प्रत्येक मनुष्य अपने अच्छे और बुरे विचार और कर्म्मों से सम्पूर्ण संसार की भलाई वा बुराई की संख्या कुछ अधिक वा न्यून करदेता है ॥

पूर्व काल के मनुष्यों के करतव्य का प्रभाव वर्त्तमान् समय के पुरुषों पर पड़रहाहै और वर्तमान समयके पुरुषों के कर्तव्य

का फल आनेवाली संतति पर अवश्य ही पड़ेगा, मानो व्यतीत संततियां एक दूसरे के सहारे खड़ी हुईहैं; और वर्त्तमान अपने संसकार और कर्म्मों के चक्कर को उनके शुभ वा अशुभ परिणामों के साथ आगामी संतति को सौंपेंगे, इस सर्व संबंध को पूरा सोच समझकर, प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रत्युत्तर का पूरा विचार रखना चाहिये और अवश्य मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये ॥

। मन की उन्नति की रीतियां ।

जैसे शारीरिक आरोग्यता को बनी रखने और रोगादिक से बचने के लिये, शारीरिक धर्म्म का मुख्य साधन व्यायाम है, वैसे ही मन की शक्तियों को बढ़ाने और उसको प्रसन्न रखने का कारण और मानसिक धर्म्म का मुख्य साधन ब्रह्मचर्य्य है ॥

बहुत से मनुष्य बहुधा इस भरतखंड के साधु इत्यादि मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में करलेना ही उचित समझते हैं और जब ऐसा करने में उन को किसी प्रकार थोड़ा सा आनंद आता है तो उसी आनंद में मग्न हो जाते हैं ॥

वास्तव में मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में करके मन की असंख्य शक्तियों को बढ़ाना चाहिये और वह केवल ब्रह्मचर्य्य से होसक्ता है, इसी लिये भरतखंड के ऋषि लोग मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में इसी कारण करते थे कि ब्रह्मचर्य सेवन करें क्योंकि ब्रह्मचर्य्य जैसा महान् कठिन साधन शुद्ध चित्त और इन्द्रियों को वश में किये विना प्रारंभ नहीं किया जा सक्ता ॥

ब्रह्मचर्य्य सेवन करने के समय वहुत शुद्ध स्थान, शुद्ध भूमि, और शुद्ध सय्या होनी चाहिये,थोड़ी सी अशुद्धता से भी ब्रह्मचर्य्य तुरंत खंडन होजाताहै ॥

मन वचन कर्म्म से बुरे विषयों की इच्छा न करते हुए, विद्याध्ययन करने को ब्रह्मचर्य्य कहतेहैं,-कि जिस के आठ अंग अर्थात् विभाग कहे गये हैं—

१ कुसंगति २ बुरी वार्ता लाभ ३ बुरे विचार ४ बुरी पुस्तकों का पढ़ना या सुनना ५ बुरे राग का गाना वा सुनना ६ एकान्त में अथवा विपरीत समय में पुरुषों का स्त्रियों से और स्त्रियों का पुरुषों से मिलना उन के शरीर के अवयवों को ध्यान लगा के बुरी दृष्टि से देखना ८ वीर्य्य का किसी अनुचित रीति से नाश करना, इन आठों वातों से वचते हुए भले प्रकार चित्त देकर विद्याध्ययन करने को अखंड ब्रह्मचर्य्य कहते हैं ॥

प्रश्न—कौन २ सी विद्या और किस ढंग से पढना चाहिये?

उत्तर—प्रथम कुछ अवस्था तक जनरल एज्युकेशन अर्थात् सामान्य विद्या पढ़ना चाहिये, उस के साथ ही शारीरिक आरोग्यता और धर्म्म संबंधी नियमों को जानना और उन पर चलना चाहिये इस के पश्चात् जिस व्यापार की इच्छा और योग्यता हो उस के संबंधी विद्या सीखना चाहिये. व्यापार संबंधी पूरा वर्णन गृहस्थ धर्म्म में किया जावेगा ॥

भूमिया (भूपाति) अर्थात् ज़मीनदार हो तो कृषी विद्या सीखे, व्योपार करने का उत्साह हो, तो हिसाव भूगोल इत्यादि जिस से सव भूमंडल की उत्पत्ति और सकल पदार्थों का भाव ताव जान पड़े सीखने का उपाय करे—धर्म्म की वांछा हो तो अनेक

प्रकार के धर्म्मों के तत्व जानने का उद्योग करे, धर्म्म संबंधी जितनी शंकाएं हों उन को महात्माओं के सत्संग से दूर करे, और फिर मन की शुद्धि और विचार शक्ति की वृद्धि के लिये योग विद्या मात करे—यदि शूर वीरता की इच्छा हो तो धनुष विद्या जिस का मुख्य अंग अश्व विद्या है सीखे, जिस के द्वारा अपनी और अपने देश की रक्षा कर सकें ॥

प्रश्न—ऊपर लिखी हुई विद्याएं किस बोली में सीखना चाहिये?

उत्तर—जिस बोली में भले प्रकार आसकें—यदि मातृ भाषा में अर्थात् उस बोली में, जिस को मनुष्य जन्म से ही बोलना सीखता है,यह विद्याएं सीखी जावेंगी,तो थोड़े समय में और सुगमता से सम्पूर्ण विद्याएं सीख लेना संभव है ॥

जो मनुष्य मातृ भाषा के सिवाय राज्य भाषा इत्यादि किसी दूसरी भाषा के द्वारा कोई विद्या सीखे उस को उचित है, कि विद्याध्ययन के पश्चात्, जो कुछ दूसरी भाषाओं के द्वारा सीखा हो,उस को सर्व साधारण के हितार्थ अपनी मातृ भाषा में उल्था करने का उद्योग करें, जिस से दूसरी भाषा सीखने में जो कष्ट और परिश्रम उठाना पड़ा उस का लाभ उन दूसरी भाषाओं के न जानने वालों को भी पहुंच जावे ॥

भाग्यवान है वे देश और उन के रहनेवाले जिन की मातृ भाषा राज्य भाषा—धर्म्म और नीति विद्या की भाषा एक ही है। ऐसे ही लोग उन्नति के खेत में सब से आगे पांव बढ़ा सके है।

कहते है कि भरतखंड के कई एक ऋषियों भृगु, अंगिरा, वशिष्ठ,कश्यप, पुलस्त्य, अगस्त्य, गौतम इत्यादि ने बहुत काल तक सोच विचार करने के पश्चात् एकाग्र होकर यह निश्चय किया था, कि सब धर्म्मों में उत्तम धर्म्म ब्रह्मचर्य्य है, क्योंकि

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य धारण करता है, उस को पूर्ण आयु प्राप्त होती है, वृद्धावस्था शीघ्र नहीं आती, तेज बढ़ताहै–शूर वीरता, पराक्रम, और धैर्य इत्यादि अच्छे गुण प्राप्त होतेहैं–मन सदैव मग्न रहता है–इस हेतु ऊपर लिखे ऋषियों ने ब्रह्मचर्य्य को ही स्वीकार किया और उस ही का उपदेश किया–उस उपदेश के कारण प्राचीन समय में यह एक सामान्य व्यवहार होगया था, कि लडके २५--३६ और४८ वर्ष तक का और लडकियां १६--१८ और २२ वर्ष का ब्रह्मचर्य्य सेवन करने का उद्योग किया करते थे, जिस का नाम कनिष्ठ–मध्यम–और उत्तम ब्रह्मचर्य्य कहाजाता था–इस ब्रह्मचर्य्य सेवन के कारण उन का शरीर आरोग्य–इंद्रियां बलवान् और मन निर्मल रहता था ॥

उस समय में यह भी व्यवहार था, कि सात वर्ष की अवस्था से लड़के अपने गुरू के स्थान की पाठशाला में, और लड़कियां कन्याशाला में नगर से पृथक् और दूरी पर सांसारिक व्यवहारों से अलग रहते हुए, तन मन से विद्याध्ययन किया करते थे ॥

कन्याशाला में कोई पुरुष वा लड़का और दुःशील वा संदिग्ध आचरण वाली स्त्री नहीं जासक्ती थी और इस रीति से लड़कियों का ध्यान विषयों की ओर किसी प्रकार नहीं जासक्ता था ।

लड़कों की संभाल का यह प्रबंध था, कि गुरू की आज्ञा बिना वा अकेला कोई लड़का कहीं नहीं जासक्ता था–समय २ उन के ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा की जाती थी और यदि, बिना

किसी मुख्य कारण, किसी प्रकार की न्यूनता पाई जाती, तो उचित ताड़ना की जाती थी ॥

पूर्णमासी और अमावास्या को सदैव सम्पूर्ण ब्रह्मचारियों को एक स्थान पर एकत्र करके ब्रह्मचर्य्य के अनुसार अपने२ पद पर बिठलाया जाता था और वीर्य की रक्षा के आनंद और नाश के दुःख हृदयग्राहि शब्दों में बतलाए जाते थे. उन को नाना प्रकार से यह उपदेश किया जाता था, कि शरीर में जितना अधिक और पुष्ट वीर्य रहता है उतना ही शरीर में बल आरोग्यता और मन में शूरवीरता इत्यादि गुण उत्पन्न होकर, बहुत प्रसन्नता प्राप्त होती रहती है ॥

जिस के शरीर में वीर्य अपनी असली अवस्था में नहीं रहता है, वह नपुंसक अर्थात नामर्द और महा कुकर्म्मी हो जाता है—उस को प्रमेह रोग लगकर दुर्बल, निस्तेज और निरुत्साही कर देता है, वह धीरज, साहस, बल, पराक्रम, आदि गुणों से रहित होकर, सदैव अधम और पश्चात्ताप में ग्रस्त रहता है और बहुधा शीघ्र ही नष्ट होजाता है—जो कोई बचपन में विद्याध्ययन करने या वीर्य्य की रक्षा में कमी करता है, वह जन्म भर हाथ मलता रहता है ॥

कहते हैं, कि लंका के राजा रावण का पुत्र मेघनाथ नामी बड़ा बली था, उस के लिये ऐसा वर्णन करते हैं, कि उस को बारा वर्ष ब्रह्मचर्य साधन करनेवाला पुरुष ही हरा सक्ता था. जब महाराजा रामचंद्रजी ने लंका पर चढ़ाई की, तो मेघनाथ ने उन की सेना को बहुत हानि पहुंचाई—परन्तु अन्त में लक्ष्मणजी ने उस को हराया, कि जिन्हों ने बनवास में चौदह वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन किया था ॥

सब मनुष्य जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं, लक्ष्मण जी की भांति बड़े बलवान् शत्रुओं को जीत सक्ते हैं॥

प्रश्न—वे मनुष्य, जो ब्रह्मचर्य्य की महिमा न जानते हुए, वीर्य्य को नष्ट करके और विद्या के न प्राप्त होने से, जन्म के यथार्थ आनंद को नहीं पासक्ते हैं, वे भी अपनी वर्त्तमान दुर्दशा में ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सक्ते हैं वा नहीं ? ॥

उत्तर—कर सक्ते हैं-परन्तु जितने अधिक काल तक और जितनी अधिक अमर्यादा से ब्रह्मचर्य्य के नियमों को तोड़ा होगा उतना ही अधिक परिश्रम और उतने ही अधिक समय में ब्रह्मचर्य्य सेवन करने की शक्ति प्राप्त होनी संभव है। ऐसे पुरुषों को उचित है, कि पहिले यह नियम करें, कि आठ दिन तक मन वचन कर्म्म से ब्रह्मचर्य्य सेवन किया जावे; फिर पन्द्रह दिन तक; उस के पीछे महीनों और वर्षों तक इस नियम को बढ़ाते चले जावें.जिस प्रकार समय अधिक बढ़ाया जावेगा, उसी प्रकार अधिक सुगमता होती चली जावेगी, तोभी जब कोई मुख्य विघ्न पड़जावे,तो किसी ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए महात्मा से उपाय पूछना चाहिये॥

प्रश्न—भरतखंड के ऋषियों के प्राचीन समय की भांति सर्व देश में ब्रह्मचर्य्य पूर्ण रीति से किस प्रकार फैल सक्ता है?

उत्तर—जब कई मनुष्य ब्रह्मचर्य्य सेवन करने वाले उत्पन्न हों और दूसरों के लिये नमूना बनकर रहें वा वे मनुष्य जिन के सिर पर सामाजिक उन्नति का बोझा है और जिन का वर्णन सामाजिक धर्म्म में पूर्णता से किया गया है, ब्रह्मचर्य्य सेवन के व्यवहारिक नियम सोचकर निकालें और उन को सम्पूर्ण देश में फैलावें॥

सब प्रकार की उन्नति संसार में धीरे २ हुआ करती है, ऋषियों ने अनंत काल तक पीढ़ी दर पीढ़ी ब्रह्मचर्य्य सेवन करने में उन्नति करते हुए २५–३६ और ४८ बर्ष के तीन नाप नियत किये थे. इस समय में भरतखंड में बहुत काल से धर्म्म के बिगड़ने विद्या के कम होने और बाल्यावस्था में विवाह इत्यादि के होने के कारण ब्रह्मचर्य्य का नियम टूट गया है, अतएव उस को पीछा स्थापित करने के लिये शनै २ वृद्धि करने से सफलता प्राप्त हो सक्ती है ॥

प्रारम्भ में १५–१८ और २० बर्ष की तीन अवस्थाएं ब्रह्मचर्य्य सेवन की रक्खी जावें पाठशालाओं में, अवश्य करके जाति चटशालाओं में, कभी २ ब्रह्मचर्य्य सेवन के लाभ और उल्लंघन की हानियों का उपदेश हुआ करे और महीने में एक वार लड़कों के ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा हुआ करे और कृत कृत्य विद्यार्थियों का सन्मान और निकृष्ट वा शंका वाले विद्यार्थियों की उचित ताड़ना कीजावे ॥

प्रश्न–परीक्षा किस प्रकार होना चाहिये ?

उत्तर–विद्या की परीक्षा तो प्रचलित रीति के अनुसार ही उचित अधिकता वा न्यूनता से की जावे,और वीर्य्य की परीक्षा के लिये, ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए बुद्धिमान मनुष्य संभाल के लिये छांटे जावें. वे महीने में एक बार सम्पूर्ण ब्रह्मचारियों की सूरत को ध्यान से देखें, महीने में एक वार वे तोले जावें, और फीते से उन की छाती नापी जावे ॥

भरतखंड के ऋषि वीर्य्य रक्षा की परीक्षा, कच्चे सूत के धागे के द्वारा, किया करते थे, जिस को बोलचाल में जनेऊ कहते हैं और जो इस समय तक ब्रह्मचारियों के धर्म्म का

एक चिह्न अर्थात् लक्षण समझा जाता है-परन्तु उस से यथोचित गुण लेने के विरुद्ध इस समय एक निरर्थक वस्तु समझकर केवल कुंजियां इत्यादि बांध लेने का काम लिया जाताहै-ऋषि लोग यज्ञोपवीत संस्कार के समय ब्रह्मचारी से कहा करते थे कि यह जनेऊ तुझ को बुद्धि, बल, पराक्रम, और समस्त सांसारिक सुख देने का कारण होओ-और इस समय भी जनेऊ धारण करने के समय एक वेद मंत्र पढ़ा जाता है जिस का अर्थ वही है जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ-जनेऊ के धागे से दोनों छाती नापकर ललाट से गुद्दीतक मस्तक को नापा जाता था यह परीक्षा पुराने पडित अब भी कहीं २ किया करते हैं।

जो विद्यार्थी वर्ष भर तक सब महीनों की परीक्षा में ठीक उतरते रहें उन को इस वीर्य रक्षा के बदले में उत्तम पारितोषिक-धार्मिक पुस्तक और वेतन के रूप में-देना उचित है और जो विद्यार्थी साल भर तक सब परीक्षाओं में संदिग्ध वा अयोग्य ठहरें उन को ऐसी ताड़ना दी जावे जिस से दूसरों को भी उपदेश हो।

जब १५-१८ और २० वर्ष के ब्रह्मचर्य्य के नाप में लड़कों की संख्या अधिक होजावे तो नाप को बढ़ाते जाना चाहिये जैसे २ नाप बढ़ता जावेगा वैसे ही सच्चे धैर्य्यवाले और उच्च पद और प्रतापवाले मनुष्यों की संख्या बढ़ती जावेगी॥

लड़कों के ब्रह्मचर्य्य का इस रीति से प्रबंध करते हुए लड़कियों के लिये भी पहिले १२-१४ और १६ वर्ष का नाप नियत करना चाहिये।

उन के लिये ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि बुरे चालढाल वाली स्त्रियों की संगति और बुरी बात चीत और बुरे रागों के

सुनने से सदैव बची रहें और धर्म्मसंबंधी पुस्तकों के पढने और गृहस्थ के प्रबंध में उन का चित्त लगा रहे और धर्म्म संबंधी पुस्तकों में ही उनकी परीक्षा लेकर उचित उत्साह दिलाया जावे।

जब कभी लड़कों के ब्रह्मचर्य्य का नाप बढ़ाया जावे तभी लड़कियों के ब्रह्मचर्य्य का नाप भी बढ़ाना उचित है और विवाह के समय लड़के और लड़कियों के गुण, कर्म्म और स्वभाव का निर्णय करते हुए उन के ब्रह्मचर्य्य सेवन का निर्णय होना भी आवश्यक है और जहांतक हो सके जिस पद का ब्रह्मचर्य्य सेवन किया हुआ लड़का हो उसी पद के ब्रह्मचर्य्य सेवन की हुई कन्या से उस का विवाह होना उचित है।

इस प्रकार सम्पूर्ण देश में ऋषियों के समय की भांति ब्रह्मचर्य्य का व्यवहार प्रचलित होना सम्भव है ब्रह्मचर्य्य के व्यवहार को फैलाना और वृद्धि करना सच्चा धर्म्म प्रवृत्ति की नीव डालना है जब ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए लड़के लड़कियों के आरोग्य और तेजस्वी संतान उत्पन्न होंगे तो शेष सम्पूर्ण सुधार वे अपने आप कर लेवेंगे।

जिस वंश में लगातार कई पीढियों तक ब्रह्मचर्य्य की रीत चलती रहेगी उस वंश में गार्गी और लीलावती जैसी विद्वान् स्त्रियां, और भीम वा अर्जुन जैसे योद्धा लड़के, शुक्र और चाणिक्य जैसे बुद्धिमान् और व्यास और शुक्देव जैसे ऋषि अवश्य उत्पन्न होने लगेंगे।

जैसे शारीरिक धर्म्म पालन करने से शरीर और उस के वेग अपने आधीन होने संभव हैं, वैसे ही मानसिक धर्म्म भले प्रकार पालन करने से मन और इन्द्रियां वश में होजाती हैं सत्संग और वीर्य्य की रक्षा से मन और इन्द्रियां निर्दोष और

पुष्ट हो जाती है और विद्याके पढ़ने से मन इतनी उन्नति कर लेता है कि बिना परिश्रम किये विद्या प्राप्त होने लगती है—प्रयोजन यह है कि ब्रह्मचारी का अनुभव इतना खुल जाता है कि जिस पदार्थ पर वह दृष्टि डालता है और जिस बात के सोचने में मन लगाता है उस की अवस्था को पूरे तौर पर निरूपण करलेता है ।

शारीरिक और मानसिक धर्म्मों का पालन करते हुए ब्रह्मचारी को आत्मिक धर्म्म की ओर भी ध्यान देना चाहिये जिस का वर्णन आगामी अध्याय आत्मिक धर्म्म में किया जावेगा ।

। पहिला भाग ।

। तीसरा अध्याय ।

। आत्मिक धर्म्म ।

। आत्मिक धर्म्म की व्याख्या ।

शारीरिक और मानसिक धर्म्मों का यथोचित पालन करनेसे—अर्थात् शारीरिक धर्म्म के मुख्य अंग—व्यायाम, और मानसिक धर्म्म के मुख्य अंग—ब्रह्मचर्य्य सेवन करने से जब विद्याध्ययन में पूर्ण परिश्रम किया जाता है, तो शारीरिक और मानसिक बल के बढ़ जाने से, विचार, न्याय, और वाद विवाद की बहुत सी सूक्ष्म शक्तियां प्रगट होने लगती हैं, जिन के द्वारा अनुभव होता है, कि इन सब शक्तियों अर्थात् शारीरिक इन्द्रियों, मन और बुद्धि इत्यादि से परे, एक शक्ति है, जो इन समस्त शक्तियों को सहारा दे रही है, जिस को जीवात्मा कहते हैं ।

ऊपर वर्णन की हुई शक्तियों का जीवात्मा से जितना गहरा-सम्बन्ध रहता है, उतनी ही वे शक्तियां अधिक बलवान और सूक्ष्म होती हैं इस संबंध को उत्पन्न करने और बढ़ाने को आत्मिक धर्म्म समझना चाहिये, जिस का संक्षेप वर्णन यहां किया जाता है और पूर्ण वर्णन पारलौकिक धर्म्म में किया जावेगा ॥

। जीवात्मा की व्याख्या ।

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार के संबंध से, एक सूक्ष्म चैतन्य-शक्ति शरीरमें विद्यमान है, उसी को जीवात्मा कहते हैं, प्रकृति के सब से सूक्ष्म अंग को, जब उस में संकल्प होता है,

तब मन कहते हैं; जब चिंतवन होता है, चित्त बोलते हैं, जब विवेक उत्पन्न होता है, तब बुद्धि; और ममता उत्पन्न होनेपर अहंकार कहाजाता है. इन्हीं चारों के समूह का नाम अंतःकरण है, जिस का यह अंतःकरण है, उस को जीवात्मा कहते हैं ।

एक महात्मा ने जीवात्मा की व्याख्या ऐसे की है, कि जिस में इच्छा–राग–द्वेष–पुरुषार्थ–सुख और दुःख हो और एक दूसरे महात्मा ने जीवात्मा की व्याख्या निम्नलिखितानुसार वर्णन की है, कि काम–संकल्प–विकल्प–विचक्षणता–श्रद्धा–अश्रद्धा–धृति-अधृति-ह्री-धी-भी इत्यादि गुणोंवाली वस्तु का नाम जीवात्मा है ॥

अच्छे गुण सीखने की इच्छा को संकल्प, और बुरी प्रकृतियों के त्याग करने की इच्छा को विकल्प कहते हैं ।

सोच २ कर अच्छे कामों को ही करना और बुरों से बचना, इस का नाम काम है जो काम करना हो उस के समस्त पक्षों को सोचकर, भले प्रकार निश्चय करलेना, कि उस में किसी प्रकार का दोष तो नहीं है, इस को विचक्षणता कहते हैं किसी काम को पूर्ण विश्वास से करने को श्रद्धा और उस से विरुद्ध अश्रद्धा कहते हैं अपने कर्मों के करने में सुख हो वा दुःख हानि हो वा लाभ उस के सहन करने की शक्ति को धृति कहते हैं; और उस के विरुद्ध अधृति अपनी प्रकृति के वश होकर किसी बुरे काम के करते समय, या अच्छे काम से हटते समय, यदि मन को धिक्कार दिया जावे और लज्जित किया जावे उस को ह्री कहते हैं, भले कामों के तुरंत मानने और उन के करने की शक्ति को धी कहते हैं, सुकर्म्मों को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ के करना और बुरों से सदैव डरते रहना इस को भी कहतेहैं ॥

बुद्धि अर्थात् समझ को जीवात्मा का मुख्य मंत्री समझना चाहिये, क्योंकि जीवात्मा से जो २ आज्ञाएं मिलती हैं, वे बुद्धि के द्वारा ही निश्चय होती हैं—जैसे २ बुद्धि का संबंध जीवात्मा से अधिक होता जाता है, वैसे ही इस को जीवात्मा की ओर से आज्ञाएं अधिक मिलने लगती हैं; और जितनी श्रद्धा से उन आज्ञाओं का पालन किया जाता है, उतनी ही प्रत्यक्ष रूप से, वे आज्ञाएं मिलती हैं; और बुद्धि सात्विक अर्थात् सूक्ष्म होती जाती है, उन सूक्ष्म विभागों को भरतखंड के ऋषियोंने ऋतंभरा, प्रज्ञा—आदि नामों से कहा है. उन पदों के प्राप्त होने ही से, उन्हों ने धर्म्म के बड़े २ सच्चे तत्वों को ज्ञात किया था—परंतु जब बुद्धि जीवात्मा की आज्ञाओं का पालन नहीं करती है, तब आज्ञा मिलना बंद हो जाता है, और वह बहुत निर्बल होजाती है. इसी प्रकार मन, जब बुद्धि के साथ रहता है, तब अधिक प्रकाशवान् और बलवान होता है; और जब इन्द्रियों के साथ मिलता है, तब विकारों में फँसकर निर्बल होजाता है ॥

। आत्मिक धर्म्मोन्नतिकी रीति ।

साधारण रीति यह है, कि धन, विद्या, बुद्धि, बल, और कुल इत्यादि सम्पूर्ण अभिमानों का त्याग करना चाहिये, फिर परिश्रम के साथ परीक्षा करके, किसी आत्मविद्या के जानने-वाले महात्मा को गुरू करके, अत्यंत विचार और रुचि के साथ एकाग्रचित्त होकर. वह विद्या पढ़नी चाहिये; और उस विद्या को इल्मउलयक़ीन, हक़उलयक़ीन और एनुलयक़ीन के पदों तक पहुंचाना चाहिये—अर्थात् पहिले यह जानना चाहिये, कि जीवात्मा शरीर से पृथक् है जाग्रत अवस्था में

जीवात्मा आंख, कान इत्यादि इन्द्रियों के द्वारा सारा व्यवहार करता है; स्वप्नावस्था में इन्द्रियां शांत होजाती हैं, उस समय मन के साथ संबंध रहता है; सुषुप्ति अवस्था में अर्थात् गहरी नींद में, जब स्वप्न भी नहीं आता, उस अवस्था में भी जीवात्मा, उस अवस्था को जानता है, क्योंकि उस निद्रा से जागने पर, यह कहा जाता है, कि बड़ी गहरी नींद आई. यद्यपि उस अवस्था की कुछ सुध नहीं रहती—परंतु इसी कारण कहा गया है, कि आत्मा ज्ञात और अज्ञात दोनों विषयों की जाननेवाली है. तुरीय अवस्था में जीव शरीर की समस्त खोलियों से पृथक् हो जाता है, इसी कारण उस में बहुत आनंद जान पड़ता है ।

इसी हेतु आत्मा को सत् चित् आनंद रूप कहा गया है सत् इस कारण, कि वह समस्त अवस्थाओं में विद्यमान रहता है, चित् इस कारण, कि वह सम्पूर्ण अवस्थाओं को जानता है, और आनंद इस कारण, कि वह हर्ष शोक रहित और निरन्तर सुख का भंडार है. इन सब बातों के जानने को इल्मुल यक़ीन कहते हैं, और यह गुरू के द्वारा मिलना संभव है, उस विद्या पर बुद्धि द्वारा विश्वास करने को, हक़्क़ुलयक़ीन कहते हैं, और ज्ञानचक्षु के द्वारा अपने अंतर प्रत्यक्ष करने को ऐनुल-यक़ीन कहते हैं और यह पद प्राप्त होने पर, जैसे कमल का पुष्प जल में रहनेपर भी निर्लेप ही रहता है, और जीभ चिकनाई खाने पर भी चिकनी नहीं होती, वैसे ही मनुष्य संसार में रहने पर भी, सांसारिक दुःखों के प्रभाव से दूर रहता है, और संसार में अनेक प्रकार की भलाइयां फैलाने की व्यवहारोचित रीतियां निकालता है ॥

(२) आत्मिक उन्नति की दूसरी रीति सत्संग वा

श्रोत्री-अर्थात् ब्रह्मनिष्ठी महात्माओं का सत्संग वा उन की रचीं हुई पुस्तकों का पढ़ना है. इस से मनुष्य के तीनों ताप-अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक दूर होजाते हैं—महात्माओं की पुस्तकें पढ़ने से, अथवा उन का उपदेश सुनने से, जो शंका उत्पन्न हो, वह उन से प्रीति और नम्रता भाव से, प्रश्न करके दूर करने को श्रवण कहते हैं. उस पढ़े हुए वा सुने हुए उपदेश को मन लगा के चिंतवन करने, और उस के अनुसार चलने को मनन कहते हैं-ऐसा करने से जो साक्षात हो अर्थात् जो २ बातें ज्ञात हों और नवीन २ विचार उत्पन्न हों, उन को निदिध्यासन कहते हैं इन तीनों साधनों के रीति अनुसार वर्तने और उन से ठीक२ लाभ उठाने को सत्संग कहते हैं. रामचन्द्रजी ने, जो वशिष्ट जीके सत्संग से लाभ उठाया, और आत्मिकशक्ति प्राप्त की जिस के द्वारा स्वयंवर में बड़े २ योद्धाओं के सन्मुख सीताजी को व्याहलिया, और रावण जैसे महाबली को परास्त किया, अर्जुन ने जो श्रीकृष्णजी के सत्संग से आत्मबल पाकर, महाभारत के युद्ध में जीत पाई, भरतखंड निवासियों को विदित है-इस सत्संग के प्रभाव से बड़े २ पापी धार्मिक बनगये, इस के प्रमाण में एक दो उदाहरण देना उचित समझा जाता है।

। संक्षेप वृत्तान्त वाल्मीकजी ।

यह मनुष्य लूट खसोट किया करता था. एक बार वशिष्ट जी मिलगये, उन को भी लूटना और मारना चाहा. वशिष्टजी ने पूछा, कि तू ऐसा दुष्ट कर्म्म क्यों करता है? वाल्मीकजी ने उत्तर दिया, कि अपने कुटुम्ब को पालने के लिये. वशिष्टजी

ने फिर पूछा, कि जब इस दुष्ट कर्म्म का फल अत्यंत दुःख तुझ को मिलेगा, उस समय तेरे कुटुम्ब के मनुष्य क्या तेरी सहायता करेंगे वा तेरे भागी होंगे ? वशिष्ठजी के दर्शन और उन के वचन वाल्मीक के मन में तीर की भांति पार निकल गये, तो भी उस ने अपनी दुष्ट प्रकृति के वश होकर, उन को छोड़ना न चाहा—अंत में सोचने के पीछे, उन को एक वृक्ष में बांध करके, अपने संबंधियों के पास जाकर प्रश्न किया, कि तुम मेरे दुष्ट कर्मों के फल भोगने में भागी होगे वा नहीं ? वे समझे, कि वाल्मीक के पीछे अवश्य दोड आरही है और वह हम को भी पकड़ेगी, इस विचार से बहुत कुदृष्टि के साथ मातापों ने उत्तर दिया, कि जैसे हो सका बाल्या-वस्था में हमने तेरा पालन किया, अब तुझ को योग्य है, कि जैसे बने हमारी पालना कर—परन्तु हम तेरे कर्मों के भागी नहीं. बच्चोंने कहा, कि जैसे तेरी पालना तेरे मावापों ने की है, वैसे ही तूभी हमारी पालना कर--प्रयोजन यह है, कि सम्पूर्ण संबंधियों ने अपना अधिकार सिद्ध करके, उस के कर्म्मों के फल से अपने को निस्संबंधी, प्रकाश किये. यह बात चीत सुन के और उन की बातचीत के ढंग को देखकर, जैसे राख दूर होने से अग्नि का प्रकाश प्रगट होजाता है, उसी प्रकार वाल्मीक की आत्मिक शक्ति रूपी अग्नि, जो मोह रूपी राख से ढकी हुई थी, चमक उठी वह ऋषि के समीप आया, उन को वृक्ष से खोलकर, बहुत आदर और नम्रता से अपने दोष की क्षमा मांगी और सच्चे मन से उपदेश की प्रार्थना की, वशिष्ठजी ने उपदेश किया, कि एकान्त सेवन करके राम राम जपो वाल्मीक राम २ के स्थान में मरा २ कहता रहा. सब ओर से मन को हटाकर, बहुत काल तक बारम्बार एक ही शब्द के उच्चारण से उस के सम्पूर्ण

संकल्प रखकर, मन शुद्ध होगया-रामायण जैसी पुस्तक बनाने की सामर्थ्य उत्पन्न होगई--सार यह है कि एक क्षण के सत्संग ने चाण्डाल से महर्षि के पद को पहुंचा दिया ॥

प्रश्न--आजकल जो सैंकड़ो मनुष्य सत्संग करते है और राम राम जपते है, वे लोग यह पदवी क्यो नहीं पाते ?

उत्तर--वे ऐसे महात्माओं को नहीं ढूंढते, जिन का वचन और कर्म्म एकसा हो वे लोग केवल दिखावट मे मान बड़ाई वा धन इत्यादि के हेतु राम नाम जपते है--सच्चे मन, पूर्ण निश्चय और परिश्रम से आत्मशक्ति बढ़ाने के लिये जाप नहीं करते है. वास्तव मे यह प्रयोजन है कि कोई एक शब्द जो छोटा सा हो, इतनी शीघ्रता से, उच्चारण किया जावे कि वह चित्त की सम्पूर्ण तमोगुणी और रजोगुणी वृत्तियो को चारो ओर से रोककर सात्विक वृत्ति उत्पन्न करके, उस शब्द में लगावे, उस समय धीरे २ जाप करना चाहिये, बारम्बार ऐसा करने से मन सूक्ष्म दृष्टि होजाता है, और अनुभव खुल जाता है जप की रीति यह है, कि पहिले ५ मिनट से आधे घंटे तक मुंह से जाप किया जावे फिर मुंह बंद किए हुए जीभ को तालू से मिलाकर जपा जावे, जब इस मे भी भले प्रकार अभ्यास हो जावे, तब जीभ को काम में न लाकर, मन ही मन में जाप किया जावे, इस रीति से नाम का जाप जो कोई करेगा, उस को वाल्मीकि की भांति अवश्य फल मिलेगा ॥

। धनुर्दास का संक्षेप इतिहास ।

यह मनुष्य नास्तिक, मद्यप, और दुराचारी था. रघुनाथ स्वामी के मेले मे अपनी प्रिया वंकानिगा को साथ लेकर गया वहां रामानुज स्वामी ने उस को देखा, कि सहस्रों मनुष्यों के

समूह में, उस स्त्री पर छतरी लगाये, दासानुदास की भांति फिर रहा है; और सिवाय उस स्त्री के और किसी ओर चेत नहीं है; और न किसी से उस को लज्जा आती है, स्वामीजी ने उस का मन इतना एकाग्र देखकर, सोचा कि यदि इस का मन उस स्त्री की ओर से हटकर परमात्मा की ओर लगजावे तो बहुत अच्छा हो-निदान उस को उस की प्रिया सहित बुलाकर, उचित उपदेश किया, दोनों के मन पर उपदेश का प्रभाव होगया दोनों ने आत्म शक्ति को इतनी बढ़ाई, कि रामानुज स्वामी ने उन को अपने सब शिष्यों से श्रेष्ठ माना और जब कभी उन की परीक्षा की तो वास्तव में उन को त्यागी साधुओं से कई गुणा अधिक पाया एक कवि ने बहुत सत्य कहा है-कि

दोहा-एक घड़ी आधी घड़ी, आधीहू में आध ।
अतिपवित्र सत्संग से, कटें कोटि अपराध ॥ १ ॥

जैसे किसी पदार्थ को रगड़ने से, अग्नि उत्पन्न होजाती है, इसी प्रकार सत्संग से आत्म शक्तियां प्रगट हो जाती हैं सत्संग को, आत्म शक्तियां प्रगट करने के लिये, प्रवृत्ति मार्ग समझना चाहिये ।

(३) तीसरी रीति आत्म उन्नति की एकान्त सेवन है, इस को निवृत्ति मार्ग समझना चाहिये इस की विधि यह है, कि पहिले अपने समय का कुछ भाग एकान्त बैठने में लगाया जावे, और उस समय सांसारिक विचारों को भूल जाने का उद्योग किया जावे यदि किसी रमणीय स्थान में अकेला बैठने का अवसर मिले, तो सांसारिक पदार्थ ध्यान से देखे जावें, यदि किसी घर के कोने में बैठना पड़े तो अपनी व्यवस्था को सोचना उचित है, कि मैं कौन हूं? कहां से आया हूं ? और

फिर इस क्षणमात्र जीवन के पश्चात् कहां जाना होगा? इत्यादि यदि एकान्त में बैठके व्यतीत संस्कारों को ही रोक दे तो भी बहुत लाभ होना संभवहै, नवीन और ऊंचे से ऊंचे विचार उत्पन्न होने लगते हैं, जितने बड़े २ मनुष्य संसार में हो गये हैं वे कुछ न कुछ वरन् बहुत कुछ अपना समय एकान्त सेवन में व्यतीत किया करते थे. उदाहरण निमित्त महात्मा बौद्ध का संक्षेप वृत्तान्त लिखना उचित जान पड़ता है, इस महात्मा का वृत्तान्त पूरा तो सामाजिक धर्म्म में लिखा जावेगा, केवल एक बात यहां पर कही जाती है. वह यह कि, छः वर्षतक राज्य त्याग के, वन में तप करने से, इन का अन्तःकरण शुद्ध हो गया था और बुद्धि बहुत तीक्ष्ण होगई थी. इन्हों ने एक यह भी नियम रक्खा था, किजो निर्बुद्धि मुझ को गाली देगा, में उस को आशीर्वाद दूंगा-जो कोई मुझ से वैरभाव रक्खेगा में उस से प्यार करूंगा इस नियम का वृत्तान्त जानने पर, एक मूढ मति मनुष्य परीक्षा के निमित्त उन के समीप गया और अनेक प्रकार की गालियां देना प्रारंभ किया, बुद्ध ऋषि चुपचाप सुनते रहे जब वह मूढ़ मति चुप हुआ, तब बुद्धजी बहुत प्रेम से बोले हे पुत्र ! यदि कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने मित्र के भेट करे और वह मित्र उस को न लेवे. तो वह किस के पास रहेगी? उस मूढ ने उत्तर दिया कि, देनेवाले के ही पास रहेगी यह उत्तर सुन के बुद्ध ऋषि हँस के बोले, कि पुत्र! तुम ने इस समय जो कुछ मुझ को भेट दिया है; में उस को लेना स्वीकार नहीं करता, तुम अपने पास ही रहने दो. यह सुन करके वह मूढ़ बहुत लज्जित हुआ. उस समय बुद्धजी ने कहा, कि जब कोई मनुष्य किसी शून्य स्थान, वन वा बड़े मकान वा बुर्ज में शब्द निकाले, तो वैसी ही ध्वनि पीछी सुनाई देती है इसी

प्रकार हे पुत्र ! इस संसार रूपी बुर्ज में भी शब्द के अनुसार शब्द सुनना पड़ता है, यदि कोई बुरा मनुष्य किसी भले मनुष्य को बुरा कहता है, तो जैसे चांद पर थूकने से, वह थूक अपने ऊपर ही गिर पड़ता है, वैसे ही बुरा कहने का प्रभाव उसी कहनेवाले पर पड़जाता है; और जिस प्रकार वायु के विरुद्ध धूल उड़ाने से वह धूल उड़ाने वाले पर ही पड़ती है, इसी रीति से भले मनुष्य को बुरा कहने से बुरा कहने वाले को ही .हानि उठानी पड़ती है. यह उपदेश सुन के, वह मूढ़ वृद्ध ऋषि के चरणों पर गिर पड़ा और नम्रता पूर्वक उन से अपने दोष की क्षमा मांग के उन का शिष्य बन गया॥

जोन बनियन, यूरूप का प्रसिद्ध फिलासफ़र, चौदह वर्ष तक बेडफ़ोर्ड जेल अर्थात् बंदी गृह में बंध रहा; इतने वर्षतक एकान्त सेवन करने का यह फल हुआ, कि उस की आत्म शक्तियां इतनी प्रगट होगईं, कि " पिलग्रिमज़ प्रोग्रेस " और " होली रूड " इत्यादि उत्तम पुस्तकें बना सका ॥

(४) चौथी रीति आत्मिक उन्नति की किसी मुख्य एक गुण का आत्मा पर अधिक प्रभाव होजाना है- जैसे किसी एक भले मनुष्य से मिलकर, बहुत से भले मनुष्यों से सुगमता के साथ जानकारी हो जाती है, और उन के मिलाप से वह पुरुष भी अवश्य भला हो जाता है, इसी प्रकार स किसी एक मुख्य गुण का गहरा प्रभाव पड़ने से दूसरे गुण भी स्वयं आजाते हैं और उन्हीं सद्गुणों के द्वारा आत्मिक शक्ति प्राप्त होजाती है—निदान कई एक उदाहरण लिखेजाते हैं सम्पूर्ण मनुष्यों को उचित है, कि अपने गुणों को मन में तोलें, और जो गुण अधिक जान पड़े, उसी की इतनी वृद्धि का प्रयत्न करें, कि उस का प्रभाव जीवात्मा तक पहुंच करके आत्म शक्ति प्राप्त हो ॥

प्राचीन समय में, पंजाब देशके मुल्तान नामी नगर में एक राजा हुआ है, जिस का नाम हिरण्यकश्यप था. उस का एक पुत्र प्रहलाद नाम बहुत ही छोटी अवस्था का था. एक दिन प्रहलाद का जाना किसी कुम्हार के आव की ओर हुआ वहां उस ने देखा कि कुम्हार की स्त्री बहुत दया और पश्चात्ताप के साथ कह रही थी, कि उस के आव में बिल्ली ने बच्चे दिये थे, भूल से उस आव में आग लगादी गई प्रहलाद ने कहा, कि अब पछताये से क्या लाभ होगा ? कुम्हारी के मुख से, कि जो बड़ी दयावान थी, स्वतः ही यह निकला कि परमात्मा कृपा करे तो अब भी बिल्ली के बच्चे बच सक्ते हैं तब प्रहलाद ने, कुछ काल पीछे, आव ठंडा होने पर आश्चर्य से देखा, कि मार्जारी के बच्चे जीते थे, प्रहलाद के मन पर उस समय में विश्वास के गुण का प्रभाव इतना होगया, कि जीवात्मा की अनेक शक्तियां प्रगट होगईं जिन के द्वारा ज्योतिः स्वरूप परमात्मा, सब ठौर ज्ञात होने लगा; बुद्धि इतनी तीक्ष्ण होगई, कि जब उस के पिता ने अनेक प्रकार के दुःख देकर भी देखा, कि वह सदैव बचा रहा, तो प्रहलाद से पूछा, कि क्या कारण है कि बड़े २ योद्धा और राजा महाराजा मेरे आधीन हो गये-परन्तु तुझ जैसे छोटे बालक को मैं स्वाधीन नहीं कर सका ? प्रहलाद ने हँस करके उत्तर दिया, कि यदि आप अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में करके, और उन के द्वारा आत्मिक शक्तियां प्राप्त कर लो, तब इसका भेद पाओगे ॥

इसी रीति से गज़नी देश के एक गुलाम अर्थात दास सुबुक्तगीन नामी के लिये कहते हैं, कि एक दिन वह शिकार खेलने गया था. और एक हरनी के बच्चे को जीता पकड़ लाया

उस की मा, सुबुक्तगीन के पीछे २ बच्चे की ममता के हेतु नगर के द्वार तक चली आई. दैव संयोग से सुबुक्तगीन ने पीछे मुड़ के उस को देखा, उस समय उस को बड़ी करुणा आई, और हरनी के बच्चे को छोड़ दिया. हरनी बच्चे को लेके और प्रसन्न होकर, बन को भागी, यद्यपि वह मनुष्य के समान बोल नहीं सक्ती थी, परन्तु वारम्वार पीछी मुड़के संकेत से सुबुक्तगीन को धन्यवाद देती थी. इस दया के गुण का सुबुक्तगीन के हृदय पर इतना प्रभाव हुआ, कि उस की आत्मिक शक्तियां प्रगट होगईं, जिन के द्वारा उस को स्वप्न में दृष्टान्त हुआ कि परमात्मा उस की इस वात से बहुत प्रसन्न हुए; और उस को कहा कि, तू ने एक हरनी के बच्चे पर दया की है इस हेतु तुझ को असंख्य मनुष्यों पर बादशाह बनाकर, राज्य करने का अवसर दिया जावेगा, उस समय भी इसी प्रकार दया रखना-निदान ऐसा ही हुआ, कि सुबुक्तगीन एक नामी बादशाह हुआ ॥

राजपूताने में, मेड़ते के राजा की लड़की मीरांबाई का वृत्तान्त है, कि वह बहुत छोटी अवस्था में, अपनी माता के साथ राज्य मंदिर से एक वरात को निकलते हुए देखकर वर को देखा, तो मीरांबाई ने भोलेपन से अपनी माता से पूछा कि मेरा वर कौन है ? माता ने हँस करके उत्तर दिया, कि तेरा वर "मन मोहन गिरिधर नागर" अर्थात् परमेश्वर है मीरांबाई को उसी समय ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ कि सम्पूर्ण आत्मिक शक्तियां जाग पड़ीं, सोचने की शक्ति बहुत बढ़ गई उस के पति चित्तोड़ के राना ने कई बार उस को दुःख देना चाहा परन्तु उस की हानि न हो सकी; विप का प्याला उस को न मार सका; काला नाग उस को न डस सका; क्योंकि

उस के प्रेम का रंग चढ़ा हुआ था, और आत्मिक बल उस को प्राप्त होगया था ॥

(५) पांचवाँ उपाय आत्मिक उन्नति का परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना है–परमात्मा के गुणों का कीर्त्तन श्रवण और उपदेश को स्तुति कहते हैं–परमात्मा से सहायता की इच्छा को प्रार्थना कहते हैं, परमात्मा की सहायता की इच्छा करने से पहिले अति आवश्यक है, कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ करे, क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का परमात्मा का यही प्रयोजन है, कि मनुष्यों को अपना पुरुषार्थ वर्त्तना चाहिये, जैसे नेत्रवाले को कोई पदार्थ दिखलाया जा-सक्ता है अंधे को नहीं, इसीप्रकार ईश्वर ने बुद्धि आदि पदार्थ मनुष्य को दिये हैं, और जो मनुष्य उन पदार्थों से ठीक २ काम लेते हैं, ईश्वर भी उन की सहायता करते हैं ॥

उपासना का अर्थ परमात्मा के समीप होना है–अर्थात् परमात्मा के स्वरूप में मग्न होकर, उस के बनाए हुए सृष्टि नियम–सत्य भाषण आदि गुणों का यथावत् पालन करना है ॥

स्तुति, प्रार्थना और उपासना के ये तीन भेद समझने चाहियेः–प्रथम वह जो बोली के द्वारा की जावे, दूसरी वह जो मन में की जावे, तीसरी वह जिसमें उस परमात्मा के गुणों का श्रवण, कीर्त्तन वा उपदेश किया जावे उस को स्वयं धारण करने का उद्योग करे और जो प्रार्थना वाणी और मन से की जावे और जिस बात की इच्छा करे, उस के लिये अपने पूर्ण पराक्रम से उद्योग करता रहे ॥

यद्यपि स्तुति,प्रार्थना और उपासना सम्पूर्ण धार्म्मिक पुरुषों को यथाशक्ति करना उचित है और ऐसा करने के समय जो शब्द उन

के हृदय में सच्चे मन से उत्पन्न हों वे ही लाभदायक और हृदयग्राहि होते हैं, तो भी कई एक उदाहरण लिखने उचित समझे जाते हैं, जो प्राचीन समय में धार्म्मिक पुरुष काम में लाते रहे हैं॥

हे परमेश्वर! आप प्रकाश रूप हैं, कृपाकरके मेरे हृदय में भी विज्ञानरूपी प्रकाश उत्पन्न कीजिये, आप अत्यंत पराक्रमी हैं, मुझको भी पूर्ण पराक्रम दीजिये; हे अनंतबलीमहेश्वर! आप अपनी अनुग्रह से मुझ को भी शरीर और आत्मा में पूर्ण बल दीजिये; हे सर्वशक्तिमान्! आप सामर्थ्य के निवास स्थान हैं, अपनी करुणा से यथोचित सामर्थ्य का स्थान मुझ को भी कीजिये; हे दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले! आप दुष्ट कामों और दुष्ट जीवों पर क्रोध करने का स्वभाव मुझ में भी रखिये हे सबके सहन करनेवाले ईश्वर! जैसे आप पृथ्वी आदि लोकों को धारण किए हुए हैं और दुष्ट मनुष्यों के व्यवहारों का सहन करते हैं, वैसे ही सुख, दुःख, हानि, लाभ, सर्दी, गर्मी, भूख प्यास और युद्ध आदि का सहनेवाला मुझ को भी कीजिये, हे उत्तम ऐश्वर्य्य युक्त परमेश्वर! आप कृपाकरके श्रोत्रादि उत्तम इन्द्रियां और श्रेष्ठ स्वभाववाले मन को मुझ में भी स्थिर कीजिये, हे जगदीश्वर! आप संपूर्ण जगत् अर्थात् जड़ और चैतन्य वस्तुओं के राजा और पालन करनेवाले हैं, आप मनुष्यों को बुद्धि, बल और आनंद से तृप्त करनेवाले हैं, जैसे आपने हम को बुद्धि आदि पदार्थ दिये हैं, उसी रीति से उन की ठीक २ वृद्धि और रक्षा भी करें; आप सदैव काल हम को ऐसी प्रेरणा करते रहें कि हम पक्षपात रहित होकर न्याय और सदाचरण से सत्य धर्म्म को ग्रहण करें, उस से विपरीत कभी न चलें किन्तु उस की प्राप्ति के लिये विरुद्धता छोड़ के परस्पर

सम्मति और प्रीति से रहें–जिस से हमारा सुख बढ़ता रहे और दुःख प्राप्त न हो आप ऐसी कृपा करें कि हम सब लोग वैर भाव को छोड़ के, आपस मे प्रीति के साथ पढ़ना पढ़ाना और प्रश्नोत्तर सहित सम्वाद करें, जिस से सत्य और निष्कपटता बढ़ती रहे ॥ .

हे परमपिता परमेश्वर ! आप की सहायता के बिना धर्म्म का पूर्ण ज्ञान और उस का पूरा अनुष्ठान नहीं हो सक्ता-इसलिये आप ऐसी कृपा कीजिये, जिस से मैं सत्य धर्म्म का अनुष्ठान पूरा करसकूं–आप ऐसी कृपा कीजिये, कि मैं सब असत्य कामों से छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूं. इस पवित्र व्रत में दिन प्रतिदिन मेरी श्रद्धा अधिक होती जावे और उस के कारण मेरे अन्तःकरण की शुद्धि और व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त होते जावें ॥

हे सर्वव्यापक अन्तर्यामी ! आप हम को ऐसी सामर्थ्य दीजिये, कि हम सदैव काल ज्ञान और विद्या को बढ़ाते हुए केवल आप की उपासना ही करते रहैं, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक ठीक परीक्षा करके, जैसा हम अपनी आत्मा में जानते हैं, वैसा ही बोलें और वैसा ही मानें. अपनी आंख आदि इन्द्रियों को अधर्म्म और आलस्य से छुड़ाके, सदा धर्म्म मे चलाते रहैं, मन और बुद्धि को धर्म्म सेवन में स्थिर रक्खें धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये सदैव काल पुरुषार्थ करते रहैं, जो संपूर्ण जगत् के उपकार के लिये सत्यवादी, सत्यकारी, विद्वान् और सबका सुख चाहनेवाले हों उन सत्पुरुषों के संग से योग्य व्यवहारों को सदा बढ़ाते रहें

हे सत्यस्वरूप परमात्मन् ! आप की कृपा और आचार्य की सहायता से हम ब्रह्मचारियों ने सद्विद्या और शुभगुणों को

धारण किया है, आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये, कि हम आलस्य और प्रमाद से सदा पृथक् रहके, कुशलता अर्थात् चतुराई को सदैव ग्रहण करके विभूति अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य्य को बढ़ावें, माता, पिता, आचार्य्य अर्थात् विद्या के देनेवाले और अतिथी अर्थात् सत्योपदेशकारी विद्वान् पुरुष इन सब की सेवा उत्तम पदार्थों और प्रसन्न चित्त के साथ करते रहें, हे परम ऐश्वर्य्य युक्त जगत् मंगल मयी परमेश्वर ! आप की कृपा से मुझ को उपासना और योग प्राप्त हो. तथा उससे मुझको सुख भी मिले; इसी प्रकार आप की कृपा से दस इंद्रियां, दस प्राण, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल ये अट्ठाईस सब कल्याणों में प्रवृत्त होकर उपासना और योग को सदा सेवन करें; तथा मैं भी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहता हूं, इस लिये वारम्वार आप को नमस्कार करता हूं, कि आप प्रज्ञा, वाणी और कर्म्म इन तीनों के पति हैं, तथा सर्वशक्तिमान् विशेषणों से युक्त हैं, इस-लिये आप दुष्ट प्रज्ञा मिथ्या वाणी और पाप कर्म्मों को विनाश करने में अत्यंत समर्थ हैं, तथा आप को सर्वव्यापक और सर्व सामर्थ्यवाला जान करके, मैं आप की उपासना करता हूं—हे परमेश्वर ! हम आप की उपासना करते हैं आप कृपा कर के अन्न आदि ऐश्वर्य्य सब से उत्तम कीर्त्ति—भय से रहित और सब विद्या से युक्त कीजिये !!

हे भगवन् ! आप सब में व्यापक, शांत स्वरूप और प्राण के भी प्राण हैं तथा ज्ञान स्वरूप और ज्ञान के देने वाले हैं, सब के पूज्य, सब के बड़े, और सब के सहन करनेवाले हैं इस प्रकार का आपको जानके, हम लोग आप की उपासना करते हैं, कि ये गुण आप हम को भी देवें ।

हे जगदीश्वर ! आप की निरन्तर उपासना करने से हम को निश्चय हुआ है, कि मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है, इसी लिये सम्पूर्ण विद्वान और धार्म्मिक पुरुष आप को, जो, सब जगत् और सब पुरुषों के हृदयों में व्यापक हो, उपासना रीति से ही अपनी आत्मा के साथ युक्त करते हैं जिस के कारण उन के हृदय रूपी भूमि में सत्य का प्रकाश होकर वे सब विद्याओं के जाननेवाले, हिंसा आदि विषयों से रहित कृपा का समुद्र हो जाते हैं, और मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनंद में रहते हैं इत्यादि ॥

। आत्मिक धर्म्म के लाभ ।

जो मनुष्य इस धर्म्म को भले प्रकार पालन करते हैं, उन में विश्वास, दया, प्रीति, न्याय, निर्भयता, शूरवीरता, धैर्य इत्यादि इतने गुण आजाते हैं कि वे इस दुःख सागर संसार को सुख सागर बना देते हैं वे अपने शारीरिक मानसिक और आत्मिक बल से अनेक प्रकार की विद्या प्रगट करते हैं ।

। आत्मिक धर्म्म के पश्चात् पारलौकिक धर्म्म के ग्रहण करने की रीति ।

आत्मिक धर्म्म को विधि पूर्वक ग्रहण करने के पश्चात, यदि परमात्मा में अधिक प्रीति होजावे और आत्मिक धर्म्म रूपी अथाह समुद्र में डुबकी मार के अनेक प्रकार के गोप्य रहस्य जानने और संसार का उपकार करने की इच्छा और सांसारिक सुखों की अधिक चाहना न हो, तो पारलौकिक धर्म्म का पालन करना चाहिये जिस का ब्योरे वार वर्णन दूसरे विभाग में किया जावेगा—परंतु गृहस्थ धर्म्म को उल्लंघन करना साधारण मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है, जब किसी देश वा जाति के

उद्धार का समय आता है, तो ऐसे महात्मा उत्पन्न होते हैं—जैसे कि शंकराचार्य्य, ईसामसीह, स्वामी दयानंद इत्यादि—ऐसे महात्माओं के तेज और यश को देख करके सांसारिक पुरुष ईर्षा और स्वार्थ के कारण अनेक प्रकार के प्रतिबंध डालते हैं और जब देखते हैं, कि कोई प्रतिबंध उन को नहीं रोक सक्ता, तो उन के जीव लेने के लिये उपस्थित होजाते हैं—परंतु वे महात्मा अपनी आत्मिक शक्ति के बल से, ज्ञान की अग्नि को इतनी प्रज्वलित कर देते हैं, कि उन की मृत्यु के पश्चात् जैसे २ द्वेष की वायु चलती है, वैसे ही वह अग्नि अधिक प्रज्वलित होती जाती है ॥

। प्राचीन ऋषियों के समय का वर्णन ।

ऋषियों के समय में भरत खंड में ऊपर वर्णन किये हुए तीनों धर्म्मों अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म्मों को पालन करने की व्यवस्था को ब्रह्मचर्य्य आश्रम कहते थे इस के पश्चात् गृहस्थाश्रम आरम्भ होता था, जिस में प्रवेश होकर, ब्रह्मचारी लोग अपने अति परिश्रम से प्राप्त की हुई शक्तियों के द्वारा, अनेक प्रकार के सुख भोगते थे. जो ब्रह्मचारी जिस व्यापार को ग्रहण करता था वा जिस की ओर ध्यान देता था, उस में उत्तमोत्तम उन्नति कर दिखलाता था जैसे विश्वामित्र ने नई सृष्टि उत्पन्न की, जिस से यह प्रयोजन है कि दो २ अन्न मिलाकरके, कई प्रकार के नये अन्न—जुवार बाजरा इत्यादि उत्पन्न किये. दो २ पशुओं के मेल से कई प्रकार के उपयोगी जीव उत्पन्न किये—द्रोणाचार्य्य ने कई प्रकार की अग्नि विद्या प्रगट की जिस की सहायता से भरतखंड के राजाओं ने दूर २ तक अपना राज्य बढ़ाया—क्योंकि इस

संसार में, जो राजा अग्नि विद्या की वृद्धि देता है, वही दूर तक राज्य कर सक्ता है-निदान तीनों धर्म्म पालन करने वाले मनुष्य सम्पूर्ण व्यवहारों में उन्नति करके, सुख से अवस्था व्यतीत करते थे. सांसारिक धन, व्योपार, विद्या, कारीगरी इत्यादि सब भरतखंड में विद्यमान् थे. अनेक प्रकार की सांसारिक सम्पूर्ण इच्छा वाले मनुष्य अर्थात् धर्म्म के प्यासे, धन के भूखे, विद्या के अभिलाषी, व्योपार के चाहने वाले, सब ऋषियों के चरणों में सीस नवा करके, अपने मनवांछित फल प्राप्त करते थे और यदि ऊपर लिखे तीनों धर्म्म फिर सच्चे उद्योग और सच्चे विश्वास से पालन करना आरम्भ किये जावें, तो फिर वही समय भरतखंड को मिलना और सारे देशों को उन्नति में उल्लंघन करना संभव है—क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है और उसकी नीति, जैसी ऋषियों के समय में थी, वही अब भी है और वह गुप्त होकर सब के कर्म्म देखता है और प्रत्यक्ष होकर फल देता है ।

प्रश्न—इस समय संसार में बहुत से देश अनेक प्रकार की उन्नतियां कर चुके हैं, उन से बढ़ना कैसे सम्भव है ?

उत्तर—उन्नति, चाहे सांसारिक कामों में हो वा धर्म्म संबंधी कामों में, उन के प्राप्त करने की दो रीतियां हैं—नीति और धर्म्म इस समय, जो साधारण रीति से देखाजावे, तो दूसरी जातियों ने जो उन्नति की है, उन्हों ने नीति को धर्म्म से अधिक आवश्यक समझ रक्खा है, और भरतखंड में बहुत काल से धर्म्म चर्चा रहने के कारण, यद्यपि अनेक प्रकार के मतमतांतरों के झगड़ों ने सच्चे धर्म्म का अभाव कर दिया है—परंतु फिर भी उस का बीज विद्यमान है और ऊपर लिखित रीतियों से उन्नति के मैदान में पांव रखने से अवश्य

है, कि धर्म्म प्रधान रहे और नीति गौण अंग में—अतएव धर्म्म को अति आवश्यक समझकर, धर्म्म और नीति दोनों को साथ २ वर्त्तते हुए, भरतखंड अवश्य दूसरे देशों से बढ़ सक्ता है. जब शारीरिक धर्म्म पालन करने से, शरीर की सम्पूर्ण कलें और टुकड़े ज्ञात हो जावें और उन को ठीक २ चलाना आजावे, तो बाहर की कलें नई बनानी और उन से काम लेना कौन सा कठिन है? जब मानसिक धर्म्म के पालन करने से मन को दाव पेच करके वश में कर लिया जावे, तो बाहर की सांसारिक नीति के तत्व वर्त्तने क्या बड़ी बात है? जब शरीर रूपी नगर में दया, प्रेम और न्याय द्वारा आत्म बल से सब शक्तियों को नियम में रखने पर बलवान् होजावे, तो इसी भांति बाहर की संसार में भी किया जाना सम्भव है—परंतु यह बात तब ही हो सक्ती है,जब कि सामाजिक उन्नति का पूरा प्रबंध हो क्योंकि नवीन कलें बनाने वाले को आदि में संसार उन्मत्त बतलाया करता है, सहस्रों मनुष्य विरुद्धता करते हैं—परन्तु सामाजिक उन्नति का प्रबंध हो, तो वे लोग सहायता करते हैं और शनै २ उस की रचना को सम्पूर्ण कर देते हैं सामाजिक धर्म्म का वर्णन पांचवें अध्याय में किया जावेगा ॥

आत्मिक धर्म्म को पालन करने के पश्चात् गृहस्थ धर्म्म को धारण करना चाहिये, जिस का संक्षेप वृत्तान्त आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

। प्रथम भाग ।

। चौथा अध्याय ।

। गृहस्थ धर्म्म ।

। गृहस्थ धर्म्म की व्याख्या ।

गृहस्थ धर्म्म का शब्दार्थ घर में रहने के कर्म्म हैं. बोल-चाल में उन कर्म्मों से अभिप्राय है, कि जिन के द्वारा, विद्याध्ययन के पश्चात्, जीविका का भले प्रकार उद्योग होकर, कुटुंब के लिये सामान इकट्ठे किये-जासकें और सुख से निर्वाह किया जावे।

गृहस्थ धर्म्म इसी कारण से बहुत ऊंचे पद का समझा गया है, कि इस के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म्म पालन करने का उपाय हो सक्ता है और इसी के सहारे पर सन्यास इत्यादि पारलौकिक धर्म बने रह कर उन्नति कर सक्ते हैं. गृहस्थाश्रम एक छोटे से राज्य के समान है, जिस में सम्पूर्ण को राज्य-सभा की भांति एक दूसरे की सहायता और आज्ञा पालन करते हुए, बहुत ही सच्चाई, परिश्रम और धीरज के साथ अपने अपने कर्म्म करते रहने चाहिये, जिन का संक्षेप वृत्तान्त इस स्थान में किया जाता है।

। जीविका का उद्योग ।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म्म को पालन करते हुए, जब विद्याध्ययन से स्वतंत्रता प्राप्त हो, तो अपनी योग्यता और मनकी इच्छा के अनुसार, किसी ऐसे एक व्यापार को ग्रहण

करना चाहिये, जिस से भले प्रकार धर्म्म के साथ निर्वाह हो सके. उस व्यापार में पूर्ण सावधानी के साथ श्रेष्ठ रीतियों से उचित धन प्राप्ति का उद्योग करते रहना चाहिये ॥

जिस प्रकार की विद्या सीखी हो और जिस ओर मन की रुचि हो उसी प्रकार का व्यापार ग्रहण करना चाहिये और उस व्यापार में अधिक से अधिक वृद्धि और कीर्ति प्राप्त करना अपना मुख्य धर्म्म समझना चाहिये—निदान अपनी प्रकृति और स्वभाव और रहनगत ऐसी करलेना उचित है, जिस से स्वयं उन्नति और यश होता चलाजावे—जैसे यदि धर्म्म का प्रचार करने की इच्छा हो तो परमात्मा से अधिक संबंध रख के, सदैव संसार को सराय के तुल्य समझना चाहिये, जहां नित्य निवास स्थान के अनुसार सुखदायक सामान कोइ भी एकत्र नहीं किया करता—किंतु सुख वा दुःखसे जैसा अवसर मिले समय व्यतीत करके परमावस्था अर्थात उस स्थान का जहां अंत में पहुंचना है ध्यान रखना चाहिये. धर्म्म प्रचारक को जहांतक हो सके, जो कुछ मन में हो, वही प्रसिद्ध करना चाहिये और निर्दोष और निर्भय होकर- संसार में विचरते हुए, अधिक से अधिक मनुष्यों में अपने विचार फैलाने का उद्योग करते रहना चाहिये. सम्पूर्ण मनुष्यों को स्वजातीय समझकर, उन के और दूसरे जीवों के सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति के हेतु यत्न करते रहना चाहिये. और यदि कृषीकार बनने की इच्छा हो, तो कृषी विद्या से पूरी जानकारी और सर्दी गर्मी का सहन स्वभाव डालकर, ग्रामवासियों और कृषी कर्म में काम आनेवाले पशुओं से एक मुख्य प्रकार का संबंध उत्पन्न करना चाहिये ॥

यदि वाणिज्य वा व्योपार की इच्छा हो तो देश २ की उत्पत्ति

और आवश्यकताओं को जानना, और मन में नमीं और सचाई का उत्पन्न करना, अपना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये. युद्धविद्या के अभिलाषियों को वीरता के ढंग धारण करना उचित है. व्यायाम इत्यादि के द्वारा शरीर को दृढ़ बनाना और आरोग्यता को अधिक उत्तम रखना आवश्यक है नौकरी करने में यदि मृत्यु का भय हो तो भी चिंता न करनी चाहिये ॥

न्यायशाला और नीतिसहायकता अर्थात् विकालत का धन्धा करने के लिये, सृष्टि की नीति और मनुष्य की प्रकृति को जहांतक हो सके भले प्रकार जांच करके शांति, स्वतंत्रता और न्याय फैलाने के लिये तर्कशास्त्र और व्याख्यान देने की शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करना उचित है. राज्य सभा की चाकरी करनी हो, तो सर्व प्रिय होने का गुण प्राप्त करके अपने से उच्च राज्याधिकारियों को आज्ञाकारी से प्रसन्न रखना, बराबरवालों और अपने आधीनों के साथ न्याय और प्रीति का वर्ताव करना उचित है ॥

। संबंधियों से वर्ताव ।

सम्पूर्ण गृहस्थियों के अधिक वा न्यून संबंधी अवश्य होते हैं, उन के साथ बहुत शिष्टाचार प्रीति और सचाई के साथ वर्ताव रखना चाहिये, और यथाशक्ति, विना किसी अवसर पर जतलाने के उपकार करने को सदैव कटिबद्ध रहना चाहिये. उन की बुद्धि के द्वारा यह जानकर, कि वे किस प्रकार के मनुष्य हैं, छोटी २ बातों में खेंचाखेंची कदापि नहीं करना चाहिये. उन से वर्ताव करते समय सदैव इस दिव्य नीति को याद रखना उचित है, कि जैसा उन से वर्ताव किया जावे,

वैसा ही वर्ताव यदि वे हमारे साथ करें तो हम को अप्रिय न जानपड़े, जिस बात को हम अप्रिय समझें वह उन से भी न वर्त्ती जावे. कुटुंब की एकता और संबंधियों का बल सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिये एक बहुत बड़ा लाभ और पराक्रम समझा गया है. धन्य हैं वे मनुष्य जिन को यह सुख प्राप्त है ! परन्तु संबंधियों से अनुचित वर्ताव करने से यह सुख घोर क्लेश में बदल जाता है—भाई जो बाहूबल कहा जाता है, बांह का सर्प बनजाता है इस के प्रमाण में "घर का भेदू लंका ढहावे" की कहावत लोक प्रचलित है कहते हैं कि लंका के राजा रावण ने अपने भाई बिभीषण से उचित वर्ताव नहीं किया, इस हेतु बिभीषण महाराजा रामचन्द्र से जा मिला. सोच विचार कर देखा जावे तो जितने कुलों, जातियों और देशों में बिनाश हुआ है, वह सब आपस की फूट से ही हुआ है और यदि फूट का यथार्थ कारण निर्णय किया जावे, तो सम्पूर्ण अवसरों पर प्रथम छोटी छोटी बातों में और फिर बड़ी २ बातों में आपस का अनुचित वर्ताव ही निकलेगा॥

। पड़ोसियों के साथ वर्ताव ।

पड़ोसियों को भी, संबंधियों के समान जानकर, उन के सुख दुःख को अपना ही सुख दुःख समझना चाहिये, और जहांतक होसके उन से प्रीति का वर्ताव रखना चाहिये यदि ऐसा संभव न हो तो झगड़ा क्लेश करने के बिरुद्ध कोई दूसरा अच्छा पड़ोस ढूंढना चाहिये अत्युत्तम यह है, कि अपनी मीठी बातों, नर्मी और सौम्य स्वभाव से झगड़ालू पड़ोसी की चित्तवृति को फेरकर, सुखपूर्वक निर्वाह किया जावे ।

कहते हैं कि एक भले और सुशील मनुष्य के पड़ोस में कोई झगड़ालू और क्रोधी मनुष्य आरहा, और छोटी २ बात पर नित्यप्रति क्लेश करना आरंभ किया. एक दिन दैवयोग से उस का एक पालतू कबूतर भले पड़ोसी की छत पर जा बैठा और वहां उस को बिल्ली ने पकड़कर मारडाला. इस पर झगड़ालू पड़ोसी ने कलह करना आरंभ किया कि मेरे कबूतर को जान बूझकर मरवा दिया. शान्तस्वभाव पड़ोसी ने यह सुनकर, जैसे को तैसा उत्तर देने के विरुद्ध, बहुत नर्मी और धैर्य्य के साथ, अपने झगड़ालू पड़ोसी से उस के कबूतर के मरने पर शोक प्रकाश करके, क्षमा मांगी; और उस कबूतर का मोल देने पर उद्यत हुआ. यह नर्मी देखकर, झगड़ालू की आंखों में क्रोध से लोहू बरसने के स्थान में अकस्मात आंसू भर आये और वह स्वयं अपने पड़ोसी से उस पर झूटा अपराध लगाने के बदले, बहुत लज्जित होकर, नम्रता से क्षमा मांगनेलगा ॥

। मित्रों से बर्ताव ।

यद्यपि स्वार्थ से पूरित इस संसार में सच्चा मित्र मिलना दुर्लभ है, तो भी थोडे से मनुष्यों से मित्रता रखनी पड़ती है; और यदि उन से निष्कपटता और सच्ची प्रीति के साथ बर्ताव रक्खा जावे; और जहांतक हो सके उन के सत्कार और कार्य्य सिद्धि में परिश्रम किया जावे, तो उन में से अच्छे मित्र भी उत्पन्न हो जाते हैं; और आपदा के समय सहायता करने को उद्यत हो जाते हैं. जिस प्रकार उन की मित्रता निश्चय होती जावे, उसी प्रकार उन से संबंध बढ़ाना उचित है—परंतु सम्पूर्ण मन के भेद उन को कदापि नहीं देना चाहिये क्योंकि यदि किसी कारण से मित्रता न. बनी रहे, तो उस

समय उन से हानि पहुंचने का भय है. सम्पूर्ण गृहस्थियों को उचित है, कि पहले सोच समझकर मित्र बनावें, फिर तक होसके जन्मभर मित्रता निभावें. अत्युत्तम यह है, थोड़े मित्र हों और उत्तम हों, विरुद्ध इस के, कि बहुत मित्र हों, और दिखावटी हों ॥

। विरोधियों से वर्ताव ।

मनुष्य चाहे जितना सुशील और मिलनसार हो फिर एक वा अधिक विरोधी उस के हो ही जाते हैं. विरोधि से सदैव न्याय, धैर्य्य और सोच विचार के साथ वर्ताव कर चाहिये. अपनी ओर से सदैव यह यत्न होना चाहिये, कि विरोधी मित्र बनजावें. यदि यह किसी प्रकार संभव न तो जहांतक हो सके विरोधियों से दूर रहने का उपाय किय जावे—परन्तु किसी अवस्था में विरोधियों को दबाने वा दुःख पहुंचाने के लिये, अनुचित वर्ताव न किया जावे, और उन की निठुरता और अत्याचार को परमात्मा के न्याय पर छोड़ दिया जावे ॥

। सर्व साधारण के साथ वर्ताव ।

जो मनुष्य संसार में सदाचार से जीवन व्यतीत करते हैं उन से मित्रता रखनी; संकट में फंसे हुए और दुःखियों के साथ सहानुभूति प्रगट करके यथाशक्ति सहायता करनी; सदाचारियों के उत्तम कामों को देखकर वा सुनकर प्रसन्न होना और उन की प्रशंसा करनी; अत्याचारियों से न मित्रता रखनी न शत्रुता किंतु जहांतक बने दूर रहना उचित है; और यह भी सदैव याद रखना चाहिये, कि जो बात अपने लिये अच्छी न जान पड़े, वह औरों के लिये भी अच्छी न समझी जावे ॥

। अतिथि सत्कार ।

गृहस्थ में अतिथि सत्कार भी एक मुख्य धर्म है. जब कोई मित्र, संबंधी, पथिक वा उपदेशक आवे तो, यथाशक्ति और उस की आवश्यकता का अनुमान करके, हँसमुखता से उस का आदर सत्कार कियाजावे. बुद्धिमानों ने कहा है, कि परमेश्वर का धन्यवाद कर, कि तेरा पाहुना तेरे यहां रोटी खाता है. भरतखंड और अरब इत्यादि देशों में, अतिथि सत्कार की अच्छी रीति है; और ऋषियों के समय में इस को अतिथि सेवा कहते थे. जबतक अतिथि सेवा का भले प्रकार प्रचार रहा, उत्तम २ उपदेशक दिन रात भ्रमण करके अमृतरूपी उपदेश से कृतार्थ करते थे; और अपनी आवश्यकताओं से निचिंत रहकर, शांतचित्त से, धर्म के अति सूक्ष्म अंगों को सोचने और फैलाने में तत्पर रहते थे ॥

। दान ।

संसार के सम्पूर्ण पदार्थों के स्वामी पृथ्वीनाथ परमेश्वर हैं, जो अपनी दयालुता और न्याय से सम्पूर्ण को अपनी २ योग्यता और परिश्रम के अनुसार, सामग्री अल्पकाल के लिये, दे देते हैं, जिस का उचित बर्ताव करना सम्पूर्ण धार्मिक पुरुषों का धर्म्म है; और कुछ विभाग उस सामग्री का दूसरों की आवश्यकता पूरी करने के लिये सदैव दान करना चाहिये. साधारण रीति से अपने वेतन का सोवां विभाग पुन्य करके सामाजिक उन्नति के भार उठानेवाले पुरुषों को देना उचित है और यदि सामाजिक उन्नति का यथायोग्य प्रबंध न हो, तो अपनी मति के अनुसार वा कई बुद्धिमान पुरुषों की सम्मति से वह सोवां विभाग व्यय करना चाहिये., मनुष्य चाहे कैसा

ही पक्षपात से रहित हो, फिर भी कुछ न कुछ ममता रहती ही है, इस लिये उचित है, कि दान के समय अपनी बुद्धि से दूसरे बुद्धिमानों की समझ को श्रेष्ठतर समझे ॥

सोवें विभाग से उपरांत मुख्य २ अवसरों पर भी यथाशक्ति दान करना उचित है। एक रीत छिपाकर दान करने की है जिस को गुप्तदान कहते हैं. आपदा में फंसे हुए, स्वेत वस्त्र वालों की सहायता, निर्धन विद्यार्थियों की सहायता, योग्य ग्रंथकारों की सहायता, नवीन कल्पना करनेवाले कारीगरों की सहायता, इस रीति से करना, कि दूसरा न जान सके, गुप्त दान समझना चाहिये—जिस का फल महा कल्याण है. जो मनुष्य इस प्रकार का दान करते हैं, उन के घर में सदैव लक्ष्मी का वास रहता है और उन की जाति और देश भी सुलभता के साथ उन्नति के मैदान में जमे रहते हैं—निदान जैसा दान का करना आवश्यक है, वैसे ही पात्र को दान का पहुंचाना भी अति आवश्यक है ॥

। आपद् धर्म्म ।

गृहस्थ धर्म्म में यह भी स्वभाव डालना चाहिये, कि जब कोई काम, मुख्य करके नवीन काम, किया जावे, तो उस समय यह सोच लिया जावे, कि वह काम किसी प्रकार शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म्म के विरुद्ध तो नहीं है. ऐसा स्वभाव होजाने पर, किसी बुरे काम का करना असंभव के लगभग होजाता है—यदि मन उपरांत कोई विरुद्ध काम करना पड़े तो जहांतक हो सके यह उद्योग किया जावे, कि उस काम के बुरे फल का प्रभाव कम हो—इसी को ऋषियों की बोल चाल में आपद् धर्म्म अर्थात् आपदा के समय का धर्म्म कहते हैं ॥

। आपद् धर्म्म का उदाहरण ।

भाड़े का वाहन–रेल, नाव इत्यादि में वा समर्थवान प्रजा-पीड़क के पंजे में फंस जाने के समय, आपद् धर्म्म समझकर जैसे बन पड़े निर्वाह करलेना उचित है–परन्तु बारम्बार वा बहुत काल तक आपद् धर्म्म नहीं वर्तना चाहिये नहीं तो स्वभाव होजाने का भय है स्वभाव के वश होकर, बिना सोचे समझे, किसी कर्म का करना अधर्म समझना चाहिये ॥

। टाइम टेबुल अर्थात् समय का उचित विभाग ।

गृहस्थ में असंख्य कर्म्म करने पड़ते हैं, इस हेतु उन को भले प्रकार करने के लिये, समय का विचारपूर्वक विभाग करना–अर्थात् टाइम टेब्ल बनाना बहुत लाभदायक है–निदान बानगी की रीति पर एक साधारण टाइम टेब्ल लिखा जाता है सम्पूर्ण मनुष्य अपनी रहनगत वा दशा के अनुसार, इस के क्रम में परिवर्तन वा आवश्यकता हो, तो समय के विभाग में अधिकता वा न्यूनता करलें ॥

प्रातःकाल सूर्य उदय से पहिले उठकर और परमात्मा का ध्यान करके, फिर जो २ काम उस दिन करने हों उन को सोच लेना चाहियेः–

शंकाओं से रहित होना....	आध घंटा.
स्नान और व्यायाम....	आध घंटा.
नित्य नियम अर्थात् आत्मिक उन्नति के साधन....	आध घंटा.
कलेवा....	पाव घंटा.
घरू काम काज	आध घंटा.
सामाजिक काम	पाव घंटा.
अपना उद्यम ...., ...	दो घंटा.

भोजन और आराम .... एक घंटा.
अपना उद्यम .... पांच घंटा.
जलपान वा दोपहरी करना .... पाव घंटा.
बाहर घूमने को जाना .... एक घंटा.
घरू काम काज .... एक घंटा.
शंकाओं से रहित होना .... आध घंटा.
व्यालू अर्थात् सायंकाल का भोजन .... आध घंटा.
मित्रों इत्यादि से मिलना, समाचार पत्र इत्यादि
पढ़ना परोपकार करना.... .... दो घंटा.

थोड़े समय के लिये, परमात्मा का ध्यान और दिनभर के कामों के सोच विचार के पश्चात्, आराम करना अर्थात् सयन करना ॥

। विवाह ।

जब कमाई का भले प्रकार प्रबंध हो जावे, तो विवाह का सोच विचार होना चाहिये. उस समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि स्त्री की अवस्था पुरुष से न्यून से न्यून (३) तीन और अधिक से अधिक (१५) पन्द्रह वर्ष कम हो. यह एक ऐसा नियम है, जिस पर चलने से बचपन और वृद्धावस्था का विवाह स्वयं रुकजाना सम्भव है; और दोनों के गुण कर्म्म और स्वभाव की भले प्रकार छान बीन होजानी उचित है. गुण से प्रयोजन योग्यता, कर्म से प्रयोजन चाल चलन, और स्वभाव से प्रयोजन प्रकृति है ॥

वैद्यक शास्त्र के अनुसार एक ही प्रकृति के स्त्री पुरुष से, जो संतति उत्पन्न होती है, वह निर्बल और रोगी होती है यदि पित्त और कफ प्रकृतिवालों का विवाह हो तो, संतति की

वृद्धि और आरोग्यता के लिये, बहुत लाभदायक है. इस नियम के अनुसार यह भी उचित है, कि पति और पत्नि, जहांतक संभव हो, संबंध और निवास स्थान में बहुत समीप न हों-अर्थात् दूर हों ॥

। विवाह के समय की प्रतिज्ञायें और उन के लाभ ।

विवाह के समय, जो २ प्रतिज्ञायें स्त्री और पुरुष में होती हैं, वे दोनों को भले प्रकार समझ लेना चाहिये; और उन को नित्यप्रति स्मरण रखते हुए सदैव सचाई के साथ उन पर चलना चाहिये—जैसे पाणिग्रहण के समय, एक बड़ी प्रतिज्ञा यह होती है, कि स्त्री अपना तन मन और धन पुरुष के, और पुरुष स्त्रीके,अर्पण करदेते हैं जिस के हेतु, सम्पूर्ण आपस के बचनों पर बने रहने का यह भी एक बड़ा धर्म है, कि मन, बचन और काया से,पुरुष अपनी स्त्री पर, और स्त्री अपने पुरुष पर, संतोष रक्खे; और दोनों में परस्पर बहुत सचाई न्याय और प्रीति के साथ वर्ताव रहना चाहिये. पुरुष स्त्री को अपना अर्द्धांगी समझे, और स्त्री पतिव्रता धर्म में तत्पर रहे दोनों के मन आरसी की भांति स्वच्छ रहने चाहिये, किसी प्रकार की मलीनता मनों में नहीं आनी चाहिये. यदि दैव योग से किसी प्रकार की भूल किसी से हो जावे, तो आंख चुराना उचित है यदि ताड़ना करना आवश्यक ही समझा जावे तो वह ताड़ना विना तिरस्कार और कड़वे बचनों के प्रीति के साथ हो जिस घर में स्त्री और पुरुष का मन मिला हुआ होता है, और दोनों अपने २ धर्म को समझकर उस पर चलते हैं वह घर स्वर्ग का नमूना बनजाता है ॥

। उत्तम संतति उत्पन्न करने की रीति ।

जिस प्रकार विद्या और धन इत्यादि पदार्थों के प्राप्त करने

के उपाय हैं उसी प्रकार उत्तम संतति उत्पन्न की जासक्ती है. वात्सायन आदि भरतखंड के ऋषियों ने ऐसी २ रीतियां निकाली हैं, जिन के जानने और बर्ताव करने से, मनुष्य जिस प्रकार की संतति उत्पन्न करना चाहे, करसक्ता है ॥

रघुकुल अर्थात् महाराजा रामचन्द्रजी के वंश के राजा उत्तम संतति उत्पन्न करने के अभिप्राय से, ऋषियों की बतलाई हुई सारी रीतियां ठीक २ काम में लाते थे, जिस के कारण उन की संतति बहुत बलवान और शूरवीर उत्पन्न होती थी; और सदैव आरोग्य रहकर सम्पूर्ण सुख प्राप्त करती हुई, पूरी आयुर्दा को पहुंचती थी ॥

धार्मिक पुरुषों के हितार्थ, थोड़ीसी रीतियों का संक्षेप वर्णन इस स्थान में करना उचित जान पड़ता है ॥

(१) विषय भोग में अत्यंत लंपट होकर, वीर्य को वृथा खोने के बदले, इस अमोल्य वस्तु को बड़ी सावचेती के ठीक अवसर पर व्यय करना चाहिये, जितनी सावचेती की जावेगी, उतना ही वीर्य अति प्रभाविक होगा. उचित है, कि जब स्त्री रजस्वला धर्म से निश्चित हो, उस के पांचवें दिन से पन्द्रहवें दिन तक भोग किया जावे—परन्तु एक रात्रि में एक बार से अधिक भोग सम्पूर्ण व्यवस्थाओं में वर्जित है, जिस दिन ऐसा विचार किया जावे, स्त्री को कई घंटों पहिले चिता दिया जावे. ऐसा करने से, स्त्री को उस विचार का वारम्वार स्मरण होकर, उस ओर पूर्ण रुचि होजावेगी. यदि लज्जा वा और किसी कारण से ऐसा न हो सके, तो कोई मुख्य संकेत मान लिया जावे—जैसे फूलों का हार वा सुगंध का फूल दे दिया जावे—परन्तु ऐसा विचार वा संकेत रजस्वला धर्म के पीछे ही, काम में आना चाहिये ॥

प्रश्न-गर्म देशों में, स्त्री छोटी अवस्था में ही, रजस्वला होजातीहै; भरतखंड में बहुधा ग्यारह वा बारह वर्ष की अवस्था में यह चिन्ह प्रगट होजाता है, तो क्या उस समय में भोग करना अवश्य चाहिये, और उस से उत्तम संतति होना संभव है?

उत्तर-यदि उष्ण देशों में सर्द देशों की अपेक्षा यह चिन्ह शीघ्र उत्पन्न होताहै, तो भी अधिक कारण इस का यह होताहै कि कन्याओं को भोग संबंधी बातें करने, सुनने और देखने का अवसर मिलने से, उन में अधूरा वेग उत्पन्न होजाताहै, और जिन को ऐसा अवसर नहीं मिलताहै, वें चाहे कैसे ही उष्ण देश निवासी हों, चौदह पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक यह चिन्ह और इच्छा नहीं होती है-निदान अत्यन्त उष्ण [illegible] वा स [illegible] अवस्था तक न तो
के गांवों की कन्याएं [illegible] न उन के चिन्ह इच्छा होती है-इस का
उत्तम मिली है, और [illegible] उभारे हुए अधूरे वेग के चिन्ह प्रगट होने
[illegible] उत्पन्न करने के लिये, भोग का उत्तम समय
रखता होती है, [illegible] चाहिये ॥

बनावटी रीति [illegible] भोग के समय चित्त प्रसन्न, और सारा शरीर स्वच्छ
उत्तम संतति [illegible] होना चाहिये. उस दिन, ऋतु का निरूपण करके
समझना चाहिये [illegible] चित्त अधिक समय तक वस्त्र से रगड कर स्नान
(२) [illegible] है-क्योंकि वीर्य का संबंध जल से अधिक है.
और सुपाच्य [illegible] र्धन और पाचक भोजन करना चाहिये, अवश्य
शरीर को [illegible] ल को दूध वा क्षीर जिस में बादाम, छुहारे, इला-
करना उचि [illegible] बल बढानेवाली और पाचन दीपन वस्तुएं डाली
उत्तम व [illegible] ऋतुफल, जो तुरंत के तोडे हुए हों और खट्टे न हों,
करके [illegible] ए जावें. शयनशाला को पुष्पों और दूसरी सुगंधी
पनी
जावें

। प्रथम शंका ।

इन दिनों में मनुष्य विषय भोग की ओर अधिक प्रवृत्त हैं, बहुधा विवाह होने से पहिले ही वीर्य का नाश करते रहते हैं, फिर विवाह के पश्चात् बहुत काल तक नित्य प्रति दो २ बार वा इस सें भी अधिक बार भोग करते रहतेहैं, गर्भ के दिनों में बहुधा प्रसव तक नहीं चूकते, और बालक के जन्म के पीछे भी बहुधा तत्काल इसी में तत्पर होजाते हैं, ऐसे मनुष्यों से रजस्वला धर्म की बाट देखते हुए सदा एक २ महीने के लिये रुकना, और फिर नौ महीनों तक गर्भ स्थिति के समय रुकना, और एक वर्ष तक प्रसव के पीछे रुकना, बहुत कठिन है, इस हेतु ऋषियों के समय की इस रीति के विरुद्ध, कोई वर्त्तमान समयके अनुकूल, सुलभ और निभने योग्य रीति बतलाना चाहिये ।

। समाधान ।

जब से यह सृष्टि रचीगई है और जब तक रची रहेगी, धर्म के स्वाभाविक नियम एक ही रीति पर रहेंगे, सृष्टि के नियम, चंद्र और सूर्य का घूमना, ऋतुओं के अपने २ समय पर आना, इत्यादि जैसे ऋषियों के समय में थे, वैसे ही अब भी हैं. इसी प्रकार जो धर्म प्राचीन समय में था वह अब भी वर्तने में आसक्ताहै और आना चाहिये ॥

जो कोई सच्चे मन से धर्म को ग्रहण करने का यत्न करता है, उस को स्वयं धीरे २ सुगमता होती जाती है; और धर्म का फल सुख प्राप्त होने के कारण रुचि और साहस अधिक होता जाता है–परन्तु जो कोई असावधानता और उदासीन वृत्ति से धर्म का पालन नहीं करता, वो धर्म उस से अधिक दूर होताजाताहै; और उस के ग्रहण करने में अधिक कठिना-

इयां दीख पडती हैं--निदान जैसे धर्म पर चलनेवाले को धर्म का तोड़ना अप्रिय लगताहै, उसी प्रकार धर्म को उलंघन करनेवाले को धर्म पर चलना कठिन दीख पड़ताहै. इसी नियम के अनुसार धर्म के मुख्य अंग ब्रह्मचर्य्य सेवन करनेवालों के विचार शुद्ध और बीर्य पुष्ट होकर, उन में रुकावट की शक्ति इतनी अधिक होजाती है, कि जब तक उचित समझें भोग से रुकेरहें और जिन्हों ने ब्रह्मचर्य्य सेवन नहीं किया हो, उन के विचार अशुद्ध और वीर्य पतला और निर्बल होकर, जैसे अग्नि में घृत डालने से अग्नि अधिक प्रज्वलित होतीहै, वैसे ही विषय भोग में सुख की इच्छा करके, वे जितने लंपट होते हैं, उतनी ही झूठी और अधूरी इच्छा विषय भोग की उन में अधिक वेग से उत्पन्न होतीहै, दिन प्रति दिन आनंद कम होताजाताहै, आरोग्यता बिगड़तीजातीहै, और अंत में नपुंसक होजातेहैं ऐसे विषयी पुरुषों के प्रथम तो संतति होती ही नहीं यदि होतीहै तो मृत वा बहुत निर्बल अंग. और जन्म रोगी होतीहै. ये हानियां तो धर्म से बिरुद्ध विषय भोग की साधारण व्यवस्था में होतीहैं--किंतु गर्भस्थिति में इस से भी अधिक हानियों का भय है जैसे गर्भ पातन, बालक के चोट आने का वा स्त्री की आरोग्यता बिगड़ जाने का भय है, और बच्चे का आहार बिगड़ जाता है, और पोषण के बिभाग कम रहजातेहैं. इसी प्रकार बालक के जन्म के पीछे, यदि भोग शीघ्र किया जावे, तो स्त्री का दूध बिगड़ जाताहै, जिस के कारण बालक को बहुत हानि पहुंचतीहै निदान अपनी आरोग्यता, स्त्री की आरोग्यता और बालक की आरोग्यता का ध्यान रखकर धर्म पर चलनेवालों और धर्म को ढूंढ़नेवालों को और उत्तम संतति के अभिलाषियों को, अति आवश्यक है, कि मिथ्या सुखदायक

भोग से बचें, सोच विचार कर देखाजावे तो यह ऋषियों का मत उन सब मतों से अत्युत्तम है, जो आजकल के भक्त-संसार के दूरदर्शी लोग संसारकी प्रजा को दिन २ बढ़ते देखकर, उस को कम करने के विचार काम में लारहे हैं-परन्तु वस्ती और अत्याचार दोनों बढ़ते ही चलेजातेहैं ॥

। दूसरी शंका ।

प्राचीन ऋषियों का धर्म सांसारिक नियम और वैद्यक विद्या के अनुकूल है वा नहीं? और यदि है तो धूअलीसेना इत्यादि हकीमों का वचन है, कि जब विषयों के विचार के बिना यह वेग उत्पन्न हो, तो उस को सच्चा वेग समझ कर पूरा करलेना उचित है. और इस में यह विचार न कियाजावे कि वेग कितने समय पीछे उत्पन्न हुआ निदान यदि साधारण व्यवस्था में महीने के भीतर वा गर्भस्थिति में और बालक के जन्म होजाने से आप की अवधि के पहिले, भोग की सच्ची इच्छा उत्पन्न हो तो क्या करना चाहिये?

। समाधान ।

ऋषियों ने असंख्य प्रयोग और मन की शक्तियों के जगाने के पश्चात्, सृष्टि के नियमों की सहायता से धर्म को प्रगट किया था और आयुर्विद्या उन के धर्म का एक अङ्ग समझागया है-निदान ऋषियों का धर्म इन दोनों के अनुकूल है-परन्तु जिन पुरुषों का वर्णन तुमने प्रथम शंका में किया है-अर्थात् जिन्हों ने बाल्यावस्था में वीर्य को नष्ट किया हो, वा विवाह के पश्चात् विषय भोग में अत्यन्त लंपट रहे हों, उन को वा उन की निर्बल संतति को विषय भोग की सच्ची इच्छा उत्पन्न होनी असंभव है-जैसे वृक्ष पर पकेहुए आंब में एक

मुख्य प्रकार का स्वाद और उत्तम रस होता है–परन्तु कच्चे आंब में न वैसा रस होता है न स्वाद–यदि देखने और कहने में दोनों आंब ही हैं; इसी प्रकार विषयी और धार्मिक पुरुष में अन्तर समझना चाहिये–यदि दिखावट में दोनों एक से हैं. विषयी पुरुषों को कम से कम एक वर्ष तक, ऐसे महात्माओं का, जिन का वचन और कर्म एक सा है, सत्संग करके और उन की शिक्षा के अनुसार बहुत धैर्य और हिम्मत के साथ चलना चाहिये, तब उन को विषय की सच्ची इच्छा का अनुभव होकर, ज्ञात होगा, कि वीर्य की नियमानुसार जितनी रक्षा की जाती है, उतनी ही देर में विषय की सच्ची इच्छा उत्पन्न होती है–परन्तु थोड़े २ समय में अधूरा वेग उत्पन्न होकर जो मनुष्य को अधीर करता है, वह भोग की सच्ची इच्छा कदापि नहीं समझना चाहिये ॥

। तीसरी शंका ।

यद्यपि सिद्धान्त मत से ऊपर लिखी रीति कुछेक अच्छी जान पड़ती है–परन्तु व्यवहार में प्रत्यक्ष जान पड़ता है, कि जिस प्रकार वायु जल और अन्न विना प्राण नहीं रह सक्ते, उसी प्रकार इन तीनों के पीछे भोग का होना आवश्यक है–निदान कोई ऐसा उपाय अर्थात् साधारण उपचार बतलाना चाहिये जिस के द्वारा निर्वल वीर्यवाले भी, अधूरे वेग को रोककर, नियत काल तक बचसकें ॥

। समाधान ।

साधारण उपाय नीचे लिखे जाते हैं. मुख्य २ दशाओं में किसी अभ्यासी महात्माओं से सम्मति लेना चाहिये ।

(१) जहांतक होसके एकान्त में और विपरीत काल में, स्त्री पुरुष आपस में न मिलें ।

(२) जैसे दुर्गंध इत्यादि पर दृष्टि पड़जावे, तो चलती आंख से उस को देखकर, उस के प्रभाव से बचने का उद्योग किया जाता है, इसी प्रकार से यदि दैवयोग करके, बिषयों का वर्णन कान में पड़जावे, वा किसी पुस्तक में लिखा दिखलाई देजावे, वा स्त्री पुरुष का एकान्त में मिलाप होजावे, वा एक दूसरे के शरीर के अवयवों पर दृष्टि पड़जावे, तो उस ओर रुचि के साथ अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये; जिस से उस का चिन्ह मन पर अधिक न जमसके, कुदृष्टि से देखना ही धार्मिक पुरुषों की मति के अनुसार एक प्रकार का भोग है ।

(३) संकल्प अर्थात् बिचार को भी यथा शक्ति बिषयों की ओर न जाने देना चाहिये. इन्द्रियों और मन को उत्तम मनोहर और पवित्र बातों में इतना लगाये रखना चाहिये, कि उन को दूसरी ओर जाने का अवकाश ही न मिलसके. सूक्ष्म दृष्टिवाले महात्मा बिषय के संकल्प को भी एक प्रकार का भोग कहते हैं ॥

(४) व्यायाम नित्य प्रति इतना किया जावे कि शरीर अवश्य करके दोनों बाहु भले प्रकार थक जावें ॥

(५) अपनी प्रकृति का ध्यान रखकर, अधिक गर्मी करनेवाली और खट्टी वस्तुएं न खाई जावें और अधिक गर्म दूध भी न पिया जावे ॥

(६) साधारण आहार शाक, दाल इत्यादि का स्वभाव डालना चाहिये, बलवर्धक और चिकनी चुपड़ी वस्तुएं बहुधा बहुत काल तक नहीं खाना चाहिये ॥

(७) अपनी श्रद्धा के अनुसार आठवें वा पन्द्रहवें दिन वा मही[illegible] व्रत करने का स्वभाव डालना चाहिये, इस से बीर्य की [illegible]ता दबी रहती है ॥

(८) अभ्यासिक महात्माओं को ढूंढ़कर उन का सत्संग करे, और जितना अधिक समय सत्संग में लगाया जासके, अच्छा है. चौवीस घंटों में से कम से कम एक घंटा अवश्य सत्संग में लगाना चाहिये, जिस से उस का प्रभाव वाकी तेईस घंटों तक बना रहे. यदि उत्तम सत्संग न मिलसके तो सच्चे महात्माओं के बनाये हुए धर्म संबंधी ग्रंथ वा विद्याओं के प्रकरण की पुस्तकें, जिन में नेष्ट बातें वा अपवित्र विचार नहीं, पढ़ने में कम से कम एक घंटा लगाना चाहिये; और जो २ उपदेश अपने अनुसार मिलें, उन पर सच्चे मन से चलना आरंभ कर देना चाहिये ॥

(९) यदि रहनगत वा उद्यम इत्यादि के कारण से ऊपर लिखे उपाय काम में न लाये जासकें, तो उस रहनगत को उचित रीति से बदलना चाहिये ॥

(१०) सब से बड़ा उपाय यह है, कि संतोष का स्वभाव डालना और उस को बढ़ाते रहना चाहिये—निदान एक साधारण दृष्टान्त इस बात का लिखा जाता है—अफीमची मनुष्य जब बंदिगृह में डाला जाता है, तो उचित और अनुचित उपाय काम में लाकर, उद्योग करता है, कि, किसी प्रकार से आफू मिले और निष्फलता की दशा में बहुत अप्रसन्न और बहुधा रोगी भी होजाता है—परन्तु अंत में परवश होजाने पर, संतोष और सहन करता है, जिस के कारण कुछ काल में उस का आफू खाने का स्वभाव छूट जाता है—इसी प्रकार जब कोई मनुष्य बिना कैद इत्यादि की आधीनता के केवल अपने दृढ़ विचार के ही बल से किसी अवगुण को छोड़ने और गुण को ग्रहण करने के लिये संतोष और सहन का स्वभाव डालता है, तो थोड़े ही समय में सफलता प्राप्त कर लेता है. धार्मिक पुरुष

को भी इसी प्रकार विषय रूपी शत्रु को सत्संग और विचार रूपी कोट में बंदी रखना चाहिये, थोड़े दिनों में सफलता प्राप्त होजावेगी केवल सच्चा और पक्का विचार होना चाहिये ॥

। चौथी शंका ।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य्य की अवस्थाएं नियत कीगई हैं, इसी प्रकार विषयी पुरुषों के स्वभाव को बदलने के लिये भी इस नियम में पद नियत किये जासके हैं वा नहीं ?

। समाधान ।

उत्तम अधिकारी को तो ऊपर लिखे नियम और उस के संबंधी रीतियों पर चलना चाहिये, और सम्पूर्ण मनुष्यों को उत्तम अधिकारी ही बनना चाहिये. जिन को बचपन से शारीरिक मानसिक और आत्मिक धर्म पालन करने का अवसर मिलेगा वे सुगमता से इस रीति पर चलकर लाभ उठासकेंगे, और वर्त्तमान समय के लोग जिन्हों ने इस नियम को अनजाने तोड़कर, स्वभाव डाल लिया हो उन को क्रम से सुधार करना चाहिये. उन के लिये नीचे लिखे अनुसार तीन पद नियत किये जा सके हैं ॥

(१) मध्यम अधिकारी को उद्योग करना चाहिये, कि महीने में दोबार से अधिक भोग न करे. गर्भस्थिति के चार महीने पीछे सर्वथा अलग रहे और उस समय तक अलग रहे जबतक बालक छः महीने का न होजावे ॥

(२) कनिष्ठ अधिकारी को उचितहै, कि महीने में तीन बार से अधिक भोग न करे. गर्भस्थिति के पांच महीने पीछे सर्वथा अलग रहे और बालक चार महीने का होजावे जबतक रुका रहे ॥

(३) अत्यन्त कनिष्ट अधिकारी को महीने में चार वार से अधिक भोग न करना चाहिये. गर्भस्थिति के छः महीने पीछे सर्वथा अलग रहे और बालक तीन महीने का होजावे तहांतक अवश्य रुका रहना चाहिये. इस से अधिक नियम तोड़ने को अधर्म समझना चाहिये. और उस रीति से जो संतति उत्पन्न होती है वह बहुधा शूद्र पद और चाकरी के लायक होती है और ऐसे ही काम करती है ॥

। पांचवीं शंका ।

इस प्रकार का निर्णय वर्तमान समय की धर्म संबंधी पुस्तकों में से किसी मुख्य पुस्तक में कम पाया जाता है ॥

। समाधान ।

जब शांति और स्वतंत्रता, विद्या का प्रचार और उत्तम उपदेशकों का प्रागट्य होता है, तो अविद्या रूपी शत्रु और उस की दुष्ट मर्यादा रूपी सेना को नष्ट करने के लिये इस प्रकार का निर्णय करना आवश्यक होता है, क्योंकि ऐसे निर्णय से धर्म की उन्नति होकर, मनुष्य मात्र को लाभ पहुंचता है.दीर्घ दृष्टि वाले महात्मा सदैव वर्तमान कुरीतियों पर बातचीत करना और उन के दूर करने का उपाय बतलाना सच्चा परोपकार समझते रहे है, क्योंकि बुराई को छिपाने और उस से आंख चुराने से, वह जड़ पकड़ती है और प्रगट करने और उस पर बातचीत करने से, वह निर्बल होकर नष्ट होजाती है. प्राचीन समय के महात्मा इस प्रकार का उपदेश यथा योग्य बहुधा मुख द्वारा ही किया करते थे, और संकेत से पुस्तकों में भी लिखते थे, वैसे महात्मा रहे नहीं और उन की पुस्तकें पढ़ने का प्रचार नहीं रहा, जिस का फल. यह है, कि बहुधा

बड़े मनुष्यों के बालक दुराचारी और अज्ञान नौकरों के द्वारा और कंगालों के बालक दूसरे अपने बराबरी वाले दुराचारी बालकों के द्वारा. बहुतही छोटी अवस्था में ब्रह्मचर्य्य की महिमा न जानतेहुए, वीर्य को नष्ट करने लगते हैं, और फिर जन्म भर अपमान से खिसयाने होकर पछताते रहते हैं ॥

। बालक का उत्पन्नहोना ।

पूर्ण गर्भाधान रीति से जो संतति उत्पन्न होती है, उस के प्रसव के समय जचा को बहुत कम कष्ट होता है, और पीछे से पालने में भी बहुत सुगमता होती है, क्योंकि वह संतान आदि से ही आरोग्य, बुद्धिमान् और बलवान होती है ॥

गर्भाधान रीति को उलंघन करने से, जो संतति होती है,उस के प्रसव के समय बड़ा कष्ट और पालने में अति क्लेश होताहै क्योंकि वह संतान आदि से ही जन्म रोगी, और निर्बुद्धि होतीहै. और उस रीति के विरुद्ध जितने कर्म किये जाते हैं उतना ही कष्ट और क्लेश अधिक होताहै ॥

बालक का जन्म शुद्ध स्थान में होना चाहिये, जो अधिक हवादार ठंडा वा गीला न हो–परन्तु ऐसा बंद भी न हो, कि जिस में कोई भी छिद्र न हों जिन में होकर प्रकाश वा निर्मल हवा आसके, और धुवां वा खराब वायु निकल सके. तंग और अन्धेरे मकान में कोयलों के बहुत जलाने और उस में भीड़ और शोर का होना और फिर बहुत काल तक उस को मैला रखना जचा और बच्चे दोनों की आरोग्यता को हानिकारक है. ऐसे समय में, यदि जचा वा बच्चे को कोई मस्तक का रोग वा क्षोभ होजावे, जैसा कि बहुधा होजाता है, तो समझदार वैद्य के द्वारा उपाय कराना उचित है. जंत्र मंत्र में वृथा समय व्यतीत न करना चाहिये ॥

। पुत्र और पुत्री दोनों को एक दृष्टि से देखना चाहिये ।

जब बालक का जन्म हो, तो चाहे वह पुत्र हो या पुत्री, दोनों को एक सा प्यार और एक सा लालन पालन करना उचित है. यह नहीं चाहिये, कि पुत्र हो तो अत्यन्त प्रसन्नता प्रगट की जावे, और पुत्री हो तो शोक; और उस निरपराध बच्ची और उस की माता को तिरस्कार और तुच्छ दृष्टि से देखना आरंभ किया जावे ॥

। कन्याओं की बड़ाई और उन की अवस्था ।

एक महात्मा का वाक्य है, कि जिस देश जाति और कुल में, जो कन्याओं को प्रीति और आदर पूर्वक देखते हैं, और उन के विद्याभ्यास और पोषण में पूरा परिश्रम उठाया करते हैं, उन को ही संसार के सम्पूर्ण सुख प्राप्त होते हैं यह महात्मा कन्याओं की अवस्था के चार विभाग करके, उन के नाम कन्या-धर्म–स्त्री धर्म–मातृ धर्म और विधवा धर्म रखते हैं, जिन का वर्णन इस स्थान में करना उचित जान पड़ता है ॥

(१) कन्या धर्म–जन्म से विवाह तक कन्या धर्म रहता है. इस अवस्था में कन्या को देवी रूप समझकर, अति प्रीति और सत्कार से उस का पालन करना चाहिये, और समय की चाल ढाल के अनुसार; अत्यन्त परिश्रम और उद्योग से उस को विद्या पढ़ाना चाहिये. कन्या को भी इस अवस्था में माता पिता और अध्यापका की इच्छानुसार चलकर, उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य्य सेवन करना चाहिये ॥

(२) स्त्री धर्म–विवाह होने से मृत्यु पर्यंत यह धर्म रहता है, इसी के अन्तर्गत मातृ धर्म और विधवा धर्म भी उत्पन्न हो-जाते हैं. इस अवस्था में स्त्री को माता, पिता और अध्यापका

के स्थान में अपने पति को अपना सच्चा स्वामी समझकर, उस की आज्ञा पालन करते हुए, अपने पतिव्रत धर्म को पालन करना चाहिये. और अति उत्तम, सूर्मा, और बलवान, धर्मात्मा और बुद्धिमान सन्तान उत्पन्न करने चाहिये ॥

(३) मातृ धर्म–इस अवस्था में स्त्री धर्म के अतिरिक्त बालकों को उत्तम शिक्षा देना भी, माता का मुख्य धर्म है, क्यों कि जैसे आदि में ही वृक्ष की शाखा जिस ओर झुकादीजावे, झुक जाती है इसी प्रकार बाल्यावस्था में ही, उत्तम धर्म शिक्षा देने से बच्चे, सच्चे और पूरे धार्मिक बन सक्ते हैं और इसी हेतु माता को एक सौ (१००) अध्यापकों के तुल्य कहा गया है; जितने धार्मिक पुरुष और बड़े नामी मनुष्य हुए हैं उन्हों ने बहुधा अपनी माता से ही उत्तम शिक्षा पाई थी ॥

(४) विधवा धर्म–जब पति मरजाता है, तो यह धर्म प्रारंभ होता है; इस अवस्था में छोटे बच्चे हों तो, उन को पालना मुख्य धर्म समझना चाहियें, और नहीं तो, अपने जन्म को धर्म के जानने, पालन करने, और प्रचार करने के लिये, बलिप्रदान कर देना चाहिये ॥

। बालकों की शिक्षा ।

पुत्र और पुत्रियों को सम दृष्टि से देखते हुए, माता पिता को उन के नाम मुखोचार्य, उत्तम और अर्थ सहित रखना चाहिये, क्योंकि जैसा नाम होता है, उस का प्रभाव भी थोड़ा वा बहुत मनुष्य के चाल चलन पर, अवश्य पड़ता है. उन को हठ करना सिखलाना, वा अनुचित लाड़ और बुरी गालियां देना सिखलाना, या बारंबार धमकाना और डराना, कदापि नहीं चाहिये ॥

बालकों के सन्मुख माता पिता और दूसरे संबंधियों को, अपना चाल चलन उत्तम रखना चाहिये, क्योंकि उन में अनुकरणता अर्थात् दूसरों को करते हुए देखकर, वैसा ही करने की शक्ति अधिक होती है. वे जैसा औरों को करते देखते हैं वैसा ही करने का उद्योग करते हैं और करने लगते हैं ॥

गाली गिलोच, अयोग्य पुनरुक्ति, बुरी प्रकृति–जैसे मक्खी इत्यादि जीवों को पकड़ना और मारना, नाक में उंगली डालकर मैल निकालना, शरीर के मुख्य २ स्थानों गर्दन इत्यादि को हिलाना वा खुजाते रहना, जहां बैठना वहां तृण तोड़कर वा पत्रों को फाड़कर कचरा फैलाना, पृथ्वीपर रेखा इत्यादि खेंचते रहना, केशों को रूखा और उलझा हुआ रखना दांतों को कुरेदते रहना, वा कानों का मैल निकालते रहना, थूकते वा डकारते रहना, उंगलियों को कटकाना, इत्यादि कर्मों से स्वयं भी बचना और बालकों को भी बचाना चाहिये. जब बच्चों से कोई काम करने को कहाजावे, तो विचार करलेना चाहिये, कि वे उस काम को करने की योग्यता और शक्ति रखते हैं वा नहीं. जिस को वे न कर सक्ते हों, उस काम के करने के लिये उन को कदापि नहीं कहना चाहिये. जब ऐसा काम, जिस को वे कर सक्ते हों, कराया जावे और वे उस को न करें, अथवा उत्तमता से न करें, तो उचित ताड़ना करके वह काम करालेना चाहिये इस से आज्ञाकारी होने का स्वभाव सीखेंगे, और आज्ञा उलंघन करने की बुरी प्रकृति से बचे रहेंगे. यदि अजान कोई भूल बच्चे से होजावे, तो मारपीट नहीं करना चाहिये ॥

यदि बालक किसी अनुचित बात पर हठ करे, तो धमका कर वा धोका देकर, उस को भुलाना और हठ न करने देने के स्थान में उस को नर्मी और भीति के साथ स्पष्ट और

उचित रीति से कारण बतलाकर, उस की हठ नहीं करनेदेना चाहिये ॥

सब से उत्तम शिक्षा जो बालकों को देनी चाहिये वह यह है, कि वे सम्पूर्ण अवसरों पर सच बोलने का उद्योग करें, और झूठ बोलने को महा पाप समझकर, उस से डरें. उन से सत्यव्रत धारण करने का स्वभाव डलवावें-अर्थात् आठवें वा पन्द्रहवें दिन एक दिन और रातमें पक्का प्रण करके वे सच ही बोलें. परीक्षा के समय सच बोलनेवाले बालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिये. जब बालक पांच वर्ष की अवस्था से बड़ा होजावे, तो धीरे २ सम्पूर्ण धर्म्मों-शारीरिक, मानसिक आदि की शिक्षा देनी चाहिये ॥

प्रश्न-बालकों को परमात्मा का नाम जपना और उस की प्रार्थना करने की शिक्षा नहीं बतलाई गई, क्या उन को बचपन से ही प्रार्थना इत्यादि में लगाना, उन की आगामी अवस्था में धार्मिक बनाने के लिये, लाभदायक नहीं है ?

उत्तर-बालकों के लिये, शारीरिक और मानसिक धर्म का पालन करना ही, अति आवश्यक समझना चाहिये. जैसे २ वे शारीरिक धर्म के मुख्य साधन व्यायाम के द्वारा, उत्तम विद्या सीखते जावेंगे, वैसे ही उन की आत्मिक शक्तियां स्वयं भले प्रकार जागनी आरंभ होंगी, और उस समय वे परमात्मा की अत्यन्त सूक्ष्म और निराकार शक्ति को जानने, और आदर करने के योग्य होवेंगे. यदि आत्मिक शक्तियों के जागने से पहिले तोते की भांति उन को परमात्मा का नाम और प्रार्थना बतलाये जावेंगे, और वे उन का अनुभव किये बिना रटेंगे, तो उन को सत्य प्रेम नहीं आसकेगा. वा स्वाभा-

विक समय से पहिले आत्मिक शक्तियां वहुत दुर्बलता के साथ उत्पन्न होनी, आरंभ होंगी, और शीघ्र ही कुम्हिला जावेंगी ॥

। माता पिता के साथ वालकों का धर्म ।

जैसे वालकों को उत्तम शिक्षा देना माता पिता और अध्यापक का धर्म है, इसी प्रकार वालकों के धर्म भी हैं, जो उन को माता पिता के साथ वर्तने चाहिये. जिन में से मुख्य ये हैं, कि बालक सदैव उन के साथ सच्ची प्रीति और पूर्ण आदर के साथ बर्ताव करें, और वृद्धावस्था में उन का पोषण और आज्ञा, पालन करते रहें. कन्याओं को अपने माता पिता की भांति सास श्वसुर इत्यादि का भी, आदर और सेवा करना, अपना धर्म समझना चाहिये और सास इत्यादि को भी उचित है, कि अपनी वहुओं को वेटियों के समान प्रीति और सहानुभवता का बर्ताव करना चाहिये ॥

। प्रेम गृहस्थ धर्म का मुख्य अंग है ।

यह संक्षेप के साथ गृहस्थ धर्म के कर्म लिखे गये हैं, इन सब को प्रेम की चाशनी के साथ काम में लाना चाहिये. जैसे शारीरिक धर्म में व्यायाम, मानसिक धर्म में ब्रह्मचर्य्य, और आत्मिक धर्म में उपासना, मुख्य साधन हैं, इसी प्रकार गृहस्थ धर्म में, प्रेम को समझना चाहिये. प्रेम से प्रयोजन सच्ची प्रीति से है जहां सच्चा प्रेम होता है, वहां किसी प्रकार की खेंचाखेंची और रागद्वेष नहीं होता है यदि दैवाधीन हो भी जावे, तो प्रेम की रज्जु ऐसी दृढ़ है, कि उस को कोई विपरीत वायु, चाहे कैसे ही वेग से चलती हो, कदापि नहीं तोड़ सक्ती. जैसे छोटे २ परमाणु के मिलने से पृथ्वी बनी है और सम्पूर्ण काम नियम

पूर्वक कर रही है, इसी प्रकार से कई मनुष्यों का मेल होकर गृहस्थ बनता है और प्रेम के आकर्षण से सारे सुख प्राप्त होते हैं एक कवि का वाक्य है,–

जहँ है प्रेम सत्य अरु न्याय,
वहां विघ्न कोई नहि आय ॥

। प्रथम विभाग ।

। पांचवां अध्याय ।

। सामाजिक धर्म ।

। सामाजिक धर्म की व्याख्या ।

गृहस्थ धर्म की सम्पूर्ण जातियों के योग्य और बहुदर्शी मनुष्यों का एकत्र होकर, अपने सब के स्वार्थ और लाभ पर सोच विचार करके जो२ नियम ठहराते हैं उस को सामाजिक धर्म कहते हैं ॥

शारीरिक धर्म पालन करने से शरीर की आरोग्यता उत्तम होती है परन्तु उस से अधिक आवश्यक मानसिक धर्म है जिस के द्वारा मन और इन्द्रियां नियम में रहती हैं. मानसिक धर्म से अधिक आवश्यक आत्मिक धर्म है उस से आत्मा की जो शरीर का स्वामी है, असंख्य शक्तियां यथायोग्य प्रगट होती हैं. इन तीनों धर्मों का प्रत्येक मनुष्य की व्यक्ति से संबंध है और इन तीनों धर्मों को गृहस्थ धर्म से सहारा मिलता है, जिस में ऊपर लिखे तीनों धर्मों को पालन करनेवाले कई मनुष्य होते हैं और इसी हेतु गृहस्थ धर्म पहिले तीनों धर्मों से अधिक आवश्यक है और गृहस्थ धर्म की उन्नति सामाजिक धर्म के द्वारा भले प्रकार होसक्ती है, इस कारण सामाजिक धर्म सांसारिक सम्पूर्ण धर्मों से अधिक श्रेष्ठ और आवश्यक समझकर प्रत्येक मनुष्य को इस धर्म की उन्नति में सच्चे मन से उद्योग करना चाहिये. जिस जाति में सामाजिक धर्म भले प्रकार पालन

किया जाता है उस जाति में यदि कोई २ मनुष्य बिपरीत भी चलता है तो विशेष हानि नहीं होती और जिस जाति में सामाजिक धर्म पालन करने का उत्तम प्रबंध नहीं होता है उस जाति में प्रत्येक चाहे कितने ही योग्य और भले मनुष्य न वे अपने तईं और अपनी जाति को जैसा चाहिये वैसा लाभ नहीं पहुंचा सकें ॥

जिस प्रकार सामाजिक धर्म सम्पूर्ण लौकिक धर्मों में अत्यावश्यक है उसी प्रकार उस की वृद्धि के लिये अति धार्मिक, विद्वान्, और बुद्धिमान् पुरुषों की आवश्यकता है उन बुद्धिमान् पुरुषों को उचित है कि सोच विचार के साथ निष्पक्ष और स्वार्थरहित होकर अहर्निश जाति उन्नति की साधारण रीतियां सोचते रहें, यह नहीं कि थोड़े से अनभिज्ञ युवा अवस्थावाले लौकिक लालसाओं से भरे हुए किसी समय में एकत्र होकर व्याख्यान देलें, वा नेत्र मूंद कर तोते की भांति याद की हुई प्रार्थना करलें और समझलें कि यही सामाजिक उन्नति है,

सामाजिक उन्नति के लिये देश के सम्पूर्ण धार्म्मिक, विद्वान्, बुद्धिमान्, विचक्षण, धनाढ्य, कुलप्रसूत, प्रतिष्ठित, वृद्ध सज्जनों और प्रत्येक प्रकार के गुणवान् पुरुषों में से एक पूर्ण संख्या छांट लेनी उचित है और यह छांट प्रत्येक वर्ष वा तीसरे वर्ष वा पांचवें वर्ष फिर से होनी चाहिये ॥

। सामाजिक उन्नति की सफलता और बृद्धि की रीतियां ।

सामाजिक उन्नति के लिये जितने साधन सहित विद्वान् सच्चे उत्साही और पूर्ण पराक्रमी अधिक एकत्र होते हैं उतनी ही अधिक सफलता होती जाती है ॥

सामाजिक उन्नति की सफलता के हेतु यह भी आवश्यक समझना चाहिये कि एक पब्लिक् ओपिनियन् अर्थात् सर्वजनिक लोकमत स्थापित किया जावे । पब्लिक् ओपिनियन् जितनी बलवान् की जावेगी और उस का जितना आदर किया जावेगा उतनी ही भले प्रकार से सामाजिक उन्नति होसकेगी और इस के द्वारा असंख्य लाभ प्राप्त होंगे ॥

पब्लिक् ओपिनियन् को दृढ़ करने की साधारण रीति यह है कि जब कोई मनुष्य, वह, चाहे कैसे ही छोटे पद का क्यों न हो, कोई उत्तम काम करे तो उस का पूरा सन्मान किया जावे. इस से औरों को भी वैसे ही कार्य करने की वाञ्छा होगी और जब कोई मनुष्य, वह, चाहे कैसा ही बड़ा क्यों न हो, कोई अनुचित काम करे तो तुरंत उस के लिये कोई ऐसा प्रबंध सोचा जावे कि जो उस के धन, अधिकार, पहुंच इत्यादि के प्रभाव पर भी उस को लज्जित करनेवाला हो—परन्तु वह प्रबंध ऐसा भी न हो जिस से वह पुरुष सदैव के लिये निर्लज्ज होजावे. इस प्रकार प्रारंभ में ही पकड़ होने से प्रत्येक प्रतिष्ठित मनुष्य को भी भय रहेगा और वह चाहे जितने बड़े पदवाला क्यों न हो सामाजिक उन्नति के नियमों के बिरुद्ध काम करने का साहस न करसकेगा और सारी जाति में कोई बुराई न फैल सकेगी ॥

यदि प्रारंभ में बड़े मनुष्यों के अनुचित कामों से यह समझकर आंख चुराई जाती है कि सर्व लोगों के सामने उन की बुराई होगी वा वे बड़े मनुष्य अलग होजावेंगे तो सामाजिक उन्नति को हानि होगी और छोटे पदवालों की उत्तम सेवाओं से यह विचार कर आंख फेर लीजाती है कि उन का अधिक नाम होने से वे प्रतिष्ठित पुरुषों से बढ़ जावेंगे जिस से

ये प्रतिष्ठित पुरुष अप्रसन्न होंगे तो उत्तम सेवा करनेवालों का मन मुरझा जाता है और उन का निरादर देख कर दूसरे मनुष्य भी निरुत्साही होजाते हैं, वृद्धि नहीं होने पाती, सत् पराक्रम नष्ट होजाता है और पब्लिक् ओपिनियन् निर्बल और निकम्मी होजाती है ।

सामाजिक उन्नति में अत्यन्त गुणवान् और दीर्घ दृष्टि मनुष्य होने चाहिये और प्रत्येक व्यवहार में उन की सत्यता, न्याय, और निष्पक्षता के साथ वाद विवाद करना चाहिये-परन्तु जब वहु सम्मति से कोई बात स्थापित होजावे तो उस को, चाहे वह व्यवस्था उन के मत के विरुद्ध भी हो, तो भी मान लेना उचित है-निदान अपनी सम्मति निर्भयता से देना, औरों की सम्मति को सोच विचार और धीरज से सुनना, पंचायत की व्यवस्था को मान लेना पब्लिक् ओपिनियन् के नाप को बढ़ाते रहना, उस को सदैव दृढ़ करना और उस का आदर करते रहना, यह सब बातें सामाजिक उन्नति की सफलता और वृद्धि की रीतें हैं ।

जैसे शरीर रूपी नगर में आत्मा रूपी राजा वीर्य के द्वारा भले प्रकार राज्य करसक्ता है इसी प्रकार से सामाजिक उन्नति रूपी वृक्ष को धन रूपी जल से जितना अधिक सींचा जाता है उतना ही दृढ़ और हराभरा होकर अधिक फलदायक होता है ॥

। जाति व्यवहार को धर्म के अनुसार नियत करना ।

उन मनुष्यों का, जिन के सिर पर सामाजिक उन्नति का भार है, यह धर्म है कि जाति की सम्पूर्ण प्रचलित रीतियों का सोच विचार करते रहें और जो आवश्यक हो तो उन में उचित अदला बदली भी करें-यदि किसी पुष्प वाटिका में सदैव काट छांट न होती रहे तो वह भयानक वन की भांति होजाती है

इसी प्रकार जाति संबंधी रीतियों में भी समय २ पर अदला बदली न होती रहें तो वे लाभ के स्थान में हानिकारक होजाती हैं। जब से धर्म का मुख्य अंग राज्यनीति प्रचलित हुई है, उस में बराबर अदला बदली होती रहती है और तभी वह माननीय रहसक्ती है तो धर्म के दूसरे अंगों में भी जो रीतियों के स्वरूप में हैं परिवर्तन होना आवश्यक है ॥

। जन्म, बिवाह और मृत्यु संबंधी नियम बनाना ।

ये रीतियां भी यद्यपि देशाचार के अंतर्गत हैं तो भी अति आवश्यक होने के कारण इन का पृथक् वर्णन करना उचित समझा गया है. इन नियमों में यह एक बात ध्यान में रहना चाहिये कि रुपया इतना कम व्यय हो कि धनाढ्य और कंगाल सम्पूर्ण बराबरी और सहज से देसकें—हां धनाढ्यों को उत्साह दिलाना चाहिये कि जाति संबंधी कार्यों में सहायता देवें। जन्म के समय की रीतियां ऐसी न हों जिन के अनुसार चलने में बच्चे या जच्चा की आरोग्यता बिगड़ने का भय हो—विरुद्ध इस के उन से लाभ होने की आशा की जासके। बिवाह की रीतियां ऐसी होनी चाहिये जिन से स्त्री, पुरुष और उन के सम्पूर्ण संबंधियों में प्रेम और प्रीति बढ़े और उन को करते समय सच्चा आनंद प्राप्त हो। मृत्यु के समय की रीतियां भी सीधी और सुगम होनी चाहिये जिन से मृतक शरीर के तत्व अपने २ भंडार में शीघ्र मिलजावें और मृतक शरीर के संबंधियों को उन रीतियों पर चलने में ऐसी तितिक्षा भी न उठानी पड़े जिस से वे रोगी होजावें ॥

। मेलों की वृद्धि और सुख का सामान एकत्र करना ।

बड़े २ महात्मा और सत् पुरुषों के स्मरण में जिन्हों ने

धर्म और सुख के फैलाने का प्रयत्न किया हो, स्मारक की रीति पर, मेले स्थापित करने चाहिये और विद्यमान मेलों को उपयोगी करने का उद्योग करना चाहिये ॥

। विद्या के प्रचार का उपाय करना ।

परा और अपरा अर्थात् सांसारिक और आत्मिक विद्याओं की साथ २ वृद्धि होने का प्रयत्न भी उन मनुष्यों को करना उचित है जिन के कंधों पर सामाजिक उन्नति का भार है. सांसारिक विद्याओं की वृद्धि के लिये देशी ग्रंथकरता, देशी गीत, देशी पाठशालाएं और देशी यूनीवर्सिटी अर्थात् विश्वविद्यालय स्थापन करना और आत्मिक विद्या की उन्नति के लिये उत्तम उपदेशक और उपदेशिका एकत्र करना आवश्यक है और धर्म की महिमा, उस के मुख्य २ अंगों के प्रचार की रीतियां और लाभ, सर्व साधारण बोली में छोटी २ पुस्तकों के रूप मे छपवाना चाहिये ।

। भक्ति की सहज और लाभदायक रीतियां प्रचलित करना ।

प्रत्येक मनुष्य की योग्यता, बुद्धि, और विचार पृथक्२ होते है और सम्पूर्ण अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार परमात्मा की भक्ति करना चाहते है—निदान उन मनुष्यों की व्यवस्था और मानसिक उन्नति का ध्यान रखकर स्थूल से सूक्ष्म तक क्रम से भक्ति की रीतियां नियत करनी चाहिये वास्तव में परमात्मा की भक्ति के लिये सच्ची प्रीति और शुद्ध अन्त:करण की आवश्यकता है और इन दोनों बातों को न्यून और अधिक बुद्धिवाले विद्वान और अपठित सम्पूर्ण मनुष्य उद्योगसे प्राप्त कर सकतेहै—परन्तु मनुष्य में एक ऐसी प्रकृति भी है कि वह अपनी ही

भक्ति की रीति को उत्तम समझता है और दूसरों की रीतियों को बुरी-इसी कारण से हठवादी और फूट उत्पन्न होते हैं और यथार्थ बातों का आदर करनेवाले और मिलाप चाहनेवाले उस हठवादी और फूट की अग्नि से परे रहने के हेतु बहुधा धर्म की ओर से अरुचि प्रकाश करदेतेहैं-निदान सामाजिक उन्नति के ज़िम्मेवार मनुष्यों का उद्योग होना चाहिये कि, पृथक् २ भक्ति की रीतियां स्थापित करें और सम्पूर्ण मनुष्यों को नियमों पर चलावें-जैसे कि असंख्य ब्रह्माण्ड पृथ्वी, सूर्य और तारागण इत्यादि अपनी २ कक्षाओं में घूमते हुए एक दूसरे से नहीं टकराते इसी प्रकार से नाना भांति के मत मतान्तरवाले मनुष्यों को अपनी २ उन्नति में लगे रखकर दूसरों से झगड़ा और क्लेश करने से पृथक् रखना सामाजिक उन्नति के उत्तरदाता पुरुषों का काम है-निदान जैसे सामाजिक धर्म सब संसार के धर्मों में श्रेष्ठ है उसी प्रकार उस के कर्म भी अनेक हैं-जैसे सम्पूर्ण व्यापारों की क्रम से उन्नति का प्रबंध, आरोग्यता बनी रखने के हेतु प्रबंध, देश के बचाव और न्याय के प्रबंध इत्यादि और ये कर्म प्रजा में से केवल योग्य और उत्कृष्ट पुरुषों के हाथ में रहने चाहियें और उन योग्य पुरुषों को उचित है कि आवश्यकता के अनुसार यथाशक्ति इन कर्मों का उत्तम प्रबंध करें और उन प्रबंधों के अनुसार आप भी चलें । भारत वर्ष में सामाजिक उन्नति समय २ में किस प्रकार से होती रही और इस समय उस की क्या दशा है इस का संक्षेप वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है ॥

संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति वेदोक्त मत ।

भरत खंड के प्राचीन समय में ऊपर वर्णन किये हुए धर्म

की रक्षा और उन्नति और देशाचार के लिये सोच विचार करने के हेतु अनेक ब्राह्मण तत्पर थे मनुष्यों की अलग २ व्यवस्था और मानसिक उन्नति का ध्यान रखकर उन के लिये कर्मकांड, उपासना, ज्ञान और विज्ञान नाम से स्थूल से सूक्ष्म तक क्रम से वृद्धि के हेतु रीतियां स्थापित की गईं थीं; वर्ण और आश्रम बनाये गये थे; षोड़श संस्कार और पंच महा यज्ञ का प्रचार किया गया था ॥

जब तक यह काम ऐसे आचारियों के हाथ में रहा जो अपने सदुपदेश के अनुसार आप भी चलते थे तब तक बहुत सफलता के साथ उत्तम उन्नति होती रही, इस सुख के समय में मुख्य २ स्थानों पर, जो धर्म के केन्द्र समझे जाते थे, मेले स्थापित कियेगये थे, जिन में विद्वान् ब्राह्मण एकत्र होकर सामाजिक उन्नति की आवश्यकताओं का विचार किया करते थे, प्रत्येक विद्वान् अपना २ गुण प्रकाश किया करता था, शारीरिक व्यायाम के दंगल और आत्मिक मल्लयुद्धों के अखाड़ोंमें शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के लिये साधारण रीतियां वतलाई जाती थीं, सब स्थानों के निपजे हुए और हाथ के बनाये हुए पदार्थों की लेनदेन होती थी, प्रत्येक मनुष्य इन पवित्र मेलों में अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार लाभ उठाता था ॥

बड़े २ मेलों कुंभ इत्यादि पर और कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, काशी आदि स्थानों में हिन्दुस्थान मात्र से विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्री, और राजा लोग एकत्र होते थे, सम्पूर्ण की सम्मति से एक महात्मा को व्यास पदवी देकर सभापति करते थे और जिन २ बातों का वहां निर्णय होजाता था उन का एकसा

प्रचार सारे हिन्दुस्थान में किया जाताथा जिस के हेतु राजा महाराजा, सेठ और साहूकार वहुत दान दिया करतेथे ॥

इन सब बातों के कारण ही भरतखंड के मनुष्यों को परम पद सामर्थ्य और सुख के पदार्थ बहुत काल तक मिलते रहे. बड़े २ विद्वान् और योद्धा पुरुष उत्पन्न हुए, जिन का प्रताप संपूर्ण पृथ्वी पर फैला. वादरायण ऋषि जिन का प्रसिद्ध नाम वेदव्यासजी है और उन के पुत्र शुकदेवजी जैसे महात्मा पाताल देश और हरि वर्ष देश अर्थात् एमेरिका और यूरुप तक धर्म का उपदेश करने के लिये गये. महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ के समय अर्जुन भी पाताल को पधारे थे ॥

आयुर्वेद के जाननेवाले धन्वन्तरी, अश्विनीकुमार, सुश्रुत और चरक ने धातुओं में अनेक बिष और पत्थरों के गुण निश्चय किये. बनस्पति में प्रत्येक जड़ी बूंटी का गुण जानने का उद्योग किया गया. जानवरों के मल का गुण जानकर उस से लाभ उठाया. गऊ के गोवर और कबूतर की बीट इत्यादि के गुण वर्णन करने से प्रमाण होता है कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये पशुओं के मल के गुण निश्चय करने में और उस से लाभ उठाने में किसी प्रकार की हठधर्मी वा घृणा नहीं की जाती थी. उस समय में आयुर्वेद की विद्या को, आवश्यक समझकर, ऐसा प्रचलित किया गया था कि प्रत्येक मनुष्य मुख्य करके कुलपाति आयुर्वेद के साधारण तत्व और अत्यावश्यक औषधियों का बनाना और उन को काम में लाना जानता था, जिस का चिन्ह बहुत से कुलों में मुख्य करके ग्राम निवासी कुलों में अब भी दिखाई देता है ॥

धनुर्बिद्या भी उस समय में बहुत उन्नति पर थी. महाराजा रामचंद्रजी का बृत्तान्त जो रामायण में लिखा है और

जो स्मरण के हेतु प्रति वर्ष रामलीला नामी मेले में हिन्दु-
स्थान के बहुत स्थानों में इस समय तक भी दिखलाया जाता
है और श्रीकृष्णजी और उन के योद्धा भक्त अर्जुन और
भीष्म पितामह आदि के युद्ध का वर्णन द्रोण आदि आचार्यों
के युद्ध संबंधी शिक्षा देने की रीतियां, जिन का वृत्तान्त बहुधा
महाभारत में आता है, प्रमाण करते हैं कि भरतखंड के
ऋषियों और वीर पुरुषों ने धनुर्विद्या और उस की
शाखा व्यूहरचना, अग्नि विद्या और बाण विद्या आदि
के भेद को भले प्रकार समझ कर उस से अत्यन्त लाभ उठा-
याथा. उस समय बाण इत्यादि ऐसे २ शस्त्र युद्ध के काम में
लाये जातेथे जो शत्रु की सेना के चारों ओर विषवाली वायु
इत्यादि फैला कर सम्पूर्ण सेना को अचेत करदेतेथे और इस
व्यवस्था में उन को अपने बश में करलेते थे. ऐसा करने से
मारकूट बिना ही काम निकल जाता था। कृषि विद्या अर्थात्
खेती की विद्या में भी बहुत उन्नति के चिन्ह दीख पड़ते हैं—
जैसे सम्पूर्ण पशुओं में से बैल को खेती के लिये अत्युत्तम
और उपयोगी समझकर छांटना जो अपने परिश्रम से उत्पन्न
हुए पदार्थों की बचत अर्थात् भूसे इत्यादि से ही अपना
ता है और इस के बंश की वृद्धि के हेतु धर्मानुसार
षभ को सांड बनाने की रीति प्रचलित करदेना
दिखलाई देते हैं ॥
ल्मीकिजी और उन की बनाई हुई प्रसिद्ध पुस्तक
विख्यात है. ज्योतिष विद्या में आर्य
विद्या में नारद संगीत उस समय की
ी हैं. ब्रह्म विद्या में अनेक उपनिषद
क और योग विद्यामें पातञ्जल सूत्र

इत्यादि पुस्तकें और असंख्य इतिहास उस समय की उन्नति को भले प्रकार प्रकाश कर रही हैं महाभारत के युद्ध के समय व्यासजी वा संजय को दिव्य दृष्टि की विद्या सिखला देना जिस के द्वारा अपने नेत्रोंसे देखा हुआ कुरुक्षेत्र के युद्ध का जैसा का तैसा वृत्तान्त कौरवों के प्रत्येक सेनापति के मारे जाने पर हस्तिनापुर में, जो दिल्ली के पास है आकर धृतराष्ट्र को सुनाया जिस का वर्णन कई पुस्तकों में है ॥

राजनीति की उन्नति के प्रमाण भी मिलते हैं—महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उसके आधीन राजाओं का दूर २ से आना, उसके राज्य की वृद्धि का चिन्ह है. राजनीति के नियम भी अति उत्तम नियत किये हुए थे, जिस के कारण प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता से अपनी और अपने देश की उन्नति में लगा हुआथा प्रत्येक गांव, पुर और नगर में उसी बस्ती के योग्य पुरुषों में से उन्हीं की इच्छानुसार पूर्ण संख्या छांट कर पंच बनाया जाता था, जो सम्पूर्ण भांति से अपने स्थान की रक्षा और उन्नति के ज़िम्मेवार समझे जाते थे. पंचों के और उन के द्वारा प्रजा के मत का ऐसा मान किया जाताथा और वे ऐसे आदर की दृष्टि से देखे जाते थे कि, इस समय तक लौकिक में "पंचों में परमेश्वर" की कहावत चली आती है ॥

ऊपर लिखी उन्नतियां केवल इसी कारण से हो रहीथीं कि सम्पूर्ण मनुष्यों को नियम में रखने और शान्ति को बने रखने के हेतु ऐसे प्रबल पुरुषों का समूह, कि जो नियत नियमों पर आप भी चलतेथे, रात दिन सामाजिक उन्नति के काम को अति उत्साह और निष्पक्षता से किया करताथा; जिन पर सर्व साधारण को इतना विश्वास और भरोसा था कि,

वे धर्मभाव से उन के सदुपदेश को माननीय समझते थे, साथ ही इस के सचाई का बीज प्रत्येक मनुष्य के मन में ऐसा बोयागयाथा कि, वे स्वाभाविक ही सच बोला करतेथे और झूठ को महा पाप समझकर कभी स्वप्न में भी उस का चिन्तन नहीं करतेथे. यदि किसी मनुष्य का झूठ बोलना परस्पर के वर्ताव में वा सामाजिक वर्ताव में वा राजसभा अर्थात् कचहरी इत्यादि में जानाजाता था तो वह महा पापी समझा जाताथा. माता पिता उस को कुपुत्र कहते थे, स्त्री उस का साथ छोड़ने को उद्यत होजाती थी, सम्पूर्ण संबंधी और समाज की दृष्टि में वह तुच्छ होजाताथा. ऐसे ही कारणों से प्रत्येक मनुष्य मन बचन और कर्म से सत्य का पालन करता था और सत्य के द्वारा ही सारी वृद्धि के काम चल रहेथे ॥

जबतक पब्लिक् ओपिनियन् अर्थात् सर्व साधारण की सम्मति दृढ़ रही और सामाजिक उन्नति का काम ऐसे ब्राह्मणों के हाथ में रहा जो कर्मभ्रष्ट न थे तबतक काम ठीक चलता रहा—परन्तु धीरे २ यह अधिकार वापोती होगया तब साधारण रीति से उन की विद्या और उत्साह कम होते गये और जैसे २ वे धर्म के अगुआ पीढ़ी दर पीढ़ी अयोग्य होते गये वैसे ही वे लोग अपनी प्रतिष्ठा बनीरखने को समय २ पर ऐसे उपाय रचते रहे कि जिस से सर्व साधारण मनुष्य अपठित और मत मतान्तर के फंदे में फँसे हुए उन के वश में रहें ॥

कुंभ इत्यादि मेलों के अवसर पर सामाजिक व्यवहारों पर ध्यान देने और उन की उन्नति करने के स्थान में केवल अंधाधुंध रीति से दान देने लेने की चर्चा रहगई, धर्म का अभाव होने लगा और ऊपरी दिखावटों की ओर अधिक ध्यान होगया सत्य का बीज जो प्रत्येक मनुष्य के हृदयमें बोया जाताथा

इसके बोनेवाले मनुष्य स्वयं असत्य में फंस गये । धर्म के नाम से अनेक प्रकार के धोखे, ठगाई और प्रजापीड़ा होने लगी, इस समय बुद्धावतार और उन का मत प्रगट हुए ॥

। संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति बौद्ध मत ।

नैपाल की राजधानी कपिलवस्तु में जो प्रसिद्ध नगर काशी से सौ (१००) मील पर है, शुद्धोधन नाम राजा के एक पुत्र का जन्म हुआ, जिस का नाम गौतम रक्खा गया । राजकुमार गौतम का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में राजा कोली की पुत्री यशोधरा नामवाली से हुआ उन्तीस वर्ष की अवस्था तक गौतमजी सांसारिक सुख में अति लाडचाव के साथ जन्म व्यतीत करते रहे एक दिवस दैवाधीन जब गौतमजी हवाखाने को जाते थे, तब एक वृद्ध मनुष्य को देखकर, जिस का शरीर बहुत दुर्बल और इन्द्रियां बहुत शिथिल होगईथी और जो अपनी वृद्धावस्था को घोर कष्ट से काट रहा था, उन के चित्त पर बड़ा प्रभाव हुआ इसी प्रकार दूसरी बार एक रोगी को देखने से, जिस को रोग के कारण बहुत कष्ट था, गौतमजी के कोमल हृदय पर पहिले से अधिक प्रभाव हुआ तीसरी बार गौतमजी ने एक मुर्दे को देखा, तब उन के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आरोग्यता रोग से और युवावस्था वृद्धा अवस्था से बदल कर दुःखदाई होतीहैं और इन अदलाबदली और दुःखों को सहतेहुए जीवन मृत्यु से बदल जाता है-निदान ऐसा क्षणभंगुरः परिवर्तनीय और दुःखदाई जीवन

---

१ गौतम का जन्म स्थान कपिलवस्तु अबतक मगध देश अर्थात् बिहार में [illegible] जाता था-परन्तु अब इस के खंडर मिलने से निश्चय होगया है कि [illegible] नेपाल देश में है-(देखो टाइम्स आफ इन्डिया २ अक्टोबर सन १८९७ ई०)

मुख्य करके इस के युवावस्था में सांसारिक सुखों
होजाना प्रत्यक्ष असावधानता है. यह विचार गौतमजी के
में खटक ही रहाथा कि चौथी बार एक महात्मा साधु को
जो वृद्ध होने पर भी बहुत बलवान् और अरोगी था, इस
मुख गुलाब के पुष्प की भांति लाल
से शान्ति और आनंद के चिन्ह दिखलाई देतेथे, गौतमजी
निश्चय हुआ कि जन्म के दुःखों से बचना और
जाना केवल साध्वस्था अर्थात् सन्तों के ही वेश
जिस दिन ये विचार गौतमजी के मन में उठरहेथे उसी
उनकी कुंवरानी यशोधरा के पुत्र उत्पन्न हुआ, महलों
मनायागयाथा, गौतमजी को धन्यवाद दियाजाताथा-परन्तु इन
के चित्त में तो कुछ और ही उधेड़ बुन लगी हुईथी. अन्त में
उसी दिन रात के समय गौतमजी ने संसार को त्यागने का
दृढ़ विचार करलिया—इस हेतु कि इस के द्वारा सच्चे धर्म
प्रगट करके, अपने और दूसरे सत्य के ढूंढने वालों के
लिये शान्ति उत्पन्न करें ॥

गौतमजी ने अपनी परिपूर्ण तरुणाई अर्थात् उन्तीस
की अवस्था में राज्य के सुख से मुंह मोड़कर, अपनी स्त्री
प्यारे संबंधियों, अपनी प्यारी
और नन्हे से बच्चे और दूसरे सब ... की भांति वेह र ... तांत
को तोड़कर, आधीरात को वन का रास्ता लिया. रातोंरात
बहुत सा रास्ता काटकर प्रातःकाल के समय अपने सेवक को
अश्व सहित पीछा भेजदिया और सेवक से कहा कि तुम मेरे
माता पिता स्त्री और दूसरे मनुष्यों को समाचार देदेना कि
गौतम साधु होगया. अपने केश कृपाण से काट कर और वस्त्र
एक ग्रामवासी से बदलकर, गौतमजी एक ब्राह्मण के पास
गये और शास्त्रों का पढ़ना आरंभ किया. वहां तृप्ति न होनेपर

घरे ब्राह्मणों के पास गये-परन्तु वहां भी इच्छा पूर्ण नहीं ई, तब छः वर्ष तक बहुत दृढ़ तपस्या की और ऐसे निर्बल गए कि एक दिन चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिरपड़े. इस-मय इन को विचार आया कि केवल तप से ही सच्ची शान्ति हीं मिल सक्तीहै ॥

कहतेहैं कि इस अवसर पर इन्हों ने एक सितार का शब्द ा, पहली वार एक तार अधिक खिंचाहुआ था और दो ढे थे वह शब्द अच्छा न जानपड़ा दूसरी वार तीनों एकसे थे, उस समय शब्द बहुत सुहावना जान गौतमजी, जिन का अन्तः करण तप करने से शुद्ध होग ा, तुरंत समझगये कि यह इन को आकाशवाणी हुईहै कि सितार के तीनों तारों के एक से होने से उत्तम राग निक-लैहै, इसी प्रकार से शरीर रूपी सितार के तीनों तारों अर्था-स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के एक से होने से सच्ची न्ति मिलनी संभव है-निदान इन्हों ने अपने शुद्ध अन्तः रण के परिमाण के अनुसार संयम और धीरज के साथ न्म व्यतीत करतेहुए अपने अन्तर में सच्ची विद्या के खोजने का आरंभ करके उस को प्राप्त किया. उस समय इन्हों ने यह विचार किया कि सच्चे धर्म का उपदेश प्रारंभ करें-परन्तु साथही यह चिंता हुई कि धनवान् धन के मद में विद्यावान् विद्या के अभिमान में, और राजा लोग राज्य के घमंड में उन के उपदेश को किस प्रकार सुनेंगे और जिन के पास यह तीनों शक्तियां नहीं हैं, वे अविद्या और दरिद्रता के दुःख में फँसे हुए इतनी बुद्धि और अवकाश नहीं रखते कि उन का उपदेश सुनकर समझ सकें और उस के अनु सार चलसकें. उसी समय उन के अन्तः करण में यह प्रेरणा

हुई कि उपदेश करना चाहिये–ऊपर लिखे मनुष्यों की श्रेणियों में कई ऐसे अवश्य ही निकल आवेंगे जो उन के उपदेश को सुनेंगे, आदर करेंगे और उन के अनुसार चलकर सच्ची शान्ति प्राप्त करेंगे ॥

गौतमजी का उपदेश बहुत सीधा सादा होता था वे प्रत्येक मनुष्य से कहा करते थे कि संस्कार और कर्म को उत्तम बनाओ और साधारण रीतियां उनको उत्तम बनाने की बतलाया करते थे. ब्राह्मण इत्यादि बहुधा उन से झगड़ा और क्लेश करने को यह प्रश्न किया करते थे कि आप वेदों को और ईश्वर को मानते हो या नहीं ? गौतमजी का बहुधा संक्षेप से यही उत्तर हुआ करता था कि मैं ने वेदों को पढ़ा नहीं और ईश्वर को देखा नहीं इस कारण से उन के लिये कुछ नहीं कहसक्ता ॥

गौतमजी ने पहिले उन ब्राह्मणों को, जो तपस्या के समय उन के साथ थे, उपदेश किया, फिर काशी की ओर चले,वहां एक धनवान् पुरुष जिस का पुत्र जासक पहिले ही से इन का शिष्य था उन का साथी हुआ फिर जासक की माता और स्त्री भी इन में आन मिलीं–निदान पांच महीने के अन्तर में गौतमजी के उपदेश का प्रभाव बहुत फैलगया और साठ मनुष्यों के लगभग उन के शिष्य होगये ॥

गौतमजी ने उपदेश करनेवाले शिष्यों के लिये तपस्या अर्थात् काया को कष्ट देने का प्रमाण बहुत दृढ़रक्खा था–उन को कहागया था कि, भिक्षा से निर्वाह करते हुए, एक दूसरे से न मिलतेहुए, नित्य प्रति देशाटन करते हुए, उपदेश करें, गौतमजी स्वयं आठ महीने तक बराबर देशाटन करते हुए उपदेश करते रहतेथे, केवल वर्षा ऋतु के चार महीने एक स्थान में ठहरा करतेथे. निवास की व्यवस्था में रात्रि के समय अपनी

बनाई हुई धर्म पुस्तकें सर्व साधारण जनों को सुनाया करतेथे और प्रत्येक वर्ण और आश्रम के मनुष्यों को अपना शिष्य बनातेथे, जब गौतमजी के शिष्य बहुत होगये तब सामाजिक उन्नति का उचित प्रबंध आरंभ कियागया—चार मुख्य शिष्यों १ आनंद २ देवदत्त ३ उपाली और ४ अनिरुद्ध में सब काम बांटा गया ॥

एक बार गौतमजी के पिता ने उन को संदेसा भेजा कि आप मुझ को दर्शन देवें—निदान वे उन के पास गये उस समय उन की स्त्री रानी यशोधरा ने उन के पुत्र को भी उन के पास भेजा—विचार यह था कि, कदाचित् उस की प्रीति के हेतु गौतमजी वहां पर अधिक निवास करें. गौतमजी ने यह कहकर कि धर्म के उपदेश के लिये होनहार पुरुषों की बहुत आवश्यका है अपने पुत्र को भी साधु बनाकर अपनी मंडली में मिला लिया ॥

गौतमजी सेंतालीस वर्ष तक उपदेश करतेरहे, एक दिन अपने प्रतिष्ठित शिष्य आनंद से कहा कि अब मैं अस्सी वर्ष का होगयाहूं और अधिक सावधानी रखने से कुछकाल और जीसकूं तो भी तुम स्वयं काम करने पर उद्यत रहो, फिर सम्पूर्ण शिष्यों को एक मुख्य स्थान विसाली पर एकत्र करके कहा कि " तत गाथा " अर्थात् गौतमजी का शीघ्र अंत होने वाला है—निदान तुम को आनंद और दूसरे प्रतिष्ठित शिष्यों के उपदेश के अनुसार चलना चाहिये ॥

गौतमजी की मृत्यु के पश्चात् सामाजिक उन्नति पर विचार करने के लिये उन के शिष्यों की पहली सभा पहली वर्षा ऋतु में राजघाट नामी स्थान में हुई, जिस में पांच सौ(५००)योग्य शिष्य एकत्र हुए, गौतमजी का एक प्रतिष्ठित शिष्य महाक्षेप

प्रधान अर्थात् प्रेसिडेन्ट सभा चुनागया और सभा का सारा प्रबंध मगध देश के राजा ने किया.

दूसरी सभा लगभग सौ वर्ष के पीछे (जूबीली की भांति) एकत्र हुई उस में सात सौ (७००) योग्य पुरुष एकत्र हुए. सामाजिक उन्नति के संबंधी मुख्य २ वातों पर विचार करके उन सत्पुरुषों ने कई आवश्यक अदला बदली को स्वीकार किया जिन को कई शिष्यों ने ग्रहण करने से निषेध किया जिसके कारण से धीरे २ बौद्धमत के अठारह भेद होगये. इन सब भेदों को एक करने और दूसरी आवश्यक बातों के हेतु तीसरी सभा राजा अशोक ने पटने में एकत्र की जिस में .. सहस्र मनुष्य एकत्र हुए. राजा अशोक बौद्धमत का एक अति उत्साही सभासद चमकता हुआ चांद हुआहै, उस ने धर्म के प्रचार की आवश्यकता और योग्य उपदेशकों की कमी को जानकरके अपने एक पुत्र और एक पुत्री को धर्म के अर्पण करादिया—निदान उस का पुत्र राजकुमार महेन्द्र साधु बनकर गेरू से रंगेहुए वस्त्र धारण किये, छः और साधुओं को साथ लेकर, सर्दी गर्मी सहता हुआ, लंका पहुंचा और वहां के राजा टस्सा को उपदेश किया. राजा महेन्द्र की तितिक्षा और धर्मभाव को देखकर और उस के उपदेश को सुनकर टस्सा ऐसा मोहित हुआ कि, उस ने तुरंत चालीस सहस्र मनुष्यों सहित बौद्धमत को ग्रहण किया. उन सब नवीन धर्मग्राहियों के विश्वास को दृढ़ करने के हेतु महेन्द्र की बहिन बाई यमिता लंका गई और उन्हें दृढ़ निश्चय करादेने के उपरांत सम्पूर्ण टापू में अपना मत फैलादिया. इस के पश्चात् दोनों बाहिन भाई साधुओं के वेश में एक दृढ़ मंडली बनाकर चीन, जापान, ब्रह्मा इत्यादि देशों में गये और स्वधर्म के फैलाने में अत्यंत सफलता प्राप्त

की–निदान राजा अशोक का अपने पुत्र और पुत्री को अर्पण करदेने और दूसरे सच्चे उपायों के कारण बौद्धमत बहुत उच्च पद को प्राप्त हुआ परन्तु उस के पीछे सामाजिक धर्म की उन्नति का प्रबंध उत्तम न रहसका, धर्म के उपदेश करने वाले विद्वान् नियमानुसार चलनेवाले न रहे, उस समय बौद्धमत लगभग सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में फैलगया था और राजधर्म की भांति समझा जाता था, उस को सुधारने के लिये काश्मीर के राजा ने एक चौथी सभा फिर एकत्र की बहुत से विद्वानों को एकत्र करके बौद्धमत की पुस्तकें संस्कृत और पाली बोली में लिखवाई और सामाजिक उन्नति के मुख्य काम अर्थात् उत्तम उपदेशकों को उत्पन्न करने का उद्योग किया परन्तु सफलता नहीं हुई और वेदोक्तमत वेदान्त के रूप में फिर प्रचलित हुआ ॥

। संक्षेप वृत्तान्त वेदान्तमत ।

उस बौद्धमत की अवनति के समय, दक्षिण देश में, महात्मा शंकराचार्य प्रगट हुए, जिन्हों ने बहुत छोटी अवस्था से ही संसार को त्यागकर अपनी शक्तियों को बढ़ाया और फिर धर्म का उपदेश अपने जन्मस्थान मालाबार से प्रारंभ किया प्रायः सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में घूमकर बौद्धमत का खंडन करके वेदान्तमत को उस के स्थान में स्थापित किया, विद्वान् मंडनमिश्र और उस की योग्य पत्नी से काश्मीर में बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ जिस में शंकराचार्यजी की जय हुई, शंकराचार्यजी में वादविवाद करने की बहुत उत्तम शक्ति थी और उन की वाणी का प्रभाव ऐसा था कि जो कोई उन की बातचीत

१ इस में संदेह नहीं है कि शंकराचार्यजी ने बौद्धमत की जड़ भारतखंड से उखाड़ी तथापि यह भी निश्चय होचुका है कि बौद्धमत का खंडन प्रथम भट्ट कुमारिल ने आरंभ किया जो शंकर स्वामी के समकालीन थे ।

सुनता मोहित होजाता था. जैसी भाषण शक्ति उन को प्रदत्त हुईथी उतनी ही नहीं किन्तु कुछेक अधिक उनकी लेखनी में भी शक्ति थी ॥

यद्यपि शंकरस्वामी ईश्वर में अद्वैत भावना रखते थे और ऐसा ही उन्हों ने अपने अधिकारी शिष्यों को उपदेश भी दिया, तोभी सर्व साधारण मनुष्यों के लिये मूर्तिपूजन को अनुचित नहीं कहा. उन का यह सिद्धान्त था कि यदि निराकार ईश्वर का अनुभव नहीं होसके तो आदि में किसी स्थूल पदार्थ मूर्ति इत्यादि के द्वारा ध्यान जमाना उचित है ।

शंकराचार्यजी ने सामाजिक उन्नति के लिये ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक मंडली सन्यासियों की भी स्थापित की और उसके गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती इत्यादि दस भेद नियत किये कई मठ अर्थात् बडे २ स्थान बनवाये जहां धर्म संबंधी बातों पर सदैव चर्चा होती रहती थी जिसका प्रभाव भरतवर्ष के स्त्री और पुरुष दोनों के चित्तों पर और उन की रीतिभांति में भी बहुत कुछ अबतक पायाजाता है ॥

शंकराचार्य के पीछे बहुत काल के पश्चात जब सामाजिक उन्नति का काम ढीला होनेलगा तब एक महात्मा रामानुज नामी वैष्णव मत वाले प्रसिद्ध हुए. उन के मत में विष्णु भगवान और उन की स्त्री लक्ष्मीजी की पूजा मानीगईहै, वेदान्त मत अर्थात् अद्वैत ईश्वर का खंडन कियागयाहै. उन का यह सिद्धान्त है कि विष्णु (ईश्वर) निराकार भी है और रामचंद्र सीता—कृष्ण राधिका इत्यादि के रूप में आकार सहित अवतार भी लेतेहैं । रामानुजजी ने सात सो (७००) मठ

१ रामानुज का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है क्योंकि उन्हों ने अद्वैत का खंडन नहीं किया परन्तु एक विशेष्य और मोटकर, रामचन्द्र सीता कृष्ण राधिका के स्वरूप में जगद्रूप विशेष [illegible] परमेश्वर के स्वरूप का [illegible] रूप से प्रतिपादित किया है ॥

स्थापन किये और अपने अधिकारी शिष्यों में से सतरा(१७) मनुष्यों को छांटकर और उन को आचार्य पदवी देकर सामाजिक उन्नति का प्रबंध उन के हाथ में दिया, जिन के नाम से एक २ शाखा वा संप्रदाय स्थापित हुई ॥

रामानुज संप्रदाय वा श्रीवैष्णव संप्रदाय का एक योग्य पुरुष रामानंदजी नामी खाने पीने की छूतछात और दृढ़ प्रतिबंधनों के हेतु अपनी संप्रदाय से अप्रसन्न होकर एक नया मत चलाने के लिये उपस्थित हुआ जिसका नाम रामानंदी मत रक्खा गया इस मत में खाने पीने का कोई बंधन वा जातिं इत्यादि का कुछ ध्यान नहीं था इसी कारण से सच्चे धर्म के ढूंढ़नेवाले बिना भेद भाव वर्णाश्रम जैसे कबीर जुलाहा, रैदास चमार, धन्ना जाट, सैन नाई इत्यादि आ शामिल हुए धर्म पुस्तकें भी संस्कृत के स्थान में मामूली बोलचाल और सर्व साधारण के समझ में आनेवाली भाषा में लिखी गई ॥

रामानंदजी ने सामाजिक उन्नति के लिये एक मुख्य मंडली थोड़े से योग्य शिष्यों की नियत की थी जिनके नाम ये हैं ॥

रैदासजी ।
तुलसीदासजी ।
जैदेवजी ।
नाभाजी ।

रामानंदजी के देह छोड़ने के पश्चात् कबीरजी उन के उत्तराधिकारी नियत हुए. कबीरजी ने बहुत काल तक काशी में कबीरचौरा नामी स्थान में योगाभ्यास किया था, उस के प्रताप से और सत्यग्राही और सर्व प्रिय होने के हेतु अनेक गृह-

स्थी और साधु उन को मस्तक झुकाने लगे कबीरजी ने मूर्ति पूजन को सर्वथा अनुचित बतलाया हिन्दू और मुसलमानों के धर्मोपदेश के समय उन के मत के दोष दिखलाकर निडरता से आक्षेप किये. ये हिन्दुओं की सम्पूर्ण जातियों और मुसल्मानों को भी अपने मत में मिला लिया करते थे, साधु सेवा को बहुत बड़ा कारण धर्म प्राप्ति का जानते थे और मुख्य २ शिष्यों को योगाभ्यास का भी उपदेश दियाकरते थे उन के समय में एक धनाढ्य पुरुष धर्मदास नामी ने बहुत सा द्रव्य उनके भेट किया जिस से सामाजिक उन्नति को बहुत सहायता मिली ॥

पंजाब में गुरूनानक ने बहुत काल तक रोड़ी साहिब (गुजरान वाला) में योगाभ्यास करके धर्म का उपदेश और सामाजिक उन्नति का काम प्रारंभ किया उनका उपदेश विग्रह-रहित और सर्वप्रिय था. हिन्दू मुसल्मान सब उन से लाभ उठाते थे. उन्हों ने भक्ति को मुख्य साधन कहा है. उन के सिद्धान्त को संक्षेप से तीन शब्दों में इस रीति से वर्णन किया जाता है कि "मुख भक्ति मुख भक्ति–वर्तन वैराग्य–वर्तन वैराग्य–और हृदय ज्ञान"–गुरू नानक साहिब ने अपने जीतेजी अपने एक योग्य शिष्यको अपना उत्तराधिकारी नियत किया और ऐसा ही उस के उत्तराधिकारी दस पीढी तक करते रहे, जिस के हेतु असंख्य मनुष्यों को मुख्य करके पंजाबवालों को बहुत लाभ हुआ ॥

जिस प्रकार पंजाब में गुरू नानक साहिब ने काम प्रारंभ किया उसी प्रकार से बंगदेश अर्थात् बंगाले में महात्मा चैतन्यजी ने भक्ति का प्रचार आरंभ किया. हिन्दू मुसल्मान दोनों को उन के उपदेश से लाभ पहुंचता था. एक बार चैतन्यजी उपदेश कररहे थे उसी समय दो पूज्य मुसल्मान दबीर

और कुशाश नामी जो मीर सय्यद हुसैन बंगाले के सूबेदार के संबंधियों में से थे ऐसे मोहित हुए कि आधी रात को चैतन्यजी की सेवा में आ उपस्थित हुए और उन के मत में हो जाने की इच्छा प्रगट की. चैतन्यजी ने उन को अपना शिष्य बना लिया और उन का नाम रूप और सनातन रक्खा. इसी प्रकार से चैतन्यजी ने पांच पठानों की, जो मथुरा के पास लूट मार किया करते थे और चैतन्यजी को भी लूटना चाहते थे, अपने पवित्र उपदेश से धर्मात्मा बना दिया, जिन्हों ने उसी समय लूट मार करने से पश्चात्ताप कर के चैतन्यजी का मत अंगीकार किया ॥

छः वर्ष देशाटन करते हुए उपदेश करने के पश्चात् चैतन्यजी ने सामाजिक उन्नति के प्रबंध के हेतु अद्वैताचार्य और नित्यानंदजी को बंगाल में वैष्णव समाज का अधिकारी नियत किया. रूप और सनातन को वृन्दावन समाज का प्रबंधकर्ता नियत किया और आप नील चोले में रहे जहां उन की आत्मा की चमत्कार रूप शक्ति से शुद्ध हृदय में आज्ञा हुई कि संसार का संबंध छोड़ कर सन्यासी हो जा. चैतन्यजी को अपनी माता से बहुत प्रीति थी, फिर भी किसी प्रकार का हठ न करके उस आत्मा के पवित्र प्रकाश की आज्ञा पालने योग्य और आवश्यक समझकर और अपनी माता और दूसरे संबंधियों की प्रीति और गृहस्थ के सुखों से मुंह मोड़कर, सन्यास धारण कर लिया जब उन को माता आदि संबंधियों का कुछ भी मोह नहीं रहा और सांसारिक क्लेशों से हलके होगये, तब वह अपना सम्पूर्ण समय धर्म के सूक्ष्म भाव और उत्तम धर्म के तत्त्वों को जानने और फैलाने में लगा सके, जिस के कारण असंख्य पापी मनुष्य धार्मिक बन गये. इसी प्रकार से

राजपूताने में दादूजी ने और दक्षिण में तुकाराम[1] महात्मा ने धर्म का प्रचार फैलाया यह एक अनोखा समय था कि न केवल हिंदुस्थान में ही धर्म का चर्चा और धर्म का परिवर्त्तन हुआ परन्तु इसी समय में यूरुप देश में भी मार्टिन लूथर जैसे महात्माओंके द्वारा ईसाई मत में भी बहुत कुछ शोधन हुआ॥

शहनशाह औरंगजेब की पालिसी अर्थात् राजनीति ने जब मत की स्वाधीनता में रुकावट डालनी आरंभ की तो स्वाधीन प्रकृतिवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों बड़बड़ाने लगे जिन में से बहुतों को घोर कष्ट सहना पड़ा और गुरू नानक साहिब के मिलाप सिखलानेवाली भक्ति के उपदेश को उन के दसवें उत्तराधिकारी गुरू गोबिंदसिंहजी को क्षत्रीय धर्म के प्रचार में बदलना पड़ा जिसका संक्षेप वृत्तान्त करने से पहिले मुसलमानी मत और उसकी सामाजिक उन्नति का संक्षेप वृत्तान्त लिखना उचित जान पड़ता है ॥

---

१ महाराष्ट्र देश में पूना शहर से ९ कोस पर देहू करके छोटा सा गांव है उस में शालिवाहन शके १५२० (सन् १६०८ ई०) में महात्मा तुकाराम प्रगट हुए. वे जात के वैश्य थे उन का पिता भी भगवद्भक्त था साधु तुकाराम का चित्त बाल्यावस्था से ही ईश्वर भजन में दृढ़ हुआ. उनकी स्त्री जिजाबाई बड़ी कलहकारिणी और तामसी थी उस के अनुचित व दुःखकारक सहवास से साधु तुकाराम के वैराग्य को बहुत पुष्टता मिल गई ॥

तुकाराम अहर्निशईश्वरनाम स्मरण किया करते थे; इन्होंने वैराग्य पर हजारों अभंग (एक मराठी छंद) बनाये है समाज में वे हरि कथा करते थे; और भक्तिमार्ग का लोगों को उपदेश करते थे. साधु तुकाराम का देहान्त उनके ४१ वर्ष की उमर में शके १५७१ फाल्गुन सुदि १२ (सन् १६४९) को हुआ. कहते है कि वे इसी मनुष्य देह से दिव्य लोक को पधारे।

साधु तुकाराम के अनुयाई हजारों लोक है. उन के मत में ज्ञान युक्त वैराग्य सहित भक्ती का प्राधान्य वर्णन किया है. ईश्वर नाम स्मरण प्रधान माना है और साकार ईश्वर का पूजन उन को असंमत नहीं है; तथापि एक श्री विठ्ठलनाथ का पूजन करना उचित समझा है यदि साधु तुकाराम के मत को एक प्रकार का साकार एकेश्वरी कहाजावे तो कुछ विरुद्धता न होगी ॥

॥ संक्षेप वृत्तान्त हज़रत मुहम्मद साहिब, उनके मत और सामाजिक उन्नति का ॥

जब अरबदेश के मक्का नामी नगर में मूर्ति पूजा का बहुत प्रचार हुआ और कई प्रकार के दुराचार उस देश और देश के लोकों में फैल गये तब ऐसे २ मनुष्य वहां पर जन्म लेने लगे जो मूर्तिपूजन से घृणा और देशी दुराचारों पर शोक करते थे. उस समय में हज़रत मुहम्मद साहिब का जन्म मक्का के कुरेशी नामी वंश में हुआ उन में बहुत से गुण ऐसे दीख पड़े जिन के द्वारा धर्म परिवर्तन जैसा भारी काम किया जासके।

बाल्यावस्था से ही उन में बहुत सी उत्कृष्ट भलाइयां और अलौकिक बातें दिखाई देती थीं. वे प्रत्येक वर्ष रमज़ान के महीने में हारा नामी पर्वत की गुफाओं में जागरण किया करते थे और बहुत विश्वास और इन्द्रियों के दमन के द्वारा सत्य के निर्णय करने का उद्योग किया करते थे ॥

चालीस वर्ष की अवस्था में उन्हों ने एक दिन अपनी स्त्री ख़दीजा से कहा कि मुझ को एक शब्द सुनाई देता है और एक प्रकाश भी दीख पड़ता है. ख़दीजा ने कहा कि ये चिह्न आप के पैग़म्बर अर्थात् अवतार होने के हैं ख़दीजा के भाई वरक़ा और एक योगी अवास नामी ने भी ऐसा ही कहा ॥

सब से पहिले मुहम्मद साहिब की स्त्री ख़दीजा, चचेरा-भाई अली और दत्तक पुत्र (जो पहिले अनुचर था) ज़ैद उन पर विश्वास लाये ॥

जब मक्के के प्रबल कुरेशी नामी वंश ने देखा कि मुहम्मद साहिब धर्म परिवर्तन का विचार करते हैं तो हिन्दुस्थान की रीति के विरुद्ध, कि प्रत्येक धर्म प्रचारक को स्वाधीनता के साथ धर्मोपदेश करने का अवसर मिला है, मुहम्मद साहिब को अनेक प्रकार के कष्ट देने और उन के काम में अनुचित रुकावटें डालनी आरंभ कीं ॥

मुहम्मद साहिब ने अनेक प्रकार से उन को समझाया कि उन के कहने पर चलने से कुरेशी लोग एक बलवान् कुल बनजावेंगे और ऐसी सामर्थ्य प्राप्त करेंगे कि सम्पूर्ण संसार में उन का प्रभाव फैलकर उन का एक प्रबल राज्य स्थापित होजावेगा और अंत में स्वर्ग प्राप्त होगा परन्तु कुरेशियों को उन के कहने पर विश्वास नहीं आया ॥

जो कोई कुलीन मनुष्य उन का साथी होता था, उस का ठट्ठा किया जाता था, कि उस ने अपने पुरखाओं का मत छोड़कर अपने कुल के बट्टा लगाया. व्योपारी के व्योपार में हानि पहुंचाने का उद्योग कियाजाता था और कंगाल और चाकरों को मारपीट की जातीथी और बहुतों के प्राण भी ले लिये जातेथे—जैसे बांदी सोमिया को अबुजहल ने केवल इसी कारण अपने हाथ से मारडाला कि वह मुहम्मद साहिब की चेली होगई थी, जिस की मौत मुसल्मानी मत में पहला बलिदान समझा जाता है ॥

एक बार एक मान्यवर युवा पुरुष उमर नामी मुहम्मद साहिब को मारने के लिये खड्ग लेकर चला, मार्ग में यह सुनने पर कि उसकी बहिन और बहनेऊ भी मुहम्मद साहिब के शिष्य होगये, उसने पहिले उन को मारने का विचार किया. जिस समय उन के घर पर पहुंचा तो देखा कि वे कुरान शरीफ़ का सुरा पढ़रहेहै—परन्तु उमर को देखकर वे चुप होगये. उमर ने क्रोध में आकर पूछा कि क्या तुम ने नवीन मत ग्रहण किया है? उस पर उस के बहनेऊ ने बड़ी गंभीरता से उत्तर दिया कि यदि कोई नया मत उत्तम हो तो उस को अंगीकार करने में क्या अवगुण है. यह उचित उत्तर सुनने से कुपित होकर अपने बहनेऊ पर खड्ग प्रहार

किया, उस समय उस की बहिन बीच में आगई और उस के अत्यन्त घाव लगने पर भी रोतीहुई बोली कि हज़रत मुहम्मद साहिब का मत उत्तम है और इसी कारण हम ने उस को ग्रहण कियाहै. बहिन के घायलहोने पर भी उस के दृढ़ निश्चय को देखकर उमर पर बड़ा प्रभाव हुआ. उस ने उन के साथ मुहम्मद साहिब की सेवा में पहुंच कर उन को मारने के बदले उन के चरणों में गिर कर इसलाम के मत को स्वीकार किया, जिस के कारण इसलाम मत को बहुत प्रबलता प्राप्त हुई ॥

इस सफलता को देखकर कुरेशियों ने मुहम्मद साहिब को मारना चाहा किन्तु मनोरथ पूरा न होने पर उन के दरिद्री और किंकर साथियों को दुःखदेना आरंभ किया, जिस के कारण एक सौ एक (१०१) इसलाम के अनुगामियों को स्वदेश छोड़कर हब्श के देश को जानापड़ा ॥

कुरेशियों ने हब्श के बादशाह नज्जाशी के पास जो ईसाई मत का था बहुत सी भेट और उस के कारबारियों को रिशवत् अर्थात् घूस देकर अपने एलची अर्थात् दूत के द्वारा यह इच्छा प्रगट की कि उन मनुष्यों को कुरेशियों के हाथ सौंप दियाजावे. बादशाह ने उन मनुष्यों से उन की दशा का वृत्तान्त पूछना चाहा. उन में से जाफर ने जो मुहम्मद साहिब का चचेराभाई था और बोलचाल में एक मुख्य प्रकार की शक्ति रखताथा, अपनी विपत्ति का वृत्तान्त इस रीति से किया कि हम लोग शहर मक्का में बहुत अविद्या की दशा में अपना जन्म व्यतीत कररहेथे, मृत पशुओं का मांस खाते थे, बलवान् निर्बलों को सताया करते थे, कुलीन जन भोगविलास के रोग में फँस गये थे, विना विवाह सत्तर २ स्त्रियां घर में

डाललेते थे, ऐसे कुमार्ग चलने की व्यवस्था मे हम में से एक मनुष्य ने जिस की बुद्धिमानी, दूरदर्शिता और ऐसे उत्तम आचरण है, जिन की हम को आवश्यकता है, हम को सुमार्ग पर लाने का उद्योग किया. उसने अतिथी सत्कार और स्त्रियों के आदर की शिक्षा की—सत्य ईश्वर का आराधन करने, व्रत करने और दानदेने का उपदेश किया—हम उस पर विश्वास लाये इस पर हमारे देशवालों ने हमको अनेकप्रकारके दुःख देना आरम्भ किया—निदान हमनेअपने देश को त्यागकर आप की शरण लीहै, साथ ही कुरान का उन्नीसवां सुरा भी पढ़ा जिस में हजरत ईसा और सेन्टजोन का उत्तम रीति से वर्णन था. बादशाह के चित्त पर जाफर की बातचीत और कुरान के सुरा के सुनने से ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्हों ने एलची अर्थात् दूत को आज्ञा की कि हम इन लोगों को इनके मन उपरांत नहीं भेजना चाहते. इस पर कई कारवारियों ने एलची की पक्ष करके बादशाह को जाफर से यह प्रश्न करने के लिये उद्यत किया कि तुम लोग हज़रत ईसा को ईश्वर का बेटा समझते हो या नहीं ? जाफर ने उत्तर दिया कि हम लोग हज़रत ईसा को ईश्वर का एक उत्तम दास, ईसाइयों का पैगम्बर और मरीयम का बेटा समझते है. इस पर ईसाई अप्रसन्न हुए और उद्योग किया कि जाफर हजरत ईसा को ईश्वर का पुत्र कहे परन्तु वीर जाफर ने कहा कि हज़रत मुहम्मद साहिब ने आज्ञा की है कि चाहे कैसाही भय हो, चाहे कितनी ही हानि होजाय प्रत्येक व्यवस्था में सत्य ही बोलना चाहिये और इस कारण से जिस बात के लिये मेरा मन साक्षी देता है वही कहना चाहता हूं और वह यह है कि हज़रत ईसा मरियम के बेटे थे. अन्त में गुणग्राही बादशाह ने जाफर की शूरवीरता और सत्यवक्ता

होने की सराहना करके उसके सत्य उत्तर को स्वीकार किया और ईसाई कारबारियों ने चुप लगाई. कुरेशियों ने अपनी इस निष्फलता से मनमें सकुच कर और प्रगटमें रोष दिखलाकर एक सभा एकत्र करके मुहम्मदसाहिब और उनके सम्बन्धियों को जाति से पृथक् करने का उद्योग किया परन्तु यथोचित सफलता नहीं हुई. और मुहम्मदसाहिब का सम्बन्ध मदीनेवालों से होगया इससे कुरेशियों के दुःखसे बचाव होगया और उन की मिशन अर्थात् धर्मप्रचार में सफलता होनी आरम्भ होगई ॥

वास्तव में मुहम्मदसाहिब के मन की दृढ़ता और उन्नति उसी समय से आरम्भ होगई थी, जब से हज़रत उमर उनके साथी हुए और अधिक दृढ़ता और उन्नति का समय वहां से समझना चाहिये जहां से दूरदर्शी अबूबकर उनके अनुगामी हुए. हज़रत अबूबकर एक धनवान्, अधिकारवाले और समझदार मनुष्य थे. इसलाम मत को ग्रहण करते समय उन्होंने अपने धन माल का सातवां भाग जिस की संख्या चालीस सहस्र दीनार थी इसलाम की सामाजिक उन्नति के हेतु दान कर दिया था और पीछे भी समय २ पर द्रव्य से सहायता करते रहे और दूसरे मनुष्यों को भी जो मुहम्मदसाहिब के प्रगट होने के पहिले ही अबूबकर के सहमत थे उत्साह दिलाकर द्रव्य की पूरी सहायता कराते रहे मुहम्मदसाहिब उन से इतने प्रसन्न थे कि उनको "सिद्दीक" अर्थात् परममित्र की पदवी प्रदान की थी ॥

हज़रत अबूबकर ने उसमान जो मुहम्मद साहिब का भतीजा था, ज़ुबेर जो खदीजा का भतीजा था, अब्दुलरहमान कौम ज़ोहरा जो एक धनाढ्य व्योपारी था, स्वाद जो मुहम्मदसाहिब का नाती और केवल सोलह वर्ष की अवस्था का था परन्तु

होनहार था, तल्हा वा खालिद इत्यादि बारह मनुष्यों की एक सभा बनाई थी जो प्रत्येक सामाजिक उन्नति के लिये सम्मति दिया करते थे ॥

इस दूरदर्शी, बलवान्, साहसी और तेजस्वी सभाके द्वारा वास्तव में एक ऐसा दृढ़ राज्य स्थापित हुआ जो संसार के सारे राज्यों से बढ़गया और जबतक उन योग्य पुरुषों के समान मनुष्य प्रगट होतेरहे और सामाजिक उन्नति का काम उनके हाथ में रहा तबतक इसलाममत को दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति होती रही—परन्तु जैसे २ सामाजिक प्रबन्ध में असावधानी और निर्बलता हुई तैसेही उन्नति भी नष्ट होतीगई और नवीन मत प्रगट होने लगे ॥

ऊपर लिखे वृत्तान्त और मुसल्मानी मत को प्रगट करने और फैलानेवाले के दुःखों को जानते हुए भी, जो उनको कुरेशी कौम के उपद्रव और निष्ठुरता के हेतु सहने पड़े थे परन्तु अन्तमें सफलता प्राप्त हुई थी, हिन्दुस्थान के शहनशाह औरंगजेब ने धर्मप्रचारकों को राजकीय कारणों से निर्बल करना चाहा, परन्तु स्वयम् निर्बल होगया जिस का संक्षेप वृत्तान्त इसीप्रकार से है ॥

संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति सिंहमत ।

जब शहनशाह औरंगजेब ने जिस ने राजकीय कारणों से अपने पिता और भाइयों इत्यादि पर भी हाथ चलाने में शंका नहीं की थी, सिक्खों में राजकीय शक्ति बढ़ते हुए देखी, तब गुरुनानक साहिब से नवे उत्तराधिकारी सिक्खों के अग्रगण्य गुरु तेगबहादुर को उनका बल कम करने के हेतु मारडाला तो उन के शूरवीर बेटे गुरु गोविन्दसिंहजी ने, जो गुरुनानक साहिब

से दसवें उत्तराधिकारी थे, अपने धर्म की रक्षा के लिये शान्त स्वभाव हिन्दुओं को अपने बचाव के हेतु एक युद्धाभिलाषी वर्ग बना दिया ॥

एक बार गुरू गोविंद सिंह ने अपने शिष्यों से कहा कि वे धर्म युद्ध करके जो धर्म के शत्रु हैं उन्हें नष्ट करेंगे, यह सुनकर सारे शिष्य भयभीत होगये और कहनेलगे कि हे गुरु महाराज! हम लोग निर्बल हिन्दू शूरवीर पठानों और अफ़गानों की इस्फहानी कृपाण का किस प्रकार सामना कर सकेहैं, उन लोगों की लंबी २ डाढ़ी और बलदार मूंछें मोटी गर्दन, बड़ा डीलडोल, और डरावने चहरे को देखते ही हम लोग भय के मारे अचेत होजातेहैं ॥

यह कायरता का उत्तर सुनकर बीर गुरू गोविंद सिंह जी ने जिस प्रकार से महाभारत के युद्ध के समय श्रीकृष्णजी ने घबराये हुए अर्जुन को क्षत्रीय धर्म का उपदेश कियाथा जिसें में दुर्योधन और उस के सेनापति भीष्मपितामह द्रोणाचार्य, इत्यादि के मस्तक कटे हुए अपना मुख खोलकर दिखायेथे— अर्थात् अपने मुख द्वारा उपदेश से निर्माण कर दियाथा कि, संयोग और वियोग वा जन्मना और मरना संसार का एक नियम है अर्थात् जिस ने जन्म धारण किया वह अवश्य मरेगा परन्तु जो लोग धर्म से विरुद्ध अर्थात् सच्चे मत के प्रतिकूल चलकर अन्याय के साथ जन्म व्यतीत करतेहैं; उन का अन्याय उन को शीघ्र नष्ट करदेताहै और वे थोड़े ही काल में मरजातेहैं—परन्तु जन्म लेना और मरना स्थूल शरीर अर्थात् पृथ्वी तत्व से बनी हुई काया का होताहै, आत्मा जन्म मरण से रहित है—निदान इस स्थूल शरीर के लिये जो अवश्य नाश को प्राप्त होगा तुम (अर्जुन) को अपना क्षत्रीय

धर्म कदापि नहीं त्याग करना चाहिये, इसी प्रकार गुरु साहिब ने बादशाही अत्याचारों का वर्णन करके अपने शिष्यों से कहा कि, उन का अन्याय ही उन को नष्ट करदेगा, साथ ही उस के व्यायाम और ब्रह्मचर्य अर्थात् शारीरिक कसरत और वीर्य की रक्षा इत्यादि मुख्य २ धर्म के अंगों के लाभ बतलाकर, उन से कहा कि इन साधनों को करते हुए तुमभी दाढ़ी इत्यादि पूरी वीरता का भयानक भेष उन से अधिक धारण करलो. सिक्खों की पदवी सिंह रक्खी और सिक्खों ने उन को सच्चा बादशाह समझा और शहनशाह औरंगजेब का नाम नौरंगा रक्खा. योग्य सिंहों की एक कौन्सल अर्थात् सभा बनाई जिस का नाम गुरुमता रक्खा धर्म उपदेश के साथ २ ही व्यतीत धार्मिक पुरुषों और शूरवीरों, मुख्य करके वीर स्त्रियों के वृत्तान्त सुनाकर गुरु साहिब सिंहों को उत्साह दिलाया करतेथे कि जब तुम्हारे देश में ऐसी २ स्त्रियें होगईहैं तो तुम तो पुरुष हो फिर शूरवीरों की भांति रहनगत धारण करके धर्म की रक्षा क्यों नहीं करते ॥

उस आपत्ति काल में भी, जो अधिकारी शिष्य आत्म धर्म के अभिलाषी थे, उन को उसी का उपदेश करके साधन बताये जातेथे और प्रातःकाल का प्रथम प्रहर बहुधा आत्मिक धर्म के उपदेश और चर्चा में ही व्यतीत होताथा—निदान एक दिन भोर होते ही युद्ध के विषय में विचार करने के लिये गुरुमता अर्थात् सभा एकत्र करने की आवश्यकता हुई, जब सम्पूर्ण सिंहों को एकत्र किये तो ज्ञात हुआ कि दो प्रसिद्ध सिंह नहीं आयेहैं. ढूंढ़ने पर जान पड़ा कि वे एक रमणीय स्थान में वृक्ष के तले बैठे, नेत्र मूंदे हुए ज्योति निरंजन के ध्यान में लगे हुएहैं बहुत बार पुकारा परन्तु उन्हों ने कुछ

न सुना तब शरीर पकड़ कर हिलाया गया उस समय वे कृपाण हाथ में लेकर उठ खड़े हुए–

निदान इस प्रकार से धीरे २ शारीरिक और आत्मिक धर्म की उन्नति कराते हुए गुरू साहिब ने अपने सिंहों में क्षत्री धर्म को भले प्रकार दृढ़ करदिया, क्योंकि सच्चे आचार्य जिस धर्म के अंग की, जिस समय में जितनी अधिक आवश्यकता समझते हैं, उसका किंचित् अधिक प्रचार किया करतेहैं ॥

एक दिवस परीक्षा के लिये गुरू साहिब ने संगत से कहा कि धर्म युद्ध में जीतने के निमित्त आवश्यक है कि एक मनुष्य अपना मस्तक यज्ञ में हवन करे. ऐसी कड़ी परीक्षा को सुन कर एक वीर पुरुष भाई दयासिंह नामी जाति का खत्री लाहौर निवासी सामने आया. गुरू साहिब उसको तंबू के भीतर लेगये और सुख से बिठाकर एक बकरे को झटका करदिया और रुधिर से भरी खड्ग हाथ में लिये हुए बाहर आनकर फिर कहने लगे कि एक मस्तक की और आवश्यकता है इस प्रकार परीक्षा करते हुए पांच सच्चे धार्मिक और वीर सिक्खों (१ दयासिंह, २ धर्मसिंह, ३ मोखमसिंह, ४ हिम्मतसिंह, ५ साहबसिंह) के द्वारा एक रण बीरोंका पंथ बनाकर दिल्ली के बादशाह और उस के सेनापतियों से पेंतालीस बार युद्ध किया जिन में से दृष्टांत रूपी एक युद्ध का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनाया जाता है ॥

एक बार गुरू साहिब थोड़े से सिंहों की सेना सहित चमकोर ज़िला लुधियाना के दुर्ग में घेरेगये–उस समय उन्हों ने जब कि बहुत से सिंह मरचुके तो अपने ज्येष्ठ पुत्र को असंख्य बादशाही सेना से लड़ने को भेजदिया और उस के मारे जाने पर कुछ भी पश्चात्ताप न करके दूसरे पुत्र को फिर आज्ञा दी

कि तू जाकर युद्ध कर. वह तुरंत शस्त्र बांधकर जाने को उपस्थित हुआ. जाने के समय उस ने प्यास के कारण किसी सिंह से थोड़ा सा जल मांगा— परन्तु गुरू साहिब ने आज्ञा की कि तुम्हारा जल वहां ही धरा है जहां कि तुम्हारा जेष्ठ भ्राता गया है हे प्यारे पुत्र! तुम शीघ्र दुर्ग से बाहर जाकर अथवा शत्रुओं के रुधिर से अपनी प्यास बुझाओ वा अपने जेष्ठ भ्राता के समीप जाकर स्वर्ग के अमृत से अपनी तृषा को बुझाना. इस तरह से आज्ञा करते हुए अपने कलेजे की कोर को मौत के मुंह में धकेल दिया. दो बड़े पुत्र तो इस प्रकार धर्म युद्ध में उन के नेत्रों के सन्मुख काम आये और दो कनिष्ट पुत्र सरहिंद के सूबे की बंधन में फंस गये. उस ने पहिले तो लालच दिया और कहा कि मुसल्मान होजाओ, परन्तु स्वीकार न करने पर दोनों बालकों को गले तक भीत में चुनवा दिया और कहा कि अब भी मुसल्मान होना अंगीकार करो तो छोड़दूं—किंतु उस समय भी उन्हों ने हांभी नहीं भरी और निर्भयता से बोले कि हे पापी ! हम को शीघ्र मार-डाल कि तेरा तेज और अत्याचार करने का बल भी शीघ्र नष्ट होजावे—निदान दोनों छोटे पुत्र भींत में चुने जाकर धर्म के बलीदान हुए और उन के पीछे कई वीर पुरुषों ने भी ऐसा ही किया ॥

अंत में परिश्रम, शूरवीरता और धैर्य से धर्म प्रचार और उत्तम पुरुषों के बलिदान होजाने का यह परिणाम हुआ और होना चाहिये था कि सिक्खों की जाति पूर्ण धार्मिक और योद्धा बनगई. इसी जाति से पंजाब का सिंह महाराजा रण-जीत सिंह और उन के अधिकारी योद्धा हरिसिंह नलवा इत्यादि प्रगट हुए—परंतु शोक है कि सामाजिक उन्नति का

योग्य प्रबंध न होने के कारण जितना परिश्रम और दुःख उन्हों ने धर्म की रक्षा में उठायाथा उतना सुख उन को प्राप्त न हुआ ॥

मुसल्मानी बादशाहत के निर्बल होने पर संभव था कि योद्धा सिक्ख धीरे २ अपनी सामाजिक उन्नति का प्रबंध करके अधिक बल और सुख प्राप्त करलेते—परन्तु उस समय विद्या से परिपूर्ण पाश्चात्य अंगरेजों का आगमन आरंभ हुआ जिस के कारण विद्या स्वाधीनता, और अनेक प्रकार की सांसारिक उन्नतियें हिन्दुस्थान के विभाग में आई, अंगरेजी राज्य के साथ ईसाई मत का भी प्रचार आरंभ हुआ, जिस का संक्षेप वृत्तान्त भी सुन लीजिये ॥

संक्षेप वृत्तान्त हज़रत ईसा, उन के मत और सामाजिक उन्नति का ॥

जब रूमियों और यहूदियों में धर्म का अभाव हुआ और धर्म की निरी दिखावट रहगई तब ईरान के पश्चिम में जुडिया नामी नगर के पास बैथलिम नामी ग्राम में हज़रत ईसा प्रगट हुए. उन में जन्म से ही ऐसे २ चिन्ह दिखलाई देतेथे जिन के कारण बहुधा बुद्धिमान् पुरुष उन के लिये यह विचार करतेथे कि कोई बड़ा काम करने के निमित्त उन्हों ने संसार में जन्म धारण कियाहै. जुडिया के बादशाह ने जब इस प्रकार के वृत्तान्त सुने तो जैसे राजा कंस ने श्री कृष्णजी को मारना चाहाथा उन को मारडालने का बिचार किया और इसी कारण से मामा मरियम हज़रत ईसा को लेकर मिश्र देश को चलीगई और बादशाह के देहान्त के पश्चात् पीछी स्वदेश को आगई ॥

जब हज़रत ईसा की अवस्था बारह वर्ष के लगभग हुई तो वह अपनी माता के संग यहूदियों के पवित्र नगर जेरूसलम के वार्षिक मेले पर गये और बाल्यावस्था होने पर भी अपनी माता से पृथक् होकर माइकल में बड़े २ पंडितों और विद्वानों के समीप जाकर धर्म के सूक्ष्म अंगों पर उन से प्रश्न किये और उन की विद्वत्ता की बातचीत को चित्त लगा के सुना और जब उन की माता ने उन से पूछा कि तू मुझ से अलग क्यों होगयाथा तो उत्तर दिया कि मैं अपने परम पिता परमेश्वर का काम करने के लिये पृथक् हुआथा ॥

हज़रत ईसा से कुछ समय पहिले एक महात्मा सेन्ट जोन नामी प्रगट होचुकेथे. वे बहुधा जोरडन नदी के आसपास रहा करतेथे. इस महात्मा ने तीस वर्ष की अवस्था में धर्मोपदेश प्रारंभ किया. उन की बातचीत का ऐसा प्रबल प्रभाव था कि असंख्य मनुष्य उन का उपदेश सुनने के लिये एकत्र होजातेथे. उन का उपदेश बहुधा यह हुआ करताथा कि पापों से तोबा करो अर्थात् पाप न करने का सच्चे मन के साथ दृढ़ विचार करो और फिर परमेश्वर की ओर ध्यान दो. वे कहा करतेथे कि पापियों के आयु रूपी वृक्ष की जड को पाप रूपी कुल्हाड़ी ढीला कर रहीहै इस कारण यातो कुल्हाडी रूपी पापों से बचकर उत्तम संस्कार रूपी पुष्पों से वृक्ष को सुगंधित करो और नहीं तो बहुत शीघ्र वृक्ष खोखला होकर जड से गिर पड़ेगा॥

जो कोई सेन्ट जोन के ऊपर लिखे उपदेश को सुनकर पापों से तोबा करताथा उस को सेन्ट साहिब जार्डन नदी के जल से अपने विचार के अनुसार शुद्ध किया करतेथे और अपनी बोलचाल में उस को बपतिस्मा कहतेथे इसी कारण उन का नाम–

जोन दी बेपटिस्ट प्रख्यात होगया ॥

जब सेन्ट जोन ने बहुत से मनुष्यों को पाप कर्म से तोबा कराकर बपतिस्मा दिया तो उन का नाम प्रसिद्ध होना आरंभ हुआ और हज़रत ईसा भी उन के पास गये और उन से बपतिस्मा लिया ॥

सेन्ट जोन से बपतिस्मा लेने के पश्चात् हज़रत ईसा एक निर्जन बन में गये और वहां चालीस दिन तक चित्त को स्थिर कर के सोचते रहे कि किस प्रकार से धर्म के उपदेश को आरंभ कियाजावे ॥

चालीस दिन के पश्चात् बन से पीछे आकर हज़रत ईसा ने उपदेश करना आरंभ किया उन की वाणी में सेन्ट जोन से भी किंचित् अधिक प्रभाव था और बहुत मनुष्य उन का उपदेश सुनने के लिये एकत्र होजातेथे. कुछ काल तक उपदेश करने के पीछे हज़रत ईसा ने विचार किया कि कुछ मनुष्यों को अपने पास रखकर और उनको उचित उपदेश और ज्ञान

---

१ अब यह बात निश्चय होचुकी है कि जीसस क्राइस्ट एक तिब्बत निवासी बौद्ध—योगी के शिष्य थे. उन्हों ने ३० वर्ष के लगभग तिब्बत मे रहकर बौद्ध मत के सिद्धान्तों को पढा रूस देश के एक पथिक ने कुछ समय हुआ कि उन के विद्याध्ययन की अवस्था का पूर्ण बर्णन लिखा है और सारे पण्डित लोग इस बात में सहमत हैं कि ईसाई मत एक प्रकार का बौद्धमत ही है, विद्याध्ययन के पीछे जब ईसा मसीह स्वदेश को जाने लगे तो उन्हों ने अपने गुरू से कह दिया था कि मै पशु हिंसा और मांस आहार के अतिरिक्त और सम्पूर्ण तत्व आप के मत के प्रचलित करूगा ।

ईसा मसीह के पुरुषार्थ को देखना चाहिये कि उन्हों ने उस समय में जब न रेलथी न आगबोट, केवल धर्म के तत्व जानने के अभिप्राय से कितने दूर देश का देशाटन किया और इस देशाटन में कितना परिश्रम उन को उठाना पड़ा होगा ।

की शिक्षा देकर धर्म प्रचार के लिये अन्य स्थानों में भेजना चाहिये पहिले उच्च जाति के पुरुषों को ढूंढा, उन के न मिलने पर कई मछुओं को शिष्य बनाया और उन से कहा कि यदि तुम मछली पकड़ना छोड़ कर मेरे साथ रहो तो मछलियों के स्थान में मनुष्यों का अहेर करने के योग्य होजाओगे इसी रीति से बारह मनुष्यों को अपना शिष्य बनाकर हज़रत ईसा ने उन को अपोसल अर्थात् "ईश्वर प्रेषित" की पदवी दी थी परन्तु शोक का स्थान है कि उन में से ही एक ने थोड़े द्रव्य के लालच में आकर हज़रत ईसा को उन के शत्रुओं के हाथ बेचडाला जिस का संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार से है, जब हज़रत ईसा के अनुगामी अधिक होगये तब उन्हों ने यहूदियों के पवित्र स्थान जेरूसलम नामी नगर में धूमधाम के साथ जाना चाहा हज़रत ईसा ने दो चेलों से कहा कि एक खर अर्थात् गधा किराये करके ले आओ--जेरूसलम में गधे की सवारी बहुधा बादशाह और बड़े २ मनुष्य काम में लातेहैं-- गधे पर सवार होकर हज़रत ईसा ने जेरूसलम में प्रवेश किया उन के शिष्यों ने अपने वस्त्र और वृक्षों के हरे पत्ते इत्यादि मार्ग में बिछा दिये थे और सहस्रों मनुष्यों की भीड़भाड़ साथ होगई थी उस भीड़ में यह बोली दीजाती थी कि "भला हो यहूदियों के बादशाह हज़रत ईसा का" इन बातों से जेरूसलम के मंदिर के पादरी ईर्षा से और अध्यक्ष पोलिटिकेल कारणों से अप्रसन्न हुए, उन्हों ने हज़रत ईसा को कहा कि तुम अपने साथियों को इन बातों के करने से रोको-परन्तु हज़रत ईसा ने रोकना अस्वीकार किया इस पर बड़े पादरी ने तीस रुपया घूंस अर्थात् रिश्वत देकर ईसा के एक शिष्य जूडाज़ नामी के द्वारा उन को पकड़वाया उस समय सम्पूर्ण शिष्य भाग

गये हज़रत ईसा जुडिया के न्यायाधीश पाइलेट नामी के सन्मुख लाये गये जहां से उन को सूली चढ़ाने की आज्ञा हुई।

हज़रत ईसा ने तीन वर्ष के लगभग उपदेश करने के पश्चात् सूली पाई–उन का उपदेश बहुधा मुख के द्वारा हुआ करताथा जिस को सेन्ट मैथ्यूज़-सेन्ट पोल इत्यादि ने लिख कर इन्जील के नाम से प्रसिद्ध किया है. उस में बहुधा यह लिखा है कि जो २ बातें हज़रत ईसा से पहिले वाले पैग़म्बरों ने कहीं थीं वे सम्पूर्ण हज़रत ईसा ने पूरी की और इन बातों को मोजिज़ा अर्थात् चमत्कार कहा गया है इन में से बहुत सी बातें साधारण और तुच्छ भी हैं. बपतिस्मे की रीति वा त्रिमूर्त्तिवाद पर और मुक्ति के हेतु हज़रत ईसा पर विश्वास लाने का पूर्ण उपदेश किया जाता है ॥

ईसाई मत के त्रिमूर्तिवाद पर बहुधा मनुष्य बहुत सोच बिचार और बाद बिवाद किया करते हैं और उसी मत के बहुत से मनुष्य सर विटस इत्यादि ने आदि से ही न मानने योग्य समझा है इन ईसाई महाशयों को यूनिटेरियन के नाम से पुकारते हैं ॥

हज़रत ईसा की मृत्यु के पीछे सेन्ट पोल इत्यादि के परिश्रम से उन के मत को बहुत उन्नति हुई परन्तु हज़रत पोप के बलवान् होने पर धीरे २ बहुत से अत्याचार फैल गये जिन के दूर करने के लिये जर्मनी के रहनेवाले मार्टिन लूथर ने अनेक परिश्रम उठा कर और पोप जैसे बलवान् को, जिस के आधीन सम्पूर्ण ईसाई बादशाह थे नीचा दिखला कर, ईसाई मत की सुधारने योग्य बुराइयों को दूर करना चाहा. यद्यपि प्राचीन बिचारवालों ने जिन को रोमैन क्याथोलिक कहते हैं इस की बात को नहीं सुना और उस से बिरुद्धता

की तो भी समझदार मनुष्यों का एक बहुत बड़ा समूह जिस को प्रोटेस्टेन्ट कहते हैं लूथर का सहायक होगया, जिन की सहायता से उस ने रीति अनुसार सामाजिक उन्नति के नियम स्थापित किये. लाखों रुपया और सहस्रों मनुष्य इस काम में एकत्र हुए, धर्म के साथ सम्पूर्ण सांसारिक उन्नतियां भी प्राप्त हो ही जाया करती हैं–निदान लूथर के धर्म परिवर्तन के पश्चात् ईसाई बादशाहों के राज्य भी फैलने प्रारंभ हुए हिन्दुस्थान में भी पुर्त्तगालियों, फ्रांसीसियों और अंगरेज़ों का आना हुआ और व्योपार करते २ यहां अंगरेज़ों का राज्य होगया. राज्य के साथ उन का ईसाई मत भी आया और जिस प्रकार मुसलमानी राज्य में कबीरजी, गुरू नानक साहिब, चैतन्यजी इत्यादि प्रगट हुए, इसी प्रकार से अंगरेज़ी राज्य में ब्रह्म समाज, आर्य समाज इत्यादि धर्म समाजें स्थापित हुईं ॥

। ब्रह्म समाज ।

राजा राममोहनराय साहिब का सन् १७७४ ई० में बंगाले में ब्राह्मणों के एक पवित्र कुल में जन्म हुआ. आदि से ही मत मतांतर में उन को बहुत अनुराग था और छोटी ही अवस्था में उन्हों ने फारसी, अर्बी, संस्कृत और अंगरेज़ी का बोध करलिया था और उसी व्यवस्था में उन्हो ने अपने मत के बिचार एक छोटी सी पुस्तक के रूप में छपवाये थे, जिस पर उन के माता पिता इतने अप्रसन्न हुए कि उसी छोटी अवस्था में उन को अपने घर से निकलकर देशाटन करना पड़ा, जिस के हेतु उन को शारीरिक दुःख तो हुए परन्तु मत का बोध और भी अधिक होगया इस देशाटन के पश्चात् उन्हों ने सर्कारी चाकरी ग्रहण करली और उस में अपने प्रबंध की योग्यता और सचाई इत्यादि से बहुत प्रशंसा और

नाम प्राप्त किया. इस समय में वे मत के सुधार में भी पूरे लगे रहे जिस का फल यह हुआ कि सन् १८३० ई० में राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज स्थापित की. उन को सचाई की सच्चे मन से खोज थी जिस के हेतु उन्हों ने बाईबल कुरान और वेदों को पढ़ा और यह निश्चय किया कि परमेश्वर की एकता का वृत्तान्त और जीव की उन्नति की रीतियां उन में लिखी हैं. उन्हों ने मिस्टर आदम और कई दूसरे यूरोपियन और देशी महाशयों को अपने सहमत बनालिया था. ये सब महाशय प्रत्येक रविवार को एकत्र होकर धर्म चर्चा किया करते थे ॥

बहुत काल तक ब्रह्म समाज में वेद बहुत सन्मान और आदर की दृष्टि से देखे जाते रहे सन् १८३८ ई० में बाबू देवेंद्रनाथ ठाकुर का चित्त धर्म की ओर लगा और उन्हों ने राजा राममोहनराय के उद्योगों में हाथ बटाना चाहा उन्हों ने एक तत्व बोधनी सभा स्थापित की एक छापाखाना बनाकर एक समाचार पत्र प्रकाशित किया और चार ब्राह्मणों को काशी में वेदों के तत्व को भले प्रकार जानने के लिये भेजा— परन्तु जब ब्राह्मण काशीजी से लौटे तो उन्हों ने वेदों के लिये सम्मति अच्छी नहीं दी. बाबू देवेंद्रनाथ ठाकुर ने स्वयं भी भले प्रकार से खोज की और ब्राह्मणों के सहमत हुए, इस समय से ब्रह्म समाज में वेदों का पहिले जैसा आदर नहीं रहा. इस के पीछे कई कारणों से ब्रह्मसमाज में आदि ब्रह्म समाज, साधारण ब्रह्म समाज और नव विधान के नाम से तीन शाखा होगई. बाबू केशवचंद्रसेन ने अपने उत्तम व्याख्यानों और पुस्तकों के द्वारा हिन्दुस्थान और इंगलिस्तान में ब्रह्म समाज को दृढ़ और प्रसिद्ध किया. आदि में राजा राम

मोहनराय ने एक आत्म सभा स्थापित की थी परन्तु यह सभा विरुद्धता के कारण शीघ्र नष्ट होगई. इस के पश्चात् उन्हों ने इस समाज की नींव डाली, जिस के हेतु इन का नाम आज तक प्रसिद्ध है ॥

राजा राममोहनराय ने माघ शुक्र ११ सम्वत् १८३० में एक विशाल मंदिर बनवाया और मंदिर में पूजा के जो नियम रक्खे गये थे, वे ब्रह्मसमाज के स्थापित करनेवाले के मत के सिद्धान्तों का पूरा और सच्चा फ़ोटो अर्थात् चित्र हैं हम ब्रह्म मंदिर की. धर्म स्मृति में से थोड़े से नियमों का भाषा अनुवाद करके पाठकों की भेट करते हैं ॥

१ इस मंदिर में केवल एक पारब्रह्म परमेश्वर की जो सत्य, सार और स्थिर है उपासना की जावेगी जिस में बिना किसी प्रकार की रोक टोक के प्रत्येक मनुष्य को धर्म भाव से प्रीति पूर्वक शामिल होने का अधिकार होगा ॥

२ इस में कोई चित्र वा मूर्ति वा कोई पदार्थ ऐसा नहीं रक्खा जावेगा जिस को किसी समय ईश्वर के स्थान में माने जाने का भय होसके ॥

३ इस में किसी जीव की हत्या नहीं की जा सकेगी और न इस के भीतर अति आवश्यकता बिना खाने पीने की आज्ञा दी जा सकेगी ॥

४ किसी ऐसे जीव वा जड़ पदार्थ के लिये जिस की दूसरे मत के लोग पूजा करते हों घृणा और द्वेष युक्त शब्द काम में न लाये जावेंगे और न उन का ऐसे शब्दों के साथ वर्णन किया जावेगा ॥

५ मंदिर में केवल ऐसे उपदेश दिये जावेंगे जिस से सृष्टि

कर्त्ता का ध्यान करने की ओर अधिक रुचि हो शुभाचरण और मित्रभाव बढ़े और अनेक प्रकार के मत मतांतर वाले मनुष्यों में प्रीति और मेल दृढ़ हो इत्यादि ॥

आज कल की ब्रह्म समाज के नियम निम्न लिखित हैं ॥

। ब्रह्म धर्म के नियम ।

१सम्पूर्ण सृष्टि का कर्त्ता एक है जो सर्वान्तर्यामी, नित्य और द्विविध भाव से रहित है.

२ वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, न्याई, पवित्र, दयालु, सर्व व्यापक और सर्व दर्शी है.

३ मनुष्य का जीव अमर है और अपार उन्नति करने की योग्यता रखता है ॥

४ जगदीश्वर सब का पिता है और सम्पूर्ण स्त्री और पुरुष भाई बहिन के समान हैं ॥

५ अपने जन्म भर सम भाव वर्तना और प्राणी मात्र में प्रीति रखना जीव का अंतिम कारण है ॥

६ इस अंतिम कारण के अनुसार वर्ताव करके जीव अपने और औरों के हेतु लाभ वा हानि कारक बनता है ॥

७ कोई पुस्तक वा मनुष्य भूल से रहित और पापों से पीछा छुड़ाने के पूर्ण योग्य नहीं है ॥

८ मानसिक ध्यान और ईश्वरेच्छानुसार मन वचन और कर्म से वर्त्ताव करना सच्ची प्रार्थना है ॥

बम्बई अहाते में बहुत से विद्वानों ने ब्रह्म समाज के स्थान में प्रार्थना समाज के नाम से सभाएं बनाई, जिन में नियम ब्रह्म समाज के नियमों के अनुसार ही हैं परन्तु जाति के बंधन को नहीं तोड़ा गयाहै ॥

। संक्षेप वृत्तान्त आर्य समाज ।

सन १८७० ई० के लगभग स्वामी दयानंद सरस्वती अपने गुरू स्वामी विरजानंदजी सरस्वती मथुरा वृन्दावन निवासी से विद्याध्ययन करने के पश्चात् मौन वृत्ति धारण करके केवल एक कौपीन अर्थात् लंगोटी लगाकर गंगाजी के तट पर विचरते थे, उनके वैराग्य और संस्कृत विद्या का वृत्तान्त सुन कर राजा जयकृष्ण दास साहिब चन्दोसी मुरादाबाद के रहनेवालों ने बहुत उद्योग करके अपने पास बुलाया और कई सौ रुपये की पुस्तकें केवल इसी लिये मोल लीगई कि, धर्म्मोन्नति के अभिप्राय से उन का भाषा में उल्था छपवाया जावे बहुत काल पश्चात् स्वामीजी ने कानपुर, फर्रुखाबाद इत्यादि स्थानों में गमन करके वहां के धनाढ्य पुरुषों के द्वारा कई संस्कृत पाठशालाएं स्थापित कीं जहां विद्यार्थियों को मत संबंधी पुस्तकें संस्कृत में पढ़ाई गईं उस में उचित सफलता न देख कर स्वामीजी ने समय के प्रभाव पर ध्यान देकर भ्रमण करते हुए व्याख्यान देना आरंभ किया और चांदापुर इत्यादि स्थानों पर कई मतों के पुरुषों से वाद विवाद भी किये जिन में उन को भले प्रकार सफलता हुई ॥

स्वामीजी मूर्तिपूजन का खंडन बहुत किया करतेथे और वेदों को ईश्वर कृत मानकर उन की व्याख्या अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, निघंट आदि के साधनों से शास्त्रानुरोधित नियमों पर करके कहतेथे कि, सम्पूर्ण विद्याओं के बीज वेदों में विद्यमान हैं, स्वामीजी ने ऋग्वेद का प्रायः तीन चतुर्थांश भाषा अनुवाद कर लिया था और उन की बनाई हुई तीन पुस्तकें आर्यसमाज और दूसरे मतों के खोजने वालों में अच्छी तरह प्रचलित हैं ॥

१ गोकरुणानिधि-जिस में गौ आदि पशुओं की रक्षा पर बहुत कुछ कहा है ॥

२ सत्यार्थप्रकाश-जिस में वेदोक्त नियम और आज्ञाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त, स्वामीजी का सिद्धान्त और अनेक प्रकार के मत मतांतरों का खंडन मंडन का वर्णन किया गया है ॥

३ वेदभाष्य भूमिका-अर्थात् वेदों के अनुवाद की भूमिका ॥

स्वामीजी का नाम सुनकर ब्रह्मसमाज लाहौर ने उन को निमंत्रण दिया और अपने प्रबंध से उन के व्याख्यान करामे जब इन के कई व्याख्यान ब्रह्म समाज में हो चुके जिन से संम्पूर्ण लाहौर में एक प्रकार की हल चल मच गई तब बहुत से महाशय इन के सहायक और सहमत होगये उन्हों ने अपने प्रबंधसे स्वामीजी को ठहराकरके व्याख्यान कराये जिस का फल यह हुआ कि, दश नियम बनाये जाकर लाहौर में प्रबल आर्यसमाज स्थापित हुई और इसी प्रकार से सूबे पंजाब, पश्चिमोत्तरदेश, राजपूताना इत्यादि में इन्हीं नियमों के अनुसार समाजें स्थापित होनी आरंभ हुई आर्यसमाज के दश नियम यह हैं ॥

१ सब सत्य विद्या और सत्य विद्यासे जो पदार्थ जाने जातेहैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

२ ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है-उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

३ वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है. वेदका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है ॥

४ सत्य ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

५ सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ॥

६ संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

७ सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये॥

८ अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये॥

९प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में तत्पर रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सर्व स्वतंत्र रहें ॥

कुछ काल तक समाज अच्छी तरह चलता रहा और पीछे से सभासदों में कई प्रकार की विरुद्धता के कारण झगड़ा होने से पंजाब में कई २ स्थानों में दो २ समाज होगई ॥

॥ थियोसोफिकेल सोसाएटी ॥

अर्थात्

। तत्त्वविवेचक समाज ।

कर्नल ओलकट साहिब और मैडम ब्लैवेटस्की के उद्योग से तत्त्वविवेचक समाज की जड़ हिन्दुस्थान में जमी जो संस्कृत प्राचीन पोथियों का अनुवाद इत्यादि करके साधारणधर्म की

ओर ध्यान दिलाने का उद्योग करतेहैं उन के तीन नियम नीचे लिखे अनुसार हैं ॥

१ एक ऐसे केन्द्र का स्थापित करना जिस में सम्पूर्ण सृष्टि के मनुष्य जाति, मत और समाज का पक्षपात छोड़ कर भाइयों के अनुसार एकत्र हों और एक दूसरे को आत्मा के स्थान में एक समझें ॥

२ आर्य और दूसरी पूर्वी विद्याएं मत और शास्त्रों को सोच विचार और जिज्ञासा के साथ पढ़ना और ऐसे पठन की आवश्यकता वा लाभ को निश्चय करना और प्रकाश करना ॥

३ विश्व और मनुष्य जाति की गुप्त शक्तियों का निरूपण करना ॥

सन् १८८५ ई० से धर्म के अंग राजनीति संबंधी बातों पर विचार करने के लिये एकसभा "इन्डियन नेशनल कांग्रेस" अर्थात् (**भारतीयराष्ट्रीयसभा**) के नाम से स्थापित हुई जो प्रत्येक वर्ष हिंदुस्थान के विविध स्थानों में एकत्र हुआ करतीहै, उसी समय पर ही सन् १८८७ ई० से एक सभा "**इन्डियन एसोशैल कान्फ्रेंस**" (**भारतीय सामाजिक मेला**) के नाम से आरंभ हुईहै जिस में बहुधा रीत भांति के सुधार पर बिचार किया जाताहै, उस सभा के अनुसार कई जातियों में रीत भांति और विद्या संबंधी विचार करने को प्रति वर्ष सभाएं होने लगी हैं, जिन को बहुधा कान्फ्रेन्स के नाम से पुकारते हैं ॥

जब आर्यसमाज ने मूर्ति पूजन आदि का खंडन आरंभ किया तब मूर्तिपूजा आदि के मानने वालों ने अपने धर्म की रक्षा के हेतु "**भारतधर्म महामंडल**" की नीव जमाई और कई स्थानों में "**सनातनधर्म सभा**" के नाम से सभाएं स्थापित हुईं ॥

। संक्षिप्त वृत्तान्त धर्ममहोत्सव ।

ऊपर लिखीहुई सम्पूर्ण सभाओं और सोसायटियों के योग्य महाशयों और दूसरे धर्म के खोजने वालों और धार्मिक पुरुषों के द्वारा सन् १८९५ ई० में "धर्ममहोत्सव" प्रगट हुआ जिस का मुख्य प्रयोजन यह है कि, सम्पूर्ण देश के चुने हुए बुद्धिमान् और योग्य पुरुष प्रति वर्ष वा उचित समय पीछे अपनी सामान्य आवश्यकताओं पर विचार करें और मतमतांतर के झगडों को छोडकर धर्म की उन्नति में तत्पर हों ॥

पहिला मेला धर्ममहोत्सव का अजमेर में २६–२७ और २८ सितम्बर सन् १८९५ ई० को हुआ जिस में नीचे लिखे हुए मतों के महाशयों ने प्रीतिपूर्वक अपने २ सिद्धान्तों को वर्णन किया ॥

१–शैवमत.
२–वैष्णव मत.
३–निम्बार्क संप्रदाय.
४–वल्लभाचार्य संप्रदाय.
५–रामानुजसंप्रदाय.
६–वेदान्तमत.
७–ब्रह्मसमाज.
८–आर्यसमाज.
९–प्रार्थनासमाज.
१०–सिक्खमत
११–राधास्वामीमत.
१२–जैनमत.
१३–मुसल्मानी मत.
१४–ईसाई मत

नीचे लिखे प्रश्नों पर सोच विचार किया गया था ॥

१–परमात्मा,
२–जीवात्मा,
३–पुनर्जन्म,
४–पापपुण्य,
५–शारीरिकधर्म्म,
६–गृहस्थधर्म्म,
७–सामाजिकधर्म्म,
८–आकाशवानी,
९–अवतार,
१०–मोक्ष,

इस प्रथम मेलेकी संक्षेप रिपोर्ट अंगरेजी और उर्दूमें छपीथी॥

दुसरा मेला धर्म्म महोत्सव का २६ से २९ दिसम्बर सन् १८९६ ई० पर्य्यंत लाहौर में हुआ जिस में नीचे लिखे मत मतान्तरों के लोगों ने प्रीतिपूर्वक अपने २ सिद्धान्त नीचे लिखे छः (६) प्रश्नों को लेकर वर्णन किये ॥

१–सनातनधर्म्म,
२–आर्यसमाज,
३–ब्रह्मसमाज,
४–सिंहमत,
५–थियोसोफिकेल सोसाएटी,
६–ईसाईमत,
७–मुसाईमत,
८–मुसल्मानीमत,
९–फ्री थोट,

(६) प्रश्न नीचे लिखे अनुसार थे,

१–मनुष्य की शारीरिक मानसिक और आत्मिक व्यवस्था.

२–परलोक अर्थात् मनुष्य की मृत्यु के पीछे की व्यवस्था.

३–संसार में मनुष्य के जन्म लेने का मुख्य प्रयोजन क्या है और वह किस प्रकार पूर्ण हो सक्ता है.

४–कर्म्म का फल इस लोक और परलोक में क्या होता है.

५–ज्ञान प्राप्त होने के उपाय. इस मेले की ब्योरेवार रिपोर्ट २८० पृष्ठों की छप चुकी है.

तीसरा मेला धर्म्ममहोत्सव का "शिवगिरि शांति आश्रम" गुजरात, पंजाब में एक महीनेतक अर्थात् माघकी पूर्णमासी से पौष पूर्णमासी पर्यंत (९ दिसंबर सन् १८९७ ई० से ७ जनवरी सन् १८९८ ई० तक) रहा कई २ मत मतान्तरों के बड़े २ विद्वान् संत महात्मा और धार्मिक पुरुष दूर २ स्थानों से पधारे थे और नीचे लिखे प्रश्नों पर वर्त्तमान समय की व्यवस्था का ध्यान रखकर सोच विचार किया गया था.

१–मनुष्य के लिये कौन २ से कार्य अत्यावश्यक हैं और वे किस प्रकार किये जासक्ते हैं.

२–उपदेशकों में क्या २ गुण होने की आवश्यक्ता है और उन से सर्वसाधारण को किसप्रकार लाभ पहुँच सक्ता है.

३–धर्म्म किस प्रकार सफलता के साथ फैलाया जा सक्ता है.

इस मेले की रिपोर्ट भी कई भाषाओं में छपी है अब धर्म्ममहोत्सव का मेला आश्रम में सदैव प्रतिवर्ष हुआ करेगा ॥

। धर्ममहोत्सव के प्रयोजन वा मनोरथ ।

१ धर्म की ओर रुचिदिलाना ।

यद्यपि आज कल असंख्य मत मतांतर संसार में हैं और नवीन होते जाते हैं परन्तु फिर भी इन दिनों के पढ़े लिखे महा-

य बहुधा तो धर्म को निरर्थक वस्तु समझते हैं—वा नीति का
स होना और इसीकारण से इस ओर ध्यान नहीं देते. धर्म-
होत्सव का मुख्य प्रयोजन यह है कि, मनुष्य मात्र के चित्त में
र्म की ओर रुचि बढ़ाना ॥

। २ धर्म प्राप्ति के हेतु वर्ताव करने योग्य सहज रीतियाँ निकालनी ।

धर्म के नियम और ऊपरी दिखावटी बातें आपस में इतनी
मेलादी गई हैं और ऐसी कठिन बोली और शब्दों में उन को
र्णन किया जाताहै कि बहुधा महाशय तो धर्म की ओर ध्यान
देने का विचार ही नहीं करते और जो विचार करते हैं तो सम-
झ नहीं सके या अशुद्ध समझने के हेतु हानि उठाते हैं. धर्म-
महोत्सव ऐसी रीतियां निकालेगा जिन से प्रत्येक मनुष्य धर्म के
उत्तम रहस्यों को भली भांति समझकर भेदू बन सके ।

। ३ धर्मसंबंधी बातों में सहनशक्ति प्राप्त करना ।

धर्म की बातों में पक्षपात इत्यादि कारणों से बहुधा लड़ाई
झगड़े होजाते हैं—जिस के कारण शांतिस्वभाववाले पुरुष दूसरे
मतवालों से मिलना ही नहीं चाहते और इस हेतु वे अल्प
ज्ञानवाले बने रहते हैं. धर्ममहोत्सव में सब से बड़ा नियम यह
है कि, कोई मनुष्य दूसरेपर प्रत्यक्ष वा संकेत से भी आक्षेप
कदापि नहीं करने पाता, इस कारण से सहनशक्ति स्वयं बढ़
जाती है जैसा कि, अजमेर के धर्ममहोत्सव में सहस्रों मनुष्यों ने
अपने नेत्रों से देखा है, सभाविसर्जन होजाने के पीछे भी सहन-
शक्ति और आपस की प्रीति की यह व्यवस्था थी कि, नाथद्वारे
के अधिकारीजी ने सम्पूर्ण हिन्दू, आर्य, ब्रह्मो, मुसलमान, ईसाई
डेलीगेट अर्थात् पुरस्कृत महाशयों को अपने यहां टी पार्टी में

निमंत्रण किया और आर्यसमाज अजमेर ने ब्रह्मोपदेशक मिस्टर नगरकर को अपने मंडप पर बुलाकर व्याख्यान कराया ॥

। ४ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के उपाय करने का उद्योग करना ।

जब विना पक्षपात के विद्याभिलाषी लोग सम्पूर्ण मतों के तत्वों को सुनेंगे और उन को अपने मन में तोलेंगे तो अवश्य मत के सच्चे तत्व उन को ज्ञात हो जावेंगे और ज्ञात होनेपर उन्हीं के अनुसार चलने लगेंगे, जिस का फल अवश्य यह ही होगा कि शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होकर सच्ची शान्ति फैलेगी ॥

इस अंगरेजी राज्य के सुख चैन और स्वतंत्रता के समय में जब कि, असंख्य योग्य महाशय अपना प्रिय समय, द्रव्य और मन अपने २ मत की उन्नति की ओर लगारहेहैं, प्रत्येक मत के शुभचिंतक का धर्म है कि, यथाशक्ति सहायता करें, जिस से और न्यायकारी परमात्मा की सहायता से सामाजिक उन्नति में मन चाही सफलता होकर सच्चे धर्मकी उन्नति हो और उस के द्वारा सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति हो ॥

। सामाजिक उन्नति से पारलौकिक धर्म की भी उन्नति होती है ।

जिस प्रकार से शरीर में मन एक ऐसा मिश्रित पदार्थ है कि, वह स्थूल शरीर और इन्द्रियों से मिलकर तुच्छ कर्मों को करता है और बुद्धि और आत्मा से मिलकर उत्तम कर्म करताहै, उसी प्रकार से सामाजिक धर्म को भी समझना चाहिये-उसके

उत्तम प्रबंध से लौकिक धर्म की भी मनचाही उन्नति होसक्ती है और पारलौकिक धर्म की भी-निदान जिस समय हिन्दुस्थान में सामाजिक प्रबंध उत्तम था उस समय सांसारिक उन्नति के अतिरिक्त पतञ्जलि और व्यास जैसे ऋषी भी जन्म धारण करतेथे परन्तु जब कि, सामाजिक प्रबंध को चलाने वाले योग्य पुरुष अस्त होगये, आत्मिकविद्या के फैलाने वाले पुरुष भी न रहे और यदि योग्य पुरुष सामाजिक धर्म को अब फिर भी उत्तम रीति से फैलावें तो आत्मिकविद्या के जानने वाले और फैलाने वाले महाशयों की भी संख्या बढ़नी संभव है ॥

इस कारण प्रत्येक सांसारिक और आत्मिक उन्नति चाहने वालों का धर्म है कि, तन, मन और धन से सामाजिक धर्म के स्थापित करने और चलाने में सहायता करें ॥

। साधारण धर्म्म ।

। दूसरा भाग ।

। पारलौकिक धर्म्म ।

। पारलौकिक धर्म्म की व्याख्या ।

इस संसार में प्रत्येक जीव जब जन्म धारण करता है, तो कुछ काल तक सम्पूर्ण शक्तियां धीरे २ बढ़नी आरम्भ होती हैं और कुछ समय तक उत्तम अवस्था में रहती हैं-फिर शनैः २ निर्बल होना आरम्भ होता है और अंत में शरीर-अर्थात् पंच महा भूत की बनी हुई काया-नष्ट होजाता है कौन २ सी शक्तियां किस २ समय और किस २ प्रकार से बढ़ती और घटती हैं, और जीव कहां से आता है और फिर कहां चला जाता है, किस प्रकार आता है, और किस प्रकार जाता है, इन सब बातों को ठीक २ जानने और उन से लाभ उठाने, और दूसरों को बतलाने, और उन को उन के अनुसार चलाने को, पार लौकिक धर्म्म समझना चाहिये ॥

। पंचमहाभूतशरीर का जन्म और मौत ।

यदि शारीरिक धर्म का ठीक २ पालन किया जावे, तो इस स्थूल शरीर का कोई न कोई विभाग पचास (५०) वर्ष की अवस्था तक उत्पन्न होता और वृद्धि पाता रहता है, और यदि यथोचित साधन न रक्खा जावे, तो जिस समय तक रक्खा जावेगा, उसी समय तक यह अवस्था रहेगी; इस के पश्चात् उतने ही समय तक धीरे २ कोई न कोई विभाग हर समय निर्बल होना, और मरना आरम्भ होजाता है, और जब

नहीं है, और अब दूसरे विभाग पार लौकिक धर्म्म में आप कहते हैं, कि सन्यासी महात्मा युद्ध विद्या की अभ्यासिक रीतियां सिखलाया करते थे, और वास्तव में सन्यासी संसार को मिथ्या और माया का जाल कहते हैं. और किसी काम के भागी नहीं होते हैं. तो युद्ध के कामों में भागी होना कैसा!

समाधान–कांग्रेस और कान्फ्रेन्स वाले मुख द्वारा वा लिख कर, चाहे जैसे कहें कि धर्म्म से उन को कुछ संबंध नहीं. फिर भी धार्मिक पुरुष ही उन का काम चला रहे हैं; और जब कभी अधर्म्म पर चलने वाले मनुष्य उन के काम में मिले हैं, तब बहुत हानि उठानी पड़ीहै. धर्म्म भाव से जो कार्य कौड़ियों से होता है वह दूसरी रीतियों से सहस्रों रुपये व्यय करने पर भी वैसा उत्तम नहीं हो सक्ता ॥

वास्तव में सच्चे धर्म्म का अभाव होने, और मत मतांतरों में पक्षपात, और नये २ झगड़े देख कर, कई मनुष्यों ने धर्म्म के मुख्य २ अंगों के सुधारनेका। दूसरी रीतियों और नामों से आरंभ कर दिया है–निदान यह शंका कदापि नहीं करनी चाहिये कि उन सुधारों को यथार्थ में भी धर्म्म से कुछ संबंध नहीं है ॥

इसी प्रकार ऋषियों के समय में सन्यासाश्रम से यह प्रयोजन था, कि गृहस्थ धर्म्म के कर्म्मों को छोड़ कर अपने बाल बच्चों कुटम्बियों और संबंधियों के मोह से निर्लेप हो कर जो २ लाभ अपनी योग्यता और बाहु बल से उन को पहुंचाए जाते थे, वे लाभ प्राणीमात्र को पहुंचाए जावें. अपने छोटे से कुटुंब को त्याग के, सृष्टि मात्र को अपना कुटुंब पृथ्वी को माता–और परमात्मा को पिता–और सम्पूर्ण मनुष्यों को भ्राता अर्थात् भाई–और दूसरे जीवों–पशु,पक्षियों इत्यादि को अपना सम्बन्धी समझा जावे ॥

निदान उस आश्रम में निज के लाभ पर दृष्टि कुछ भी नहीं रहती थी–अतएव प्रत्येक काम में देशी और जाति की भलाई को दृष्टि में रखने के हेतु, बड़े २ भारी उद्यमों में सामाजिक उन्नति के उत्तर दाता मनुष्य सन्यासियों से सम्मति लिया करते थे; और बहुधा उन्हीं की सम्मति पर चला करते थे–राज्यसभा में भी सन्यासियों का बहुत आदर सत्कार हुआ करता था–लड़ाई झगड़ों के समय दूत का काम उन से लिया जाता था, और दोनों ओर वाले उन पर भरोसा रखते थे, नारद जी इत्यादि ऋषियों का बहुत सी पुस्तकों में ऐसे कामों के करने का वर्णन देखने में आता है। युद्धविद्या को ऋषियों के समय में बड़े आदर से देखा जाता था और उस को जैसा कि वह वास्तव में भी है अति आवश्यक, लाभ दायक और उत्तम धन्धा समझते थे । विश्वामित्रजी ने वह उत्तम गुण महाराजा रामचंद्रजी को सिखलाया, और द्रोणाचार्य ने अर्जुन और दूसरे राज पुत्रों को उस की शिक्षा दी. धनुर्विद्या और उस के द्वारा जय को ऐसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था कि परशुरामजी, जिन्हों ने क्षत्रियों से बहुत युद्ध किया, और उन को जीता अवतार करके मानेजाते हैं. इसी प्रकार महाराजा रामचंद्रजी को रावण के पराजय करने के हेतु अवतार समझते हैं और उस पराजय को देशी शूरवीरता का नमूना समझ कर रामलीला नामी वार्षिक मेला कराया जाना आरम्भ हुआ है–कि प्रत्येक वीर पुरुष को उत्साह हो, और प्रत्येक अत्याचारी और दुःख देने वाले को चितावनी का प्रभाव होता रहे. श्रीकृष्णजी महाराज ने, जिन को सम्पूर्ण कला अवतार कहते हैं, प्रसिद्ध महाभारत की लड़ाई को कराया और अपनी राजनीति की समझ और धनुर्विद्या के दाँव

शारीरिक शक्तियां बहुत अधिक निर्बल होजाती हैं और मर-जातीहैं, तो जीव शरीर का त्याग कर देता है—परंतु आत्मिक शक्तियां सदा बढ़ती रहती हैं—निदान बाल्य और युवा अवस्था में शारीरिक शक्तियां, इन्द्रियां और उन के विषयों इत्यादि की ओर अधिक ध्यान रखना चाहिये—परंतु जब शारीरिक शक्तियों का घटाव आरम्भ हो, तो लालच और अधीर के साथ उन से काम लेना वा उन को बढ़ाने के उद्योग, सोच, और निरासपने में समय व्यर्थ व्यतीत करना उचित नहीं—किन्तु शारीरिक शक्तियों का उचित रीति से, मध्यम अवस्था में, बर्ताव करते हुए उन से अत्युत्तम अर्थात् मानसिक और आत्मिक शक्तियों की वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिये, कि जो स्वाभाविक भी प्रति क्षण बढ़ती रहती है—अर्थात् अवस्था के प्रथम विभाग (५०) पचास वर्ष तक लौकिक धर्म्म को प्रधान, और पारलौकिक धर्म्म को गौण अंग में समझना चाहिये; और दूसरे विभाग में पार लौकिक धर्म को प्रधान और लौकिक धर्म्म को गौण अंग में समझकर, समय का अधिक विभाग आत्मिक शक्तियों की ओर ध्यान देने में व्यतीत करना चाहिये ॥

।हिन्दुस्थान के ऋषियों के अनुसार समय का विभाग।

ऋषियों ने, जो सृष्टि के नियम और आत्मिक शक्तियों से भले प्रकार जानकार थे, अवस्था को चार विभाग में बांटा था:—

१ ब्रह्मचर्य्याश्रम.
२ गृहस्थाश्रम.
३ वानप्रस्थाश्रम.
४ संन्यासाश्रम.

इन में से प्रथम दो आश्रमों संबंधी आज्ञाएं, इस पुस्तक के पहिले विभाग, लौकिक धर्म्म, में वर्णन की गई हैं, और पिछले दो आश्रमों संबंधी आज्ञाएं इस दूसरे विभाग पारलौकिक धर्म्म में लिखी जावेंगी ॥

ऋषियों के उस समय में प्रत्येक बालक और कन्या, चाहे वे धनवान के हों—या दरिद्री के, गुरु कुल में जाकर, वीर्य्य की रक्षा करते हुए, और विद्या पढ़ते हुए, मनुष्य जाति की सम्पूर्ण शक्तियों को प्रगट किया करते थे. पच्चीस वर्ष की अवस्था के लगभग अपनी विद्या, बुद्धि और मन की इच्छा के अनुसार किसी व्यापार को ग्रहण करके, गृहस्थाश्रम में सम्पूर्ण सांसारिक सुख धर्म्मानुसार प्राप्त करते थे; फिर पचास वर्ष की अवस्था होने पर वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम में हो कर, गृहस्थ के संबंधों को धीरे २ त्याग करके, वन में, वा बस्ती के किनारे किसी एकांत स्थान में, निवास करते थे; और जिस २ विद्या में जो २ योग्य और गुणवान होते थे, वे ब्रह्मचारियों इत्यादि को उस विद्या के गुप्त भेद बतलाते थे—जैसे आयुर्विद्या के जानने और चाहने वाले समझदार शिष्यों को व्यवहारिक शिक्षा देते थे, और धनुर्विद्या के जानकार वीर और योद्धा ब्रह्मचारी पुरुषों को युद्ध के रहस्य और अभ्यासिक ऊंच नीच समझाते थे ॥

शंका—प्रथम भाग—लौकिक धर्म्म के अंतरगत सामाजिक धर्म्म के अध्याय में, हिन्दुस्थान की सामाजिक उन्नति के वर्णन में, आप ने नेशनल कांग्रेस को धर्म्म का राज्य नीति अंग और सोशल कान्फ्रेन्सों को धर्म्म वा जाति की उन्नति अंग कहा है, और वास्तव में वे सभाएं अपने नियमों में स्पष्ट रीति से कहती हैं कि मत मतांतर से उन को कुछ संबंध

पेचों से अर्जुन की सहायता और महाराजा युधिष्ठिर की जय कराई । जब सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध उत्तम न रहा, तब आश्रम भी बिगड़ने लगे, धर्म्म के नाम से अनेक प्रकार की असम्भव बातें और कहानियों से भरी हुई पुस्तकें, जान बूझ के वा समयाधीन, संस्कृत में लिखी गई, जिन के कारण सच्चे धर्म्म और उत्साह आदि गुणों से हट करके, मत मतांतरों के झगड़ों में लोगों की रुचि होगई है. प्रत्येक मतवाले ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये,नवी से नवी रीतियों से तरुण और अनभिज्ञ मनुष्यों को साधु बना कर, अपने विचारानुसार उन से काम लेना आरंभ किया—इस समय से सच्चे सन्यासी महात्माओं ने, जिन का सामाजिक और दूसरे सांसारिक कामों—विद्या पढ़ाने और हुनर सिखलाने इत्यादि में—केवल गौण अंग में संबंध था, इस ओर से ध्यान को हटाकर अपना सारा समय अपने मुख्य काम आत्मिक शक्तियों के जगाने में लगाना प्रारंभ किया, और यदि अब फिर सच्चा धर्म्म प्रगट होकर सामाजिक उन्नति का काम ठीक तरह आरम्भ हो तो ऐसे सच्चे सन्यासी महात्मा भी अवश्य प्रगट होजावेंगे, जो सामाजिक उन्नति के कामों में भी सहायता देवें और सच्चे सन्यास—योगाभ्यास—ज्ञान और मोक्ष आदि साधनों का भी उपदेश करें, जिन का संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है ॥

। दूसरा भाग ।

। पहिला अध्याय ।

। संन्यास धर्म्म ।

। संन्यास धर्म्म की व्याख्या ।

सन्यास एक संस्कृत शब्द है, जिस का अर्थ छोड़ना है, बोल चाल में संन्यास का अर्थ गृहस्थाश्रम के कर्म्म और स्वार्थ से भरी हुई इन्द्रियो और उन के विषय संबंधी कार्यों के छोड़ने—आत्मिक शक्तियों के बढ़ाने और उन के द्वारा सच्चे आनंद और शांति के प्राप्त करने को कहते हैं ॥

जिन कर्म्मों के करने से, इन्द्रियां मन और बुद्धि वश में रहे, परोपकार का स्वभाव पड़े, निरिच्छा वा धन प्राप्त हो, काम क्रोध लोभ मोह और अहंकार से सामना करने और उन के जीतने का पराक्रम उत्पन्न हो, सच्चा ज्ञान प्राप्त हो, उन सब कर्म्मों और शक्तियों के काम में लाने को सन्यास धर्म्म समझना चाहिये ॥

आनंद और उस के भेद और उन के त्याग करने की रीति ।

परमात्मा ने प्रत्येक जीव को अपने बचाव और उन्नति के लिये असंख्य शक्तियां दी है. मनुष्य के शरीर में वे संपूर्ण शक्तियां पूर्ण बल के साथ उपस्थित हैं; और वे सम्पूर्ण शक्तियां अपनी रक्षा और उन्नति के लिये प्रति क्षण अपने आहार की इच्छा करती रहती हैं; और उस आहार के मिलने पर एक

प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होती है—जैसे इन्द्रियां हर समय अपने आहार की इच्छा करती हैं—अर्थात् कान चाहते हैं, कि कुछ सुनते रहें; नेत्र देखते रहना चाहते हैं इत्यादि—और जिस प्रकार के शब्द, अच्छे हों वा बुरे, कान में पड़ते रहते हैं, उसी प्रकार के शब्दों को सुनने की इच्छा बढ़ती रहती है—और उन को सुन के प्रसन्नता होती है; और जिस प्रकार के पदार्थों को नेत्र बहुधा देखते हैं, उन्हीं को देखने की इच्छा करते रहते हैं और उन को देख कर प्रसन्नता प्रगट करते हैं।

। पहिला त्याग ।

कानों को बुरे शब्दों से हटाकर, अच्छे शब्दों में लगाने का स्वभाव डालना; और नेत्रों को बुरे पदार्थों से हटाके, उत्तम पदार्थों में लगाना—सन्यास धर्म्म में पहिला त्याग समझना चाहिये. जिन महात्मा पुरुषों ने इस त्याग के फल को प्राप्त किया है, वे इस त्याग के फल को चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होना कहते हैं—अर्थात् शरीर रूपी नगर में, जो इन्द्रियों के द्वारा कर्म्म का चक्र चल रहा है उस को वे अपने वश में कर लेते हैं॥

। दूसरा त्याग ।

इन्द्रियों के आनंद से अधिक आनंद मन के द्वारा प्राप्त होता है—निदान जांच से जाना गया है, कि जब मनुष्य अच्छे वा बुरे विचार में मग्न होता है, उस समय पास का भी शब्द सुनाई नहीं देता—नेत्रों के आगे धरा हुआ पदार्थ ही नहीं सूझता—इन विचारों को यदि वे बुरे हों तो अच्छों से बदलना सन्यास धर्म्म में दूसरा त्याग है जिस के प्राप्त होने पर स्वर्ग लोक की प्राप्ति कही गई है—क्योंकि उत्तम विचारों के

द्वारा सदैव अच्छे ही कर्म्म होते हैं जिन का फल सदैव सुख का देनेवाला होता है; और सुखही स्वर्ग का सच्चा लक्षण समझा गया है ॥

। तीसरा त्याग ।

चिर काल तक उत्तम विचारों में लगे रहने से, बुद्धि निर्मल और सात्विक होजाती है, और वह झूठे विचारों को ग्रहण करना कभी नहीं चाहती, इस अवस्था को त्याग का तीसरा पद समझना चाहिये; जिस के द्वारा सत्य लोक की प्राप्ति होतीहै-अर्थात् सचाई के आनंद में मग्न रहना होता है; और उस बुद्धि के बल से जिस विद्या वा अभ्यास की ओर ध्यान लगाया जाता है, उस में पूरी उन्नति होने लगती है और असंख्य सचाइयां प्रगट होजाती हैं ॥

। चौथा त्याग ।

जब बुद्धि अत्यंत सूक्ष्म होजाती है, उस समय उस के द्वारा जान पड़ता है,कि उस को सहारा देने वाली एक चैतन्य शक्ति है, जिस को जीवात्मा कहते हैं-उस चैतन्य शक्ति तक पहुंच के बुद्धि शांत होजाती है और जीवात्मा के स्वाभाविक गुण प्रगट होजाते हैं, और यह त्याग का चौथा और अंतिम पद समझना चाहिये. इस पद पर पहुंच कर,जीवात्मा के द्वारा, परमात्मा का अनुभव हो करके, ब्रह्म लोक की प्राप्ति कही गई है-अर्थात् ब्रह्म स्वरूप परमात्मा, जो सम्पूर्ण स्थानों में व्यापक और परिपूर्ण है, उस का अनुभव हृदय रूपी भूमि में होकर, भीतर वा बाहर सब स्थानों में उसी का प्रकाश दिखाई देने लगता है-इसी को महा आनंद ब्रह्मानंद इत्यादि नामों से कहते हैं वह सब से उत्तम आनंद इस हेतु से कहा जाता है, कि इस

से पहिले के सम्पूर्ण आनंद उद्योग से प्राप्त होते हैं, तिस पर भी सदैव रहनेवाले नहीं हैं—क्योंकि जिस समय उद्योग बंद कर देते हैं, तत्काल ही वे आनंद भी जाते रहते हैं—वरन प्रतिदिन उद्योग बने रहने पर भी एक नियत समय पश्चात्, वे आनंद बंद होजाते हैं—परंतु यह अंतिम आनंद जीवात्मा के स्वाभाविक गुणों के द्वारा प्राप्त होता है, जो गुण सदैव रहते हैं—क्योंकि जैसे जीवात्मा अनादि और अविनाशी हैं, ऐसे ही उस के गुण भी अनादि और अविनाशी हैं ॥

। त्याग की कठिनाइयां ।

प्रगट हो कि ऊपर लिखे आनंदों का त्याग करना, यद्यपि सुगम काम नहीं है, वरन अत्यंत ही कठिन है—परंतु चिरकालतक परिश्रम, जो धैर्य और वीरता से किया जावे, तो सफलता होनी सम्भव है—क्योंकि प्रथम तो अविद्या रूपी असावधानता के चिक से, यह भरोसा रहता है, कि प्रत्येक आनंद जिस में रस आता है, वही आनन्द सब से उत्तम है, इसी हेतु उस के त्याग की इच्छा नहीं होती ; और जब तक वह छोड़ा न जावे, उस से ऊंचे पद का आनंद प्राप्त होना असम्भव है; और यदि किसी महात्मा के उपदेश और सत्संग से यह विश्वास होकर कि वर्तमान आनंद से अधिक आनंद प्राप्त होना संभव है, उत्तम आनंद की इच्छा की जावे, तो वर्तमान आनंद का रस आड़ में आता है—अर्थात वारम्वार अपनी ओर खींचता है, और ध्यान को अपनी ओर से हटने नहीं देता—क्यों कि उसका स्वभाव पड़ाहुआ होता है ॥

। दृष्टान्त महाराजा भर्तृहरिजी ।

भर्तृजी राज्य को छोड़ साधु हुए थे, एक दिन रात के

समय वन में जारहे थे, चांदनी खिली हुई थी, मार्ग में किसी पथिक ने, जो इन से पहिले उस पथ में निकला था, पान की पीक थूकी थी, वह चांद की किरणों से एक सुंदर लाल सी दीखती थी. भर्तृजी की दृष्टि उस पर पड़ी, तो लालच के वश होकर उस को उठाना चाहा—परंतु यह विचार करके कि सारा राज्य ही छोड़ दिया, तो अब एक लाल को उठाकर क्या करेंगे, वैराग्य के वेग में आगे बढ़ गये—परंतु मन ने फिर दबाया, कि लाल को लेना चाहिये—अंत में थोड़े से पावँड़े चल कर, फिर लौट कर आए, जब उस मन कल्पित लाल को उठाने लगे तो उस की यथार्थ दशा जान पड़ी; और पीक के मेल से उंगली अशुद्ध हो गई, उस समय भर्तृजी ने मन को बहुत धिक्कार दिया उन का वाक्य है ॥

। दोहा ।

रत्न जड़ित मंडप तजे, तजी सहस्त्रों नार ।
अजहुं कामना नहिं तजी, हे मन तोहि धिकार ॥ १ ॥

दृष्टांत बिल्व मंगलजी ॥

यह महात्मा ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे—परंतु कुसंग के कारण एक वेश्या से प्रीति करके, दिन रात उस के घर पर पड़े रहते थे. एक दिन किसी धर्म्म सम्बन्धी कार्य के हेतु सब दिनभर घर में रहना पड़ा, रात्रि को अवकाश मिला, उसी समय अर्ध रात्रि को वेश्या के घर को चले, मार्ग में नदी आती थी, उस समय दैवयोग से कोई मृतक बहा चला आता था—ये समझे, कि प्यारी ने नौका भेजी है, उस पर चढ़ बैठे और नदी पार उतर गये. घर का द्वार बंद था और किसी ओर से घुसना सम्भव नथा,चारों ओर घर के घूमने लगे-

देवाधीन एक सर्प दीवारसे लटक रहा था. इन्होंने अपने काम विकार के कारण यह समझा, कि प्राण प्यारी ने मेरे ही निमित्त निसेनी लटकाई है—तुरंत उस को पकड़ के छत पर पहुंचे; और जब नीचे उतरने को कोई मार्ग न मिला, तो चौकमें कूद पड़े, कूदने का शब्द सुन के,वेश्या और उस के सम्बन्धी सब जाग पड़े. विल्व मंगलजी को देखकर,उन से पूछा, कि किस प्रकार नदी को पार किया और छत पर चढ़े उन से उत्तर सुन कर वेश्या के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, कि यदि विल्व मंगलजी को ऐसी प्रीति परमात्मा से हो जावे तो बहुत अच्छा हो. यह विचार उसने विल्व मंगलजी से कहा और कहते समय उस को ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ, कि वह विल्व मंगलजी से बोली, कि तुम जो चाहो सो करो, मैं तो इसी समय परमात्मा से प्रेम का संबंध आरम्भ करती हूं, विल्व मंगलजी पर बहुत कुछ प्रभाव हुआ—रात का शेष भाग दोनों ने परमात्मा की चर्चा में काटा; और भोर होते ही सांसारिक संबंधों को त्याग कर, और एक दूसरे से पृथक होकर, वन में चले गये. विल्व मंगलजी चिरकाल पर्यंत परमात्मा के प्रेम में मग्न होकर, भ्रमण करते रहे, एक दिन किसी नगर में पहुंचे—कई स्त्रियां नदी की तट पर स्नान कर रही थीं, इन की दृष्टि उन पर पड़ी और सच्चे त्याग और बहुत समय तक सत्संग में रहने पर भी उन का मन एक सुंदर स्त्री पर आसक्त हो गया, जब वह स्त्री स्नान करके चली, ये भी उस के पीछे हो लिये. जब स्त्री अपने घर में चली गई, तो ये ड्योढ़ी के द्वार पर बैठ गये; थोड़े समय पीछे, उस स्त्री का पति आया, वह बहुत भला मानस और साधु सेवा करने वाला था, उस ने विल्व मंगलजी को द्वार पर बैठा देखकर, स्त्री से जाकर

पूछा, कि साधु को भिक्षा क्यों नहीं दी? स्त्री भी पतिव्रता और सत्यवादी थी, उस ने सारा वृत्तान्त बिल्व मंगलजी के नदी से उस के पीछे २ आने का वर्णन किया. उस के पति ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने पर भी बिल्व मंगलजी को अपने चौबारे में लेजाकर उनका बहुत सत्कार किया—बात चीत करने से वे सच्चे साधु विदित हुए, तब मन में बहुत अचंभित हुआ कि क्या किया जावे एक ओर अपने नाम और आबरू का विचार था और दूसरी ओर साधु सेवाका--अंत में सांसारिक पदार्थों की असत्य और अल्पायु समझ कर साधु सेवा को उत्तम समझा—और सायंकाल को स्त्री से कहा, कि उत्तम शृंगार करके और भोजन का थाल लेकर, बिल्वमंगलजी के पास जा और उन की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरी कर. स्त्री यह सुनके आश्चर्य में हुई और सोचने लगी, कि यदि स्वामी की आज्ञा पालन नहीं करती हूं, तब तो पतिव्रत धर्म्म खंडन होता है और पालन करूं तो महा पाप में फँस तीहूं--अंत में उस ने पतिव्रत धर्म्म मुख्य समझ कर, सब शृंगार किया और उत्तम २ भोजन थाल में रख के, बिल्वमंगलजी के पास गई--परंतु मन में परमात्मा से प्रार्थना करती थी, कि जिस प्रकार आपने द्रौपदी की लज्जा रक्खी उसी प्रकार मेरी भी सहायता कीजिये! जब बिल्व मंगलजी के पास पहुंची, तो उस स्त्री और उसके पति की भक्ति और निश्चय को देख के, वे भयभीत हो गये—अपने भूले हुए चित्त को धिक्कार देकर, वश में किया; और स्त्री से कहा, कि दो सूइयां भी ले आओ. जिस समय स्त्री सूइयां लाई, बिल्व मंगलजी ने दोनों सूइयां अपनी दोनों आंखों में मार लीं--लोहू की धारा बहने लगी, और वे अंधे हो

गये. स्त्री ने घबरा के सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने पति से कहा, यह दौड़ा हुआ बिल्व मंगलजी के. पास आया और बहुत दीनता से बोला, कि हे महाराज ! जो कुछ दोष मुझ से या मेरी स्त्री से हुआ हो, वह क्षमा करके, आप कारण बतलाइये, कि आपने आपनी आखें क्यों फोड़ डाली? बिल्वमंगलजी ने हंसकर कहा,कि तुम दोनों परमात्मा के भक्त हो- तुम्हारे सत्संग और सच्ची भक्ति को देख के मेरा चंचल मन वशमें आ गया–तुम दोनों कृपा करके मेरे अपराध को क्षमा करो और इस कारण से, कि इस सम्पूर्ण दुःख का हेतु आखें थीं, मैं ने उन को दंड देना उचित समझा. उनको दण्ड देने में, जो कुछ क्लेश मुझ को हुआ, मैं उस के योग्य था–क्योंकि मैं ने अपने गुरू की आज्ञा पालन नहीं की–उन्होंने कहा था, कि बुराई के कारण को समझकर, उस को सदैव रोक देना चाहिये और यह शिक्षा देते समय उन्हों ने एक महात्मा का इतिहास भी सुनाया था, जो संक्षेप से इस भांति है ॥

। एक महात्मा का इतिहास ।

एक संन्यासी महात्मा किसी साहूकार के घर टिके हुए थे, एक दिन साहूकार के पांव में उत्तम पगरखियां देख कर, उन के मुंह से निकला, कि ये पगरखियां बहुत सुंदर हैं– साहूकार ने तुरंत उस प्रकार का एक जोड़ा बनवा के उन से प्रार्थना की, कि उस को धारण करें–महात्मा ने कहा,कि ऐसा बहु मूल्य और सुंदर जोड़ा पहन कर आवश्यक है, कि सम्पूर्ण वेश भी उसी प्रकार का हो. साहूकार ने कहा, कि वस्त्र भी तुरंत बन सक्ते हैं महात्मा ने कहा कि जब वेश उत्तम होगा, तो बैठने को घर और आसन इत्यादि भी उत्तम होना चाहिये महात्मा ने–

कहा, कि यह भी बनाया जा सक्ता है. महात्मा ने कहा, कि जब उत्तम घर और उत्तम वस्त्र होंगे, तो भोजन भी उत्तम ही होना चाहिये. साहूकार ने उस को भी अंगीकार किया. महात्मा ने कहा, कि जब ये सम्पूर्ण सामान होंगे, तो विषय भोग की भी कामना होगी, साहूकार ने कहा, कि इसका भी प्रबंध होना संभव है. महात्मा ने कहा, कि फिर बाल बच्चे होंगे, उन की बीमारी और मृत्यु के समय शोक प्राप्त होगा उस का भी तुम ज़िम्मा लेलो. साहूकार ने कहा, कि उस शोक का मैं किस प्रकार ज़िम्मा ले सक्ता हूं ? महात्मा ने कहा, कि यदि उस का ज़िम्मा नहीं ले सक्ते, तो एक पगरखियों की जोड़ी के लिये इतना झगड़ा रचना और फिर दुःख और क्लेश उठाना, हमको स्वीकार नहीं; और इसी कारण तुम अपनी पगरखियां पीछी ले जाओ ॥

बिल्व मंगलजी ने कहा, कि इस इतिहास के अनुसार हमारा पहला धर्म्म यह था, कि जिस समय तुम्हारी स्त्री पर कुदृष्टि पड़ी थी, उसी समय सम्पूर्ण बुरे परिणामों को सोच कर, उस दृष्टि को हटा लेते—दूसरा कर्म्म यह था, कि उस के साथ न आते—तीसरा कर्तव्य यह था, कि तुम्हारी भक्ति को देख के, मन में लज्जित होकर, पीछे चले जाते—परंतु लगातार भूल पर भूल की गई—निदान इस का दंड भोगना आवश्यक था ॥

। ऋषियों के समय में त्याग की एक साधारण रीति ।

हिन्दुस्तान के ऋषियों ने कर्म्म फल की इच्छा त्यागने को सच्चा त्याग कहा है--इस त्याग को वे धीरे २ इस रीतिसे प्राप्त किया करते थे, कि जब कोई कर्म्म करने लगते, उस

समय परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे, कि यद्यपि हम इच्छा के पुतले हैं और इसी कारण इच्छा से रहित नहीं हो सक्ते, तोभी इस वर्तमान अपने कर्म्म का फल हम आप की सेवा में अर्पण करते हैं इसी प्रकार एक २ कर्म्म का फल परमात्मा के अर्पण करते २ उन का स्वभाव पड जाता था, कि कर्म्म फल की इच्छा को त्यागसकें—जब इस त्याग का भली भांति स्वभाव हो जाता था, तब उन का यह उद्योग होता था, कि कर्म्मफल की इच्छा त्याग के साथ ही त्याग के अभिमान को भी छोड़दें जब इस में भी भले प्रकार सफलता होजाती थी, तब उनको महात्याभी कहा जाताथा ॥

॥ पराशर ऋषि और मैत्री का वर्णन ॥

कहते हैं, कि याज्ञवल्क्य ऋषि ने जब बन में जाने का विचार किया, तब अपनी स्त्री गार्गी और मैत्री को बुला के, रुपयों, मोहरों और दूसरी अमोल्य वस्तुओं से भरे हुए संदूकों की कुंजियां उन को दीं और कहा, कि तुम आधा २ धन बाँटलो. यह सुन करके, गार्गी ने अपने मन में सोचा, कि याज्ञवल्क्यजी महाविद्वान और बुद्धिमान हैं, जब वे अपना सारा धन हम को सोंपकर, वन में जाते हैं, तो अवश्य इस से अधिक धन उन को उस स्थान में प्राप्त होगा; और इन सांसारिक धन के भंडारों को त्याग करने से अवश्य उन को अत्यंत उत्तम आत्मिक धन के भंडार मिलेंगे. यह सोच करके, गार्गी ने उत्तर दिया, कि हे महाराज! सम्पूर्ण धन मैत्री को देदो—में आप के साथ वन में चलकर, सत्संग का धन लेने की इच्छा रखती हूं—निदान गार्गी उन के साथ चली गई और मैत्री सब धन लेकर अपना निर्वाह करने लगी. कुछ काल में उस को भी वैराग्य हुआ और वह पराशर ऋषि के समीप गई और उन से धन आदि सांसारिक

पदार्थों के क्लेश वर्णन करके, उन क्लेशों से छूटने का उपाय पूछा. पराशरजी ने उत्तर दिया, कि जिस वस्तु में क्लेश प्रतीत होता है, वह त्यागने के योग्य है मैत्री ने अपने धन आदि को पराशरजी के भेट करके, वन में एक कुटिया बनाई और उस में रहना आरम्भ किया. कुछेक दिवस पश्चात्, पराशर जी मैत्री के निकट गये और पूछा क्या दशा है? मैत्री ने कहा, महाराज आनंद प्राप्त नहीं हुआ. पराशरजी ने कहा, कि तुम्हारा त्याग पूर्ण नहीं है. यह सुनकर, मैत्री ने कुटिया को भी त्याग दिया फिर भी पराशरजी ने यही कहा, कि अभी तक पूर्ण त्याग नहीं हुआ.मैत्री ने अपने वस्त्र आदि भी अग्नि में जला दिये; फिर भी पराशरजी ने यही कहा कि परिपूर्ण त्याग अभी नहीं हुआ. तब मैत्री ने कहा,कि अब तो केवल यह देह बची है, यदि आप आज्ञा दो तो, इस को भी अग्नि में भस्म करदूं. पराशरजी ने उत्तर दिया,कि इस के जलादेने से भी पूर्ण त्याग नहीं होगा, ऐसी ही दूसरी देह प्रगट होजावेगी—इस पर मैत्री ने विनय पूर्वक पूछा, कि जिस प्रकार पूर्ण त्याग होसके, वह विधि बतलाइये. पराशरजी ने कहा, कि त्याग के अभिमान को छोड़के, जो कुछ धन आदि है, उस को परमात्मा का समझ के तन मन और धन से परोपकार करो इसी को पूर्ण त्याग कहते हैं; और इसी में महा आनंद है. यह कह करके मैत्री का धन आदि उस को पीछा दे दिया ॥

। पराशरजी और निर्मोही राजा का आख्यान ।

इसी प्रकार से एक राजा ने, जो पराशरजी का शिष्य था आकर उन से कहा, कि हे महाराज ! मैं संसार के दुःखों से बहुत दुःखी रहता हूं, इन की निवृत्ति का कोई उपाय बतलाइये.

पराशरजी ने कहा, कि संसार को छोड़दो, दुःख भी साथ ही छूट जावेंगे. राजा ने कहा, कि महाराज ! मैं तो संसार त्यागने के लिये बहुत दिनों से उद्यत हूं-केवल इतना विचार है, कि मेरा पुत्र अभी छोटी अवस्था में है, जिस समय वह राज्य का काम संभालने योग्य होजावेगा, मैं तुरंत राज्य उस को सौंपके, संसार को त्याग दूंगा. पराशरजी ने कहा, कि यदि वास्तव में तुम को संसार के दुःख क्लेश देरहे हैं, और तुम्हारा विचार उन से छूटने का और राज्यके त्याग करने का है, तो पुत्र के जवान होने की बाट देखना आवश्यक नहीं--न जाने वह युवा होने की अवस्था तक जीता रहे या नहीं, और यदि जीता भी रहा, तो राज्य के योग्य होवे या नहीं अतएव यही उचित है, कि राज्य हमको सौंपो और तुम सांसारिक क्लेशों से निवृत्ति प्राप्त करो. राजा ने राज्य तुरंत पराशरजी को संकल्प कर दिया,और प्रसन्नता पूर्वक वहां से उठकर बन की ओर जाने लगा. उस समय पराशरजी ने कहा कि कहां जाते हो ? राजा ने उत्तर दिया,कि महाराज!आप ने कृपा करके मुझको राज्य के बोझ से हल्का कर दिया अब मैं जहां चाहूंगा रहूंगा केवल दो रोटी की आवश्यकता है, और वह थोड़ा सा परिश्रम घड़ी दो घड़ी करके घास खोद कर भी प्राप्त कर सक्ता हूं. पराशरजी ने कहा, कि हे राजन् ! तुमने कभी घास नहीं खोदा है-इसलिये तुमको उस नवीन काम में अधिक परिश्रम और क्लेश होगा-क्योंकि प्रत्येक काम के आरंभ में क्लेश होता है-इसी प्रकार हमने राज्य कभी नहीं किया, इसलिये हम को राज्य करने में दुःख होगा-इसीसे हम किसी न किसी दूसरे मनुष्य को राज्य का काम सौंप देंगे-तुम से अधिक योग्य पुरुष हम को नहीं मिल सकेगा-अतएव तुम हमारी ओर

से राज्य करो. जो कुछ हानि लाभ हो, वह हमारा–तुम केवल दो रोटी के अनुमान अपनी वेतन लेलिया करो और प्रत्येक वर्ष हमारे राज्य का लेखा चोखा हम को समझा दिया करो–राजाने ऐसा ही किया–और इस कारण से, कि राज्य अपने गुरू पराशरजी का समझता था, बहुत परिश्रम और जीव झोंक कर न्याय और दया से सम्पूर्ण कार्य करना आरंभ कर दिया, जिस के हेतु चारों ओर उन्नति और सुख के सामान दिखाई देने लगे, और वह पराशरजी की बुद्धिमानी का वारम्बार धन्यवाद देता था और स्तुति करता था और मन में सोचा करता था, कि यदि सम्पूर्ण राजा, महाराजा, सेठ और साहूकार इसी प्रकार से अपना धन आदि अपने परम गुरू परमात्मा का समझ कर के, अपने आप को केवल सेवक जान के, जैसा कि वास्तव में वे हैं, यही न्याय और सचाई का बर्ताव रक्खें, तो स्वयं सांसारिक क्लेशों से बचे रहें, और संसार के दुःख भी सुखों से बदल जावें. कुछ कालतक ऐसा बर्ताव रखने से, राजा " निर्मोही राजा " के नाम से प्रसिद्ध हो गया–क्योंकि जिस में जो गुण होता है, वह शीघ्र वा कुछ कालांतर में सब को अवश्य ही ज्ञात हो जाता है और सम्पूर्ण उस को उसी नाम से पुकारने लगते हैं. एक दिन निर्मोही राजा का कोई चाकर वन में गया और वहां एक महात्मा साधु से मिलना हुआ साधुने पूछा, कि तुम्हारे राजा का क्या नाम है ? चाकर ने कहा, कि " निर्मोही राजा " साधु यह सुनके मुस्करा कर, चुप हो रहा और मन में कहने लगा, कि देखो सांसारिक लोभ कितना बढ़गया है; कि राजा लोग सम्पूर्ण सांसारिक सन्मानों से तृप्ति न पाकर, वे उपा-

धियां जो मुख्य तपों के पीछे साधुओं को भी कठिनाई से मिलती हैं, अपने नाम के साथ लगाने लगे हैं. कुछ दिनों पीछे राजा का कुवँर भी दैवाधीन शिकार खेलता हुआ, उसी बन में आगया और साधु से जल मांगा. साधुने जल पिलाया और पूछा, कि तुम किस राजा के कुवँर हो? उस ने उत्तर दिया कि "निर्मोही राजा" का–यह सुनके साधु से न सहागया विचार किया, कि राजा की परीक्षा करनी चाहिये–निदान उस ने राजा के पुत्र से कहा, कि तुम कुछ काल मेरी कुटिया में ठहरो मैं तुम्हारे पिता की परीक्षा लेने को जाना चाहता हूं. कुवँर उस स्थान में ठहरा रहा–साधु उस बालक का नाम पूछकर, और उस के वस्त्र लोहू में भिगो करके, राजा के महल की ओर गया और प्रगट किया, कि राजा का पुत्र सिंह की शिकार करता था, सिंह ने उस को फाड़डाला. इस बात को सम्पूर्ण सेव कों ने सुनकर, एक साधारण सी बात समझ कर, कुछ भी चिंता नहीं की–जब साधु राजा के समीप पहुंचा, तो राजा ने केवल यह कह के, कि संयोग के साथ वियोग अवश्य है, जो वस्तु उत्पन्न हुई है, वह एक दिन अवश्य ही नष्ट होगी–मेरे पुत्र के शरीर का वियोग इसी रीति से होना था–केवल इतना कहकर, साधु की सेवा और सत्संग में लग गया. साधु ने यह दशा देख करके, मन और वाणी दोनों से राजा की प्रशंसा की–और अपनी परीक्षा का वृत्तान्त राजा को सुनाकर पूछा, कि ऐसा उत्तम और पवित्र उपदेश तुम को किस महात्मा के द्वारा प्राप्त हुआ? राजा ने पराशरजी का नाम बताया. साधु पराशरजी के पास गया और उपदेश की

वांछा प्रगट की. पराशरजी ने उस का समस्त वृत्तान्त सुनकर, और विचार द्वारा अनुमान कर के, उस से कहा, कि पहिले दुष्ट वासना अर्थात् बुरे विचारों को मन से भुलादो, फिर सन्यास धर्म्म के अधिकारी होगे—क्योंकि महर्षि मनुजी ने कहा है, कि जिस मनुष्य के मन में दुष्ट वासना उपस्थित है, उस को न विद्या का पढ़ना लाभ पहुंचा सक्ता है, न तप और न मत के दूसरे साधन; और नीचे लिखाहुआ दृष्टान्त भी सुनाया:....

। पिपीलिका और मिश्री के पर्वत का दृष्टांत ।

एक पिपीलिका अर्थात् चिऊंटी एक मिश्री के पर्वत पर रहती थी और मन चाही मिश्री खाकर, सुख से जन्म व्यतीत कर रही थी, कोई दूसरी पिपीलिका उस के पास गई और उस को वहुत प्रसन्न चित्त देखकर, उस प्रसन्नता का कारण पूछा और मिश्री के पर्वत का वृत्तान्त सुनकर, याचना की, कि मुझ को भी उस पर्वत की सैर कराइये—निदान पहिली पिपीलिका ने पर्वत का पता बतला दिया. दूसरी पिपीलिका बड़ी प्रसन्नता से उस पर्वत पर गई और सम्पूर्ण पर्वत पर घूमकर, लौट आई तिस पर भी यही कहा, कि वह पर्वत तो लौन का है. पहिली पिपीलिका यह सुनकर, अचंभित हुई-परन्तु उस की दृष्टि अचानक दूसरी पिपीलिका के मुख की ओर चली गई, जिस में एक लौन का कंकर था—निदान उस ने हंसकर कहा, कि बहिन इस लौन के कंकर को मुख से निकालकर, पर्वत पर जाओ—दार्ष्टान्त यह है, कि यह संसार सुख सागर है—परन्तु जो मनुष्य मन की दुःख रूपी जिह्वा के द्वारा उस में से जल पीते हैं, खारी जान पड़ता

है; और अमृत रूपी जिह्वा से पीने में मीठा-अर्थात् शुभ कर्म करने वाले पुरुषों को मीठा--अतएव दुष्ट इच्छाएं दूर करनी चाहियें. यह दृष्टान्त सुनाकर, पराशरजी ने साधु को कहा, कि तुम्हारे लिये पहिले मन की चंचलता को रोकना और अंतःकरण को शुद्ध करना ही उचित उपदेश है और वह योगाभ्यास द्वारा संभव है. योगाभ्यास का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

। दूसरा भाग ।

। दूसरा अध्याय ।

। योगाभ्यास ।

। योगाभ्यास की व्याख्या ।

योगाभ्यास उन साधनों को कहते हैं, जिन के द्वारा मन की वृत्तियां रुकते २ और संकल्प विकल्प कम होते २, मन अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाता है, उत्तम २ और नवीन२ विचारांस उत्पन्न होने लगते हैं, बहुत सी मन की शक्तियां, जो बहुधा गुप्त रहती हैं. धीरे २ प्रगट होनी आरंभ हो जाती हैं और चाहे कितने ही दुःख वो क्लेश पड़ें वे सब सहन हो सक्ते हैं, और उन से निवृत्ति का साधारण उपाय ध्यान में आ सक्ता है; शारीरिक आरोग्यता उत्तम होनी और दीर्घ आयू होने का भी यह एक बड़ा साधन है ॥

। योगाभ्यास का आनंद ।

थोड़े काल तक अभ्यास करने से मन को एक ऐसा आनंद प्राप्त होता है जिस की उपमा किसी सांसारिक आनंद से नहीं दीजा सक्ती और न जिह्वा वा लेखनी की सामर्थ्य है कि बर्णन कर सके—परन्तु इतना कहा जा सक्ता है. कि जैसे कोई पथिक धूप की गर्मी और जलकी तृषा से व्याकुल होकर किसी मरुस्थल में घबरा कर घूम रहा हो उस अवस्था में छायादार वृक्ष और सीतल जल मिलने से उस को जैसी तृ—

ति मिलनी संभव है उस से भी अधिक शांति योग के साधनों से होती है, और यही शांति अभ्यासी को भविष्यत काल में उन्नति करते रहने के लिये उत्साह दिलाने वाली होती है।

। योगाभ्यास का अधिकारी ।

प्रत्येक देश और प्रत्येक मत और संप्रदायों के सम्पूर्ण मनुष्य—स्त्री हो वा पुरुष—योगाभ्यास के अधिकारी हैं. इन साधनों में न तो द्रव्य व्यय करने की आवश्यकता है, और न घर बार त्याग करने की—किंतु जैसे २ योगाभ्यास में रस आता जाता है और उत्तमोत्तम सुख प्राप्त होते जाते हैं, वैसे ही तुच्छ सुखों की इच्छाएं स्वयं छूटती जाती हैं ॥

। योगाभ्यास का समय ।

यद्यपि योगाभ्यास आरंभ करने, और उस से पूर्ण लाभ उठाने के लिये उत्तम समय तो पन्द्रह बर्ष से पैंतालीस बर्ष की अवस्था तक है, तो भी जिस मनुष्य ने बचपन में ब्रह्मचर्य्य सेवन किया हो, और युवावस्था में बिषय भोग में अत्यन्त लंपट न रहा हो, वा पूरी इच्छा रखता हो, वह पैंतालीस वर्ष के स्थान में सत्तर बर्ष की अवस्था तक भी योग साधन आरंभ करके पूरा लाभ उठा सक्ता है।

। योगाभ्यास के साधन ।

वे योग साधन, जिन की महिमा ऊपर कही गई है, नीचे लिखे अनुसार है. मन की वृत्तियों को, जो नेत्र, कर्ण इत्यादि इन्द्रियों के द्वारा नाना प्रकार के बाह्य पदार्थों में फैली हुई हैं, सब पदार्थों से हटा कर आन्तरीय प्रकाश देखने

और अनाहत शब्द सुनने में लगाया जावे. ये साधन बाह्य और अन्तरीय भेद से दो प्रकार के हैं और अवस्था, आरोग्यता, चाल चलन, रहनगत, बुद्धि, और विद्या की अपेक्षा, इनकी असंख्य अवस्थाएं हैं, जिनका संक्षेप से वर्णन करना उचित जान पड़ता है ॥

। अधिकार के अनुसार साधन करना ।

प्रत्येक पुरुष वा स्त्री को अपने अधिकार अर्थात् योग्यता के अनुसार साधन आरंभ करने से शीघ्र और उत्तम रीति से सफलता होनी संभव है. इस बात का अनुमान कि कौन मनुष्य किस अवस्था के योग साधन करने का अधिकारी है, वह स्वयं सचाई के साथ अपने शुद्ध अन्तःकरण से स्थापित करे और यदि उस को शंका रहे तो किसी दूसरे सच्चे निरपेक्ष, सत्य वक्ता, और योग्य पुरुष से सम्मति लेकर अनुमान करे, वा सावधानी के हेतु लघु पद से ही आरंभ कर दे ।

। योगाभ्यास के नियम ।

इस हेतु से कि मनुष्य के सम्पूर्ण विचार और कर्मों का प्रतिबिंब मन पर पड़ कर, भले वा बुरे प्रभाव हर समय उत्पन्न होते रहते हैं, इस लिये अभ्यासी को सदैव सत्संग में रहना, और विचार पूर्वक अपने समय का विभाग कर के और उस में उचित अदला बदली करते हुए, सम्पूर्ण कामों को विधिपूर्वक और नियत समय पर करने का उद्योग करते रहना चाहिये

प्रत्येक काम को नियत समय पर ही करने से, प्रथम तो वह काम सावधानता और उत्तमता से किया जाता है, और दूसरे यह लाभ भी होता है कि मन में किसी मुख्य समय में सिवाय उस काम के विचार के, जो उस समय के लिये नियत

किया गया है, दूसरे विचार मन में नहीं आने पाते और चित्त में एक समय में एक ही विचार के रहने और दूसरे विचार के न आने से, योग साधन में बहुत सहायता मिलती है. यद्यपि भोजन का भी, विचार और कर्म पर, बहुत प्रभाव पड़ता है तो भी अभ्यासी को आरंभ के समय भोजन के अदला बदली में अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, जैसे २ अभ्यास की शक्ति बढ़ती जावेगी, वैसे ही स्वयं सात्विक भोजन की ओर मन की रुचि होती जावेगी—केवल इतना विचार रहे कि दुष्पच, कच्चा, सड़ा हुआ, दुर्गंधवाला, कटु, वा खट्टा पदार्थ काम में न लाया जावे ।

। अभ्यास का समय और बैठक की रीति ।

जिस मनुष्य की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो, वह प्रति दिन नियत समय पर(प्रातः काल नित्य नियम का समय अत्युतम है) शुद्ध, एकान्त, और रमणीक स्थान में सिद्धासन से बैठे. सिद्धासन से बैठने की यह रीति है कि बांई टांग को मोड़ कर उस की एड़ी को अंडकोप के नीचे की सींवन और दाहिनी टांग को मोड़ कर उसकी एड़ी को अंडकोष के ऊपर की सीवन पर रखकर, पालथी मारकर, बैठे; और ऊपर के सारे शरीर को तना हुआ रक्खे इस आसन का चित्र पुस्तक के प्रारंभ में दिया गयाहै इस आसन के अभ्यास से शरीर की नैरोग्यता भी बढ़ती है ॥

यदि इस आसन में किसी कारण से क्लेश हो, तो जिस प्रकार सुख हो उसी भांति बैठना चाहिये—परंतु हर अवस्था में शरीर, अवश्य करके गर्दन को, तना हुआ रखना अधिक लाभ दायक है ॥

सिद्धासन से बैठ कर, मन को शांत करने का उद्योग करे-यदि मन में क्रोध वा शोक इत्यादि से उद्वेग हो और मन शांत न हो सके, तो जब तक उद्वेग रहे साधन का आरम्भ न किया जावे. मन को शांत करने के पश्चात् कम से कम पांच प्राणायाम करे. प्राणायाम की विधि नीचे लिखी जाती है।

। प्राणायाम की रीति ।

धीरे २ स्वास को उस स्थान से जहां नाक के दोनों छिद्र एक होते हैं ऊपर खेंच कर, और थोड़े काल तक वहां ही रोक कर, फिर उसी प्रकार धीरे २ बाहर निकालना चाहिये, और कुछ काल बाहर रोक कर, फिर ऊपर खेंचना चाहिये, श्वास को ऊपर खेंचने में, रोकने में और बाहर निकालने में इतनी देर न लगानी चाहिये और न इतना बल करना चाहिये कि जिस में थकावट वा क्लेश जान पड़े ॥

। ध्यान का जमाना ।

प्राणायाम के पीछे किसी स्थूल पदार्थ पर जिस को अभ्यासी, मन के द्वारा आदर योग्य, वा प्रिय जानता हो—जैसे चित्र, मूर्ति, इत्यादि पर पांच मिनट तक ध्यान जमावे; वा दर्पण सामने रख कर पांच मिनट तक उस पर दृष्टि जमावे अर्थात् दोनों नेत्रों की पुतलियों को देखता रहे--यदि दर्पण की चमक अप्रिय हो तो हरे रंग का पत्र, एक फुट व्यास का, गोलाकार काट कर, और उसके बीचों बीच में, अंगुष्ठ के नख के परिमाण एक विन्दु स्याही से बना कर उस पै ध्यान जमावे. इस के पीछे पांच मिनट तक किसी उत्तम भजन गाने, वा धर्म्म की पुस्तक पढने, वा धीमा सुरीला वाद्य सुनने में,

कानों को लगावे. इन दोनों साधनों को एक २ अठवाडा करने के पीछे, एक २ मिनट बढाना चाहिये. जब प्रत्येक साधन का समय आध घंटा हो जावे और इतने समय तक आखों के द्वारा ध्यान, मूर्त्ति, चित्र, दर्पण, वा पत्र पर और कानों के द्वारा भजन, धर्म्म पुस्तक पढने, वा सुरीले बाजे का शब्द सुनने में भले प्रकार जम सके, तब अभ्यासी को एक विचित्र आनन्द आने लगेगा, उस समय बाह्य साधन आंख और कान को, जैसा कि एक २ मिनट बढाया गया था, उसी प्रकार एक २ मिनट घटाते जाना चाहिये, और पांच मिनट तक जिस मूर्ति, चित्र वा पत्र पर ध्यान को जमाया हो, उसी का आंखों को मुंद करके उस स्थान पर जहां नेत्रों की दोनों धारा एक होतीहैं अर्थात् भवोंके बीच में ध्यान करना चाहिये, और इसी प्रकार से जिस बाजे का शब्द कानों से सुना थ उसी शब्द को कान बन्द करके अंतर में सुनने का उद्यम क जब ये साधन एक २ मिनट बढते २ आधे घंटे तक प जावें, तब इन में पहिले से अधिक आनंद होगा. जब [illegible] घंटे तक ये साधन भी होने लगें, तब इनको भी एक २ मिनट कम करते हुए और पांच २ मिनट तक आंख मूंद करके दोनों भवों के बीच मे अंतरीय प्रकाश को देखना चाहिये-और इसी प्रकार कानों को दोनों अंगुष्ठों से बंद करके पांच मिनट तक अंतरीय शब्द सुनना चाहिये. अंतरीय साधनों को भी बाहरी साधनों के अनुसार एक २ मिनट प्रत्येक अठवाड़े में बढाना चाहिये जब ये साधन भी बढ़ते २ आधे घंटे तक पहुंच जावेंगे तो पहिले आनन्द से उत्तम आनन्द, और कई अनोखी बातें जान पड़ेंगी ॥

प्रगट हो कि अंतरीय साधनों में ध्यान को भृकुटी इत्यादि के बीचों बीच जमाना और बढ़ाते जाना चाहिये. प्रथम तो ध्यान बीच से किसी ओर को न टले, कदाचित् टले, तो दाहीं ओर को, बाईं ओर से, अभ्यासियों ने उत्तम माना है ॥

इस के पीछे, इन आंतरीय साधनों को भी एक २ मिनट कम करना आरंभ किया जावे, और पांच ५ मिनट बिना नेत्र मूंदे आंतरीय प्रकाश का ध्यान और बिना कान बंद किये अंतरीय शब्द का सुनना आरम्भ करना चाहिये; और इस अभ्यास को प्रत्येक अठवाड़ा एक २ मिनट बढ़ाना चाहिये. इसी को योग परिभाषा में सविकल्प–समाधि और सम्प्रज्ञात योग का अंतिम भाग कहा गया है. इस पद पर पहुंच कर प्राणायाम के साधन का त्याग कर देना चाहिये. जिस स्त्री वा पुरुष की अवस्था चालीस वर्ष से अधिक हो, वा नेत्र वा कर्ण अरोग न हों, उस को बाहरी साधन प्राणायाम और नेत्र और कर्ण के नहीं करना चाहिये. इसी प्रकार जिस की अवस्था बीस और चालीस वर्ष के बीच में हो, और बुद्धि तीव्र और विद्याभ्यास उत्तम हो, वह भी बाहरी साधन न करे ॥

पहिली अवस्थावालों–अर्थात् चालीस वर्ष से अधिक आयु वा जिनकी आरोग्यता अच्छी न हो–उन को दर्पण वा पत्र द्वारा बाहरी साधनों के बदले शब्द ॐम् वा और कोई शब्द जिस में उन की रुचि हो, इतने समयतक अर्थात् जितना समय प्राणायाम, ध्यान और भजन में लगता, मुख से जपना चाहिये; फिर मुख के जप को एक एक मिनट कम करते हुए चुप चाप उङ्गलियों पर जप करना चाहिये फिर इस जप को भी एक एक मिनट कम करते हुए नेत्र और कर्ण के आन्तरीय साधनों को आरंभ करना चाहिये. दूसरी अवस्था

वाले अर्थात् जिन की बुद्धि तीव्र और विद्या उत्तम हो, वे बाहरी साधन प्राणायाम, ध्यान, वा भजन के बदले, धर्म्म पुस्तक के सुनने सुनाने और विचारने में कम से कम आध घंटा नित्य लगावें, और प्रति दिन एक एक मिनट बढ़ाते हुए, जब दो घंटां तक अभ्यास बढ़ जावे, तब पुस्तक के विचार का एक एक मिनट कम करना आरंभ करें; और नेत्र और कर्ण के आन्तरीय साधन को पांच पांच मिनटतक करना आरंभ कर के, आधे घंटेतक पहुंचावें; और फिर इस साधन को एक एक मिनट घटाते हुए बिना नेत्र और कर्ण मूंदे के अन्तर में प्रकाश को देखने और शब्द के सुनने का अभ्यास करें ॥

जिन मनुष्यों का चाल चलन उत्तम न हो और अवस्था ३० वर्ष से न्यून और आरोग्यता उत्तम हो, वे बाहरी साधन, प्राणायाम, आंख और कान के साधन और शब्द का जप और धर्म्म पुस्तकों का सुनना सुनाना और इन के अतिरिक्त व्यायाम मुख्य करके बाहु और छाती के साधन कियां करें और सात्विक भोजन के सिवाय दूसरा भोजन न करें, सम्पूर्ण साधनों के लिये जो समय और नियम रक्खा गया है उसी रीति से करें, और व्यायाम में न्यून से न्यून आधा घंटा और लगाया करें जैसे २ उनका चाल चलन उत्तम होता जावे और इच्छाएं कम होती जावें वैसे २ बाहरी साधनों और व्यायाम को कम करते जावें और अन्तरीय साधनों को आरंभ करते जावें, साधु इत्यादि ऐसे पुरुष, जिनका समय किसी मुख्य व्यापार के काम में नहीं जाता है, उन को अपने अधिकार के अनुसार साधन कम से कम दो घंटे प्रतिदिन करना चाहिये और कम बोलना, कम खाना, और कम सोनेका

स्वभाव डालते हुए, कर्म और विचारों को उत्तम बनाने का उद्योग करते रहना चाहिये, जिस किसी को अधिक रुचि हो उसको चाहिये, कि इन सब साधनों के अतिरिक्त, निद्रा आने के समय, और जागते और सोते रहने के बीच के समय में, जागते रहने का उद्योग करके, ॐम् इत्यादि का जप करे, इस साधन से बहुत लाभ पहुंचेगा. निर्बल वा वृद्ध मनुष्य इस साधन को न करे, अन्तरीय प्रकाश के ध्यान करने वालों और अन्तरीय शब्द के सुनने वालों को कुछ काल तक छोटे२ परमाणु और फिर रक्त पीले नीले इत्यादि सुन्दर रंग बदलते हुए दीख पडेंगे, और इसी प्रकार कानों के साधन में पहिले सांई सांई का शब्द सुनाई देगा, और फिर झींगर के शब्द के तुल्य रसीली ध्वनि सुनाई पडेगी यह पहिला पद है- इस पद में मन एकाग्र होना आरंभ होता है।

। चित्त वा ध्यान में मुख्य चिह्न उत्पन्न होने ।

कुछ काल के पीछे; जिस का समय नियत नहीं हो सक्ता, क्योंकि यह समय अभ्यासी के अवकाश, रुचि, तीव्र बुद्धि, और सच्चे विश्वास के आधीन है; चमकते हुए तारों का सा प्रकाश दिखलाई देना आरंभ होगा, और नगारे का सा शब्द सुनाई देगा. यह दूसरा पद है. इस पद में सत्य ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होकर, मनुष्य ऐसा ही चाहने लगेगा और निरर्थक बातों से चित्त हटने लगेगा ॥

इस पद में मन इतना शुद्ध होजाता है, कि अशुद्ध विचार उत्पन्न होने स्वयं बंद होजाते हैं—परंतु मन की कोमलता के हेतु सत्संग और कुसंग का बहुत तीव्र प्रभाव होता है, इस कारण बहुत सावधानी के साथ कुसंग का त्याग उचित है. इस के पीछे चंद्रमा के से प्रकाशवाले मंडल और घंटे का

सा शब्द जान पड़ेगा–यह तीसरी अवस्था है. इस अवस्था में ऋतंभरा बुद्धि प्राप्त होकर, सत्य असत्य का विवेक करने, और सत्य ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होजावेगी, जिस की प्राप्ति होनेपर अभ्यासी निर्भय और निष्पक्ष होजाता है और जिस विषय को विचारता है, उस को यथायोग्य जान लेता है, और जिस कार्य को आरम्भ करता है, उस को शीघ्र और उत्तम रीति से पूरा कर देता है. इस अवस्था में धीरे २ सांसारिक कामों में ममता न्यून होती जाती है. इस के पश्चात् एक प्रकार का हलका और धुंधला सा फैला हुआ श्वेत रंग का प्रकाश दिखलाई देगा, और मधुर २ बांसुरीकी सी ध्वनि सुनाई देगी–यह चौथी अवस्था है. इस अवस्था में बहुत से अभ्यासियों को महात्माओं के दर्शन होकर, उन से प्रेरणा भी होती है और धर्म्म की सत्यता ज्ञात हो जाती है, जिस के कारण इस अवस्था के मनुष्यों में मत मतांतरों के भेद कभी नहीं रहते–किन्तु उन की सत्संग और उत्तम विचारों का जितने मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है, वे भी सत्य धर्म्म को समझ कर ऊपरी बातों में झगडे नहीं करते ॥

जैसे जैसे श्वेत प्रकाश और बांसुरी की ध्वनि शुद्ध और उच्च पद की होती जाती है वैसे ही उच्च पद का आनंद और शांति का अनुभव और प्राप्ति होती जाती है. संग ही संग सिद्धियां अर्थात् अद्भुत शक्तियां भी प्रगट होती जाती हैं, जिन पर अभ्यासी को कदापि ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि इन पर ध्यान देने से मन को विक्षेपता होती है और उन्नति में अवरोध हो जाता है ॥

जब सिद्धियों में कुछ भी लोभ नहीं रहेगा, और अभ्यास बिना किसी विघ्न के होता रहेगा, तब सब सुखों को देने

वाली निर्विकल्प समाधि प्राप्त होगी. इस समाधि को अभ्यासी शनैः २ यदि वह चाहे तो दिनों, सप्ताहों, महीनों और वर्षों तक बढ़ा सक्ता है इन साधनों से अंतःकरण शुद्ध होकर दुष्ट कर्म्म और उन का बीज दुष्ट संस्कार भस्म होजाते हैं ॥

प्रश्न—यद्यपि आपने धर्म्म के संपूर्ण अंगों को एक अपूर्व ढंग और नई रीति से वर्णन किया है, तौभी बुद्धि द्वारा वे सब सत्य जान पडते हैं—परंतु योगाभ्यास की विद्या का निरंतर अभाव होने से, और बुद्धि के द्वारा उन का अनुमान न करने के हेतु आवश्यक है, कि आप किसी प्राचीन प्रसिद्ध योगी के वचनों का प्रमाण देवें ।

उत्तर—प्रत्येक देश और जाति में, और प्रत्येक मत मतांतर में असंख्य मनुष्यों का मुख्य करके उनके देहान्त के पश्चात् अनेक प्रकार की शक्तियों वाला होना वर्णन किया जाता है—अत एव उन संपूर्ण का प्रमाण दिया जाना कैसे संभव है ? ।

प्रश्न—आपने अनेक अवसरों पर भरत खंड के ऋषियों का प्रमाण दिया है और इस देश में पतंजलि मुनि प्रसिद्ध योगी हुए हैं और उन्हों ने योगशास्त्र रचा है उनका प्रमाण देना उचित है ।

उत्तर—पतंजलि मुनिने—संस्कृत बाणी में, जो उनके समय में, सर्वत्र प्रचलित थी, योग शास्त्र रचा है, वह बोली अब बहुत प्राचीन हो गई है. और बोली भी नहीं जाती है और केवल शब्दार्थ पर वादानुवाद करने वालों ने कभी २ अपनी बात को सिद्ध करने के अर्थ एक २ शब्द के अनेक और एक दूसरे से विरुद्ध अर्थ किये हैं—जैसे आत्मा का अर्थ किसी स्थान में चैतन्य शक्ति का लिया गया है और किसी स्थान

में जड शक्ति का भी लिया गया है इस कारण शब्द प्रमाण के स्थान में सारांश वर्णन करना अति लाभ दायक है जिस को वर्णन करने से पहिले यह बतलाना आवश्यक है, कि पतंजलि मुनि ने योग शास्त्र के लिखने से पहिले योगाभ्यास के साधन करके उस विद्या को प्रगट किया था और वे साधन यही साधारण साधन हैं जिनका संक्षेप वृत्तान्त ऊपर लिखा गया है वरन पतंजली मुनि ने अपने समय की विद्या और धर्म्म भाव का अनुमान कर के उस समय के अधिकारियों के लिये स्पष्ट रीति से लिखा है और महर्षि व्यास जी ने उन के सूत्रों की टीका कर के उन को और भी प्रसिद्ध और लाभ दायक बना दिया है ॥

। पतञ्जल सूत्र सार ।

अर्थात्

पतञ्जली जी के योगशास्त्र का सारांश ।

योग शास्त्र के चार विभाग हैं ॥

१समाधिपाद्--जिस में अनेक प्रकार की समाधियों का वर्णन है और उस में पचास सूत्र हैं.

२साधन पाद्--जिस में अभ्यास की सरल रीतियां अठावन सूत्रों में लिखी हैं.

३ विभूति पाद्--जिसमें सिद्धियों अर्थात् अनूप शक्तियोंके प्राप्त होनेका वर्णन बावन सूत्रोंमें लिखाहै ।

४ कैवल्य पाद्--जिस में मोक्षका वर्णन चोंतीस सूत्रों में लिखा है. योगसे प्रयोजन चित की वृत्तियोंको रोकने का है--अर्थात् चित्त की वृत्तियों को दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्म्मों से हटा कर, शुभ संस्कार और शुभ कर्म्मों में स्थिर करने और उसके

पश्चात् संकल्पों से रहित होने, और परमात्मा के समीप पहुँचने को योग कहतेहैं ।

चित्त की संपूर्ण वृत्तियों को पांच विभागों में बांटकर, पतंजलिजी कहतेहैं कि संपूर्ण क्लेश जो नौ प्रकार के हैं इन वृत्तियों के रोकने से, दूर होजातेहैं ।

पतंजलिजी ने—जैसे कि प्रत्येक ग्रंथकार की रीति है—सब प्रकार के अधिकारियों के लिये उपदेश कियाहै ॥

प्रथम उत्तम अधिकारी ।

उत्तम अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार और कर्म्म दोनों उत्तम हों उस को अभ्यासी महात्माओं के समीप जाकर वितर्क—अर्थात् बाद विवाद—करना चाहिये यह प्रथम समाधि है, फिर एकांत में बैठकर उस विवाद संबंधी विचार करना चाहिये. यह दूसरी समाधि है जब विचार में— आनंद प्राप्त होने लगे, तो तीसरी समाधि समझना चाहिये. जब सात्विक बुद्धि के द्वारा आनंद के मूल आत्मा तक पहुंच होवे, उस को चौथी समाधि कहा है; ये चारों सविकल्प समाधि कही गई हैं, और चारों का नाम सम्प्रज्ञात योग रक्खा है, क्योंकि ये समाधियां इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा प्राप्त होती हैं. इस के पीछे निर्विकल्प समाधियों के नियम और आनंद का वर्णन है, जिनका नाम असम्प्रज्ञात योग रक्खा है ॥

। दूसरा मध्यम अधिकारी ।

मध्यम अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार दुष्ट हों—परंतु कर्म्म श्रेष्ठ हों. उस को प्रथम संस्कार उत्तम करने चाहिये, जिन के उपाय नीचे लिखे जाते हैं:—

निष्काम कर्म्मों का करना-अर्थात् अपनी इच्छाएं और स्वार्थ को त्याग कर, परोपकार के काम करना वा परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना में लगा रहना ॥

२-तप-अलंकार रूपी कथा में तप की व्याख्या इस रीति से वर्णन की है, कि विश्व को एक मार्ग समझो, जिस के उत्तर में अर्थात् ऊंची ओर स्वर्ग है और दक्षिण अर्थात् नीची ओर नरक है मनुष्य का शरीर एक रथ समझो, जिस में इन्द्रियां रूपी अश्व जुते हुए हे मन रूपी सारथी अर्थात् कोचवान् है आत्मा रूपी राजा उसके भीतर विराजमान् हं और बुद्धि रूपी मंत्री उस की आज्ञाओं को मन तक पहुंचाता है. मार्ग के दोनों ओर भांति भांति के मनोहर पदार्थ दिखाई देते हैं. और भयानक वन और कंदराएं भी हे. मन उन को देखने में वारम्वार लग जाता है और अश्वों की पूर्ण सावधानी रखके चलाने के बदले, उन की लगाम ढीली छोड़ देता है और रथ की खड़खड़ाहट में बुद्धि के कहने को नहीं सुनता है. अश्व ऊपर जाने के बदले, जिस में उन को दुःख और परिश्रम होता है, वार वार नीचे की ओर फिर जाते हैं; और भागने लगते हे, और कुमार्ग चल के रथ के विभागों को बिगाड देते हे. तप से यह प्रयोजन है, कि घोड़ों और सारथी को यथायोग्य नियम में रख कर, आवश्यकता के अनुसार, कभी शीघ्र और कभी धीरे धीरे चलाया जावे और रथ के संपूर्ण अंगों को देखा जावे, जब कोई विभाग किञ्चित् भी बिगड़ा हुआ दीखे, उसी समय उस को सुधारा जावे, और मार्ग में, चाहे जैसी सुंदर वस्तुएं दृष्टि गोचर हों, उन पर ध्यान न दिया जावे, और चाहे जैसी कठिनाइयां हों, उन को धैर्य और वीरता से सहन किया जावे. वारम्वार किसी

एक शब्द ॐम् आदि वा जप करने, और इस प्रकार से मन के रोकने को भी तप कहते हैं. एकान्त में बैठ कर इन्द्रियों के रोकने को भी तप कहा गया है. शारीरिक राग द्वेषों को रोकने के लिये व्रत करने वा पंचधूणी तपने इत्यादि को भी तप कहते हैं तप के द्वारा दुष्ट संकल्पों का बीज भस्म होजाना कहा गया है ॥

। तीसरा कनिष्ठ अधिकारी ।

कनिष्ठ अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के विचार और कर्म्म दोनों दुष्ट हों उस को उचित है कि परमात्मा को सर्व व्यापी समझ कर दुष्ट कर्म्म करने से डरता रहे, और इसी प्रकार परमात्मा को अंतर्यामी समझ कर दुष्ट विचार का संकल्प भी मन में न लावे यदि निराकार परमात्मा को ध्यान में न ला सके, तो जो वस्तु अत्यंत प्रिय हो, उस पर ध्यान जमाना चाहिये ॥

चौथा अत्यंत कनिष्ठ अधिकारी ।

अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार भी दुष्ट हों, और कर्म भी; और उन में इतना मोह हो गया हो—वा स्वभाव पड़ गया हो-कि उन को त्यागने की इच्छा वा साहस भी न हो सके-परन्तु योगाभ्यास की इच्छा हो उस के लिये अष्टांग योग है ॥

अष्टांग योग का विस्तार पूर्वक वर्णन ।

अष्टांग योग से प्रयोजन आठ साधनों से है, जिन में से एक एक ऐसा साधन है जिसका भले प्रकार अभ्यास करने से

बुरी अवस्था अच्छी अवस्था से बदल जानी संभव है; वे आठ साधन ये हैं:-

१ यम.	५ प्रत्याहार.
२ नियम.	६ धारणा.
३ आसन.	७ ध्यान.
४ प्राणायाम.	८ समाधि.

इन आठों की संक्षेप व्याख्या इस रीति से है ॥

१यम–यम शब्द का अर्थ रोकना है. योग परिभाषा में चाल चलन के पांच नियमों से प्रयोजन है:-

१ अहिंसा.
२ सत्य.
३ अस्तेय.
४ ब्रह्मचर्य्य.
५ अपरिग्रह.

अहिन्सा–से यह प्रयोजन है, कि किसी जीव को दुःख न दिया जावे, न दुःख देने का मन में विचार किया जावे. यह अहिंसा २१ प्रकार की कही गई है और इस को काम में लाने के लिये सदैव बुद्धि को काम में लाना चाहिये–जैसे किसी हत्यारे को फांसी दी जावे वा अपने बचाव वा देश के हित के लिये किसी का प्राण तक भी लिया जावे तो वह हिंसा नहीं है– अहिंसा अर्थात् दया आत्मा का एक गुण है, जब सदैव उस को उत्तम प्रकार से बर्ता जाता है, तो किसी जीव से दुःख नहीं पहुंच सक्ता–क्योंकि मनुष्य का विद्युत, जो हर समय शरीर से निकलता रहता है, उस में मनुष्य के

बिचारों का प्रभाव आ जाता है. दयावान् मनुष्य का विद्युत्, जहांतक उस का प्रभाव पहुंचेगा, दूसरे जीवों को भी दयावान् बना देगा—यही कारण है कि बहुधा ऐसी बातें सुनी जाती हैं कि कोई महात्मा सिंह वा सर्प के सन्मुख आये—परतु उन को कुछ हानि न पहुंची कारण यह है, कि उन के विद्युत के प्रभाव से, वह पशुभी दया के गुण से गुणी हो गया ॥

सत्य—से यह प्रयोजन है. कि जैसा मन में हो वैसा ही कहै, करै और मानै ॥

उत्तम सत्य यह है, कि जैसा भविष्यत् में होनेवाला हो उस को भी बिचार कर के वैसा ही कहै. सत्यवादी का मन शुद्ध हो कर, उस में प्रकाश उत्पन्न हो जाता है और जो कार्य वह करता है, वह उत्तम प्रकार से सफलता के साथ अंतको पहुंच जाता है ॥

अस्तेय—से प्रयोजन किसी वस्तु को बिना उस के मालिक की आज्ञा के न लेना—वरन लेने का बिचार भी न करना. ऐसी प्रतिज्ञा से उस को प्रत्येक वस्तु यथा योग्य प्राप्त होती रहती है ।

ब्रह्मचर्य्य—से प्रयोजन वीर्य की रक्षा और विद्या का पढ़ना है. इस का फल यह है कि शरीर आरोग्य और बुद्धि निर्मल होकर, सदैव आनंद प्राप्त होता रहता है ॥

अपरिग्रह—से यह प्रयोजन है कि सामर्थ होने पर भी आवश्यकता से अधिक पदार्थ एकत्र न करना और जितेन्द्रिय रहना. इस साधन के बहुत कालतक ठीक ठीक करने से जन्म जन्मांतर के वृत्तान्त ज्ञात होने लगते हैं ॥

२ नियम–यह भी पांच हैं,–

१ शौच.
२ संतोप.
३ तप.
४ स्वाध्याय.
५ ईश्वर–प्रणिधान.

शौच–से प्रयोजन शुद्धता से है जब नित्य प्रति शरीर को शुद्ध रखने पर भी बाहर भीतर मलीनता भरी रहती है, तब औरों के शरीर में भी ऐसी ही दशा होने का विश्वास होता है और इस कारण से दूसरों के शरीर से स्पर्श करने को मन नहीं चाहता और अकेला रहना भला लगता है, जिस के हेतु मन में एक मुख्य आनंद और एकाग्रता प्राप्त हो ती है ॥

सन्तोप से यह प्रयोजन है कि जिस बस्तु की आवश्यकता हो उस के लिये उचित उद्योग किया जावे, फिर भी यदि प्राप्त नहो, तो सन्तोप किया जावे, जो सुख, धन आदि से मिलता है, उस से बहुत अधिक सुख संतोप से प्राप्त होजाता है, इसी कारण से बहुधा महात्माओं ने संतोष को मोक्ष के सुख के तुल्य कहा है. एक कवि का वाक्य है ॥

। दोहा ।

गोधन गजधन बाजिधन, और रत्न धन खान ।
जब आयो सन्तोपधन, सब धन धूर समान ॥ २ ॥

। महाराजा भर्तृहरीजी का इतिहास ।

कहते हैं कि भर्तृहरीजी साधु पने की अवस्था में किसी बन में बैठे थे, उस ओर किसी राजा की सवारी आई, राजा के सेवकोंने भर्तृहरीजी से कहा, कि राजाजी की सवारी आती है, तुम इधर से हट जाओ. भर्तृहरीजी ने कहा, कि हम महाराजा हैं, राजा

को कहदो कि दूसरी ओर को चला जावे. राजा ने यह बात सुनली और भर्तृहरीजी से पूछने लगा, कि तुम किस प्रकार महाराजा हो। भर्तृहरीजी ने कहा कि तुम किस प्रकार राजा हो! राजा ने उत्तर दिया, कि मेरे पास असंख्य सेना है. भर्तृहरीजी ने पूछा कि सेना किस प्रयोजन के लिये है? राजा ने उत्तर दिया, कि शत्रुओं को दंड देने और जीतने के लिये. भर्तृहरीजी ने कहा कि हम इस कारण महाराजा हैं कि हमारा कोई शत्रुही नहीं और इसी कारण सेना भी रखने की आवश्यकता नहीं. राजा ने कहा, कि मेरे पास असंख्य द्रव्य है, जिस के द्वारा, जिस वस्तु की इच्छा हो, तुरंत प्राप्त हो सक्ती है. भर्तृहरीजीने कहा कि तुम द्रव्य इत्यादि से, जिस वस्तु को मन चाहे, प्राप्त कर सक्तेहो और हम किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं रखते, इसी कारण धन आदि प्राप्त करने और रक्षा करने के दुःख से बचे हुए हैं. इस हेतु यदि तुम अपने तईं राजा समझते हो, तो हम अपने को महाराजा मानते हैं ॥

तप की व्याख्या पहिले कही गई है ।

स्वाध्याय से उन पुस्तकों के पढ़ने वा नित्य पाठ करने से प्रयोजन है, कि जिन के द्वारा अपने स्वरूप का ज्ञान होकर, सच्चा आनन्द प्राप्त होता है, जो मनुष्य विद्यावाले हों वे आत्म विद्या की पुस्तकें पढ़ें. और जो विद्यावान् न हों, वे परमात्मा का नाम जपें. वास्तव में मनुष्य के भीतर सच्ची विद्या का सोता उपस्थित है—परंतु एक तंग और अंधेरे जंगल में होकर, उस अमृत के सोते पर पहुंचना होता है—यद्यपि विद्यावान् पुरुष विद्या का दीपक लेकर उस मार्ग में सुख से जासक्ता है—परंतु यह भी संभव है कि दीपक के प्रकाश से कई मन के लुभाने वाली वस्तुओं को देखने के कारण सच्चे सोते पर पहुंचना न होसके अर्थात्

विद्यावान् का अनेक प्रकार से आदर होता है इस लिये बहुधा विद्यावान् उस सुख और मान बड़ाई के कीचड़ में फँस जाते हैं; और नाम का जप, अंधे की लाठी के अनुसार है, कि खटखटाता हुआ धीरे धीरे चला जाता है, स्थान के पहुंचने पर दोनों को एकसा आनन्द होता है, योग साधनों में स्वाध्याय एक उत्तम साधन समझा गया है, व्यासजी अपने भाष्य अर्थात् योगशास्त्र की टीका में लिखते हैं, कि इस साधन करने वाले के पास देवता और सिद्ध और ऋषि लोग जो अंतरिक्ष लोक में विचरते हैं, दर्शन करने आते हैं; और उस के उत्तम कर्म्मों और प्रयोजनों में बहुधा सहायता करते हैं।

ईश्वर प्रणिधान से प्रयोजन यह है, कि परमात्मा को अपना स्वामी समझकर, उस के अतिरिक्त और किसी पर भरोसा न करना—इस साधन से परमात्मा हर समय सहायक रहता है और उस की सहायता के कारण सारी इच्छाएं पूर्ण होजाती हैं ॥

३—तीसरा साधन अष्टांग योगका **आसन** है—पतञ्जलीजी कहते हैं,कि जिस बैठक से सुख हो बैठना चाहिये—परंतु जिस बैठक से बहुत काल तक एक पुरुष बैठता है, उसी में सुख जान पड़ता है—मुख्य करके सिद्धासन से बैठना अति लाभ-दायक है, जितना दृढ़ आसन होता है उतनी ही योग साधन में सुलभता होती है ॥

४—चौथा साधन **प्राणायाम** है—जिस प्रकार अग्नि में सुवर्ण डालने से उस का मैल, मिट्टी कट जाते हैं, उसी प्रकार से प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं—मन स्थिर हो जाता है और ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाती है ॥

५-**प्रत्याहार** पांचवां साधन है-प्रत्याहार का शब्दार्थ उलटे भोजन का है-कानों का भोजन अर्थात् विषय सुनना और नेत्रों का भोजन देखना है. इस साधारण भोजन से हटाके कानों को भीतर के शब्द सुनने में और नेत्रों को भीतर का प्रकाश देखने में लगाना चाहिये इसी प्रकार ये दोनों इन्द्रियाँ रुक जाती हैं. इन्द्रियों के रुकने से मन भी रुकने लगता है ॥

६ **धारणा**-से यह प्रयोजन है कि हृदय, मस्तक इत्यादि स्थान में चित्त को लगाना और उस स्थान में ज्योति निरंजन अर्थात् प्रकाश रूप आत्मा का अनुभव करना ॥

८ बारम्बार इस प्रकार से करने और उस स्थान में चित्त के स्थिर करने को **ध्यान** कहते हैं ॥

८ जब भले प्रकार चित्त स्थिर होने लगे और आत्मा के आनन्द में मग्न होकर, उस में रम जावे, उस को **समाधि** कहते हैं. इस अवस्था को प्राप्त होकर अंतःकरण शुद्ध हो जाता है, संकल्प-मुख्य कर के दुष्ट संकल्प-नष्ट हो जाते हैं, बुद्धि सात्विक हो जाती है और सच्चे ज्ञान के सुनने और समझने का अधिकार हो जाता है, जिस का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

। दूसरा भाग ।

। तीसरा अध्याय ।

। ज्ञान ।

। ज्ञान की व्याख्या ।

ज्ञान—एक संस्कृत शब्द है जिस का अर्थ जानना है, परिभाषा में ज्ञान से यह प्रयोजन है, कि अपने स्वरूप को और संसार की सारी सृष्टि को जैसी वह है, भले प्रकार से जान ली जावे, और उस से यथा योग्य काम लिया जावे ।

। ज्ञान प्राप्त होने के लक्षण ।

जब योगाभ्यास के द्वारा मल विक्षेप और आवरण अर्थात् शरीर के रोगादिक, और पापों की प्रबलता, और मन की चंचलता, और बुद्धि की अविद्या रूपी मूर्खता का चिक दूर हो जाता है, तब जीवात्मा की चमत्कार रूपी शक्ति का अनुभव होने लगता है, जिस का पहिला लक्षण यह है, कि विवेक की शक्ति अर्थात् भला वा बुरा सत्य वा असत्य इत्यादि में विवेचना करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है ।

भारतवर्ष के ऋषियों ने, इस पद पर पहुंच कर, जान लिया है कि जीवात्मा पांच कोश के भीतर है और चार उस की अवस्थाएं हैं—परंतु वह इन सब से निराला है, पांच कोश नीचे लिखे—अनुसार कहे जाते हैं ।

। कोषों की व्याख्या ।

अन्नमय कोश—त्वचा से लेकर अस्थि पर्यंत का समुदाय पृथ्वी तत्त्व से बना हुआ है ।

२-प्राणमय कोश-प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान के समुदाय का नाम है।

प्राण जो भीतर से बाहर आता है-अपान जो बाहर से भीतर जाता है.-समान जो नाभि में स्थित होकर सर्व शरीर में रस पहुंचाता है-उदान जिस से भोजन और जल मुख के द्वारा भीतर खैंचा जाता है-व्यान जिस से शरीर में संपूर्ण हिलांचली की जाती है॥

३-मनोमय कोश-वह है जिस में मन के साथ-अहंकार और पांच कर्म्मेन्द्रियां हैं॥

४-विज्ञानमय कोश-वह है जिस में बुद्धि, चित्त और पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं-जिन से जीवात्मा ज्ञान आदि व्यवहार करता है॥

५-आनंदमय कोश-वह है जिस में प्रीति-प्रसन्नता-थोड़ा आनंद-अधिक आनंद और आधार कारण रूप प्रकृति है। ये पांच कोष हैं, जिन के द्वारा जीवात्मा सब प्रकार के कर्म, उपासना, ज्ञान आदि व्यवहार करता है॥

। अवस्थाओंकी व्याख्या ।

चार प्रकार की अवस्थाएं कही गई हैं:-

१-जाग्रदवस्था-अर्थात् जगने की दशा-इस में जीवात्मा इन्द्रियों में विशेष प्रवेश कर के सारे बाहरी व्यवहार करता है॥

२-स्वप्नावस्था-अर्थात् अर्ध अथवा सामान्य निद्रा इस में इन्द्रियां शांत होजाती हैं और जीवात्मा का विशेष प्रवेश मन में होता है॥

३-सुषुप्त्यवस्था-अर्थात् गहरी निद्रा वा अचेतनता-इस में इन्द्रियां और मन दोनों शांत होजाते हैं, और जीवात्मा का विशेष प्रवेश अहंकार रूपी बुद्धि में होता है, जिस के

कारण जागने पर कहा जाता है, कि बड़ी गहरी निद्रा आई और उस में सुख मिला ॥

४-तुरीयावस्था-अर्थात् आनंद यह अवस्था केवल योग की समाधि के द्वारा प्राप्त होती है-इस में जीवात्मा इन्द्रियों मन बुद्धि और अहंकार से रहित होकर, अपने स्वाभाविक गुणों के द्वारा आनंद में रहता है ॥

इन सब अवस्थाओं से भी जीवात्मा पृथक् है--वरन इन का प्रेरक, साक्षी, और कर्त्ता भोक्ता है ॥

विवेक के द्वारा ज्ञानवान् को जान पड़ता है, कि पापाचरण दुःख का मूल कारण है, और धर्म्माचरण सुख का मूल कारण है--निदान वह धर्म्माचरण मेंही प्रवृत्त रहता है, जिस के कारण सत्य वैराग्य उत्पन्न होता है ॥

। वैराग्यकी व्याख्या ।

संपूर्ण सांसारिक पदार्थों को असत्य समझकर, उन में मन न लगाना और असत्य शरीर, मन, इन्द्रियों इत्यादि के द्वारा सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का यत्न करना--सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं से उनके गुण, कर्म्म और स्वभाव जानकर यथायोग्य काम लेना और परोपकार को परम धर्म्म समझना वैराग्य कहाता है ॥

। सत्योपदेशकी प्राप्ति ।

इस प्रकार विवेक और वैराग्य के साधन करने से, ज्ञानवान् को तुच्छ २ बातों से भी उपदेश मिलने लगता है, और जितना उस उपदेश का आदर, और सच्चे मन से पालन किया जाता है, उतनी ही ज्ञान की प्राप्ति अधिक होती जाती है ।

। दत्तात्रेयजी का वृत्तान्त ।

प्राचीन समय में दत्तात्रेयजी एक प्रसिद्ध योगी हुए है। कहते हैं कि उन्हों ने चौबीस गुरू धारण किये, जिस का प्रयोजन यह है कि जहां जहां और जिस जिस प्रकार से उन को ज्ञान का उपदेश हुआ, उस को तुरंत ही ग्रहण और स्वीकार किया. एक बार दत्तात्रेयजी बाजार अर्थात चौहटे में खडे थे राजा की सवारी बड़ी धूमधाम से आई, संपूर्ण मनुष्य उस को देखने लग गये—परंतु एक तीर बनानेवाला अपने कार्य में ऐसा तत्पर था की उस को राजा की सवारी और संपूर्ण धूमधाम की कुछ भी सुध न रही. दत्तात्रेयजी ने उस को गुरू धारण कर लिया और उस से यह शिक्षा ली, कि इसी प्रकार धार्मिक पुरुषों को परमात्मा के ध्यान में इतना मग्न होना चाहिये, कि सांसारिक धूमधाम का उन को ज्ञान तक भी न हो ॥

इसी प्रकार जीवात्मा के चमत्कार रूप शक्ति से अंतर में यही शिक्षाएं मिलने लगतीं हैं, कि उन उपदेशों को अति पवित्र समझ कर बिना किसी प्रकार के वाद विवाद के तुरंत उन का पालन करना उचित है. यदि उन आज्ञाओं का पालन नहीं किया जाता, तो भविष्यत् काल में उन का मिलना बंद हो जाता है. ये उपदेश, प्रति अवस्था में, लाभ दायक ही होते है—किन्तु कभी कभी उन का लाभ तुरंत समझ में नहीं आता ॥

ये ही प्रेरणाएं हैं जो शब्द--नाद--आकाश वाणी--श्रुति--हदीस-- इल्हाम इत्यादि नामों से कही जाती है ।

। चैतन्यजीका वृत्तान्त ।

यह महात्मा बंगाल देश में भक्ति मार्ग फैलाने के लिये प्रसिद्ध हुए हैं--कुछ काल तक उपदेश करने के पश्चात्, चैतन्यजी को, ऊपर लिखे अंतरीय प्रकाश के द्वारा, प्रेरणा हुई, कि वह गृहस्थाश्रम को त्याग कर, सन्यास धारण करे. चैतन्य जीको अपनी माता से अधिक प्रीति थी, फिर भी उन्हों ने, अपनी माता और दूसरे संबंधियों की प्रीति और गृहस्थ के सुखों से मुख मोड़ कर, तुरंत सन्यास धारण करलिया. थोड़े काल में उन को निश्चय भी हो गया, कि सन्यास धर्म्म में वे अपने को और संसार को अधिक लाभ पहुंचा सक्ते थे--क्योंकि उस आश्रम में जाने से उन को माता आदि संबंधियों का कुछ भी मोह, सोच और भार नहीं रहा; और वे अपना संपूर्ण समय धर्म्म के सूक्ष्म भाव और सिद्धांतों को जानने, और फैलाने में लगा सके, जिस के कारण असंख्य पापी पुरुष धार्म्मिक बनकर संसार सागर से तिरगये ॥

ऊपर लिखे पवित्र प्रकाश के दर्शन होनेपर, बहुधा ज्ञानवान् महात्मा तो, उस के देखने से तृप्त होजाते हैं और आनंद में ऐसे मग्न होजाते है, कि बाहरी संसार के संपूर्ण बंधनों से अपना संबंध अलग करके, और उन्हें चित्त से भुला करके, उन को त्याग देते हैं; और कछवे की भांति अपनी संपूर्ण शक्तियों को छिपा कर, गूंगे के गुड़की तरह अपने आनंद का स्वाद चखते रहते हैं--संसारी मनुष्य उन को उन्मत्त समझने लगतेहैं, और वे संसारी मनुष्यों को भ्रष्ट बुद्धि और बावला समझ के पश्चात्ताप करते हैं. वे मन में हंसते रहते हैं, कि सांसारिक मनुष्य सुखकी चाहना रखते हुए, कर्म्म ऐसे

करते हैं, कि जिन से दुःख प्राप्त हो। सच्चा सुख तो उन के अंतर में है, परंतु वे उस को बाहर ढूंढते फिरते हैं और जिस प्रकार से मृग की नाभी के भीतर तो कस्तूरी होती है, और जब पवन में उस की सुगंध फैलती है तो मृग उस को बाहर समझकर कोसों भ्रमण करता फिरता है-वे लोग भी अपने भीतर के कोषों को छोडकर, संसार के घोर अंधकार और मरुस्थल में दौड़ते फिरते हैं, और यदि कोई महात्मा दया कर के उन की भूल से उन को सचेत करना चाहता है, तो वे उस से झगड़ा करने लगते हैं, और अनेक प्रकार से उस को बदनाम कर के दुःख पहुंचाना चाहते हैं-यद्यपि बहुधा महात्मा तो यह अवस्था देख कर चुप हो रहने को भला समझते हैं और अपने आनंद में ही मग्न रहते हैं-परंतु जिन को परमात्मा की ओर से प्रेरणा होती है, वे सहस्रों क्लेश और विरुद्धता सहन करके, और अपने महत् सुख को त्याग के भी उपदेश करना आरंभ कर देते हैं, और उन भूले भटकियों के उद्धार के लिये ऊपर लिखे अंतरीय प्रकाश से प्रेरणा चाहते हैं॥

निदान इसी पवित्र प्रकाश से शिक्षा लेने के लिये महाराज रामचंद्रजी प्रति दिन प्रातःकाल के समय एकांत में बैठा करते थे और उस समय किसी पुरुष को यहां तक कि अपने प्यारे भ्राता लक्ष्मण जीको भी अपने पास नहीं आने दिया करते थे और जब एक दिवस अति आवश्यकता के कारण लक्ष्मण जी उस अवसर पर उन के समीप गये तो रामचंद्र जी अत्यंत अप्रसन्न हुए ॥

इसी प्रकाश के प्राप्त करने के लिये सांख्य मुनि गौतमजी ने राज्य त्याग छः वर्ष तक तप किया और उस की आज्ञा के अनुसार बौद्धमत को प्रकाश किया ॥

इसी प्रकाश के दर्शन और उस से आज्ञा लेने के लिये हज़रत मूसा तूर पर्वत पर जाया करते थे।

इसी प्रकाश को प्राप्त करने और उस से प्रेरणा लेने के लिये हज़रत ईसा अपना मत चलाने से पहिले चालीस दिन तक बन में रहे।

यही प्रकाश है कि जिस के लिये हज़रत मुहम्मद साहिब बहुत कष्ट और इन्द्रियों के दमन के साथ शहर मक्का की गुफाओं में चिल्ले खेंचा करते थे और इसी प्रकाश के द्वारा उन की वही उत्तरा करती थी॥

यही प्रकाश है कि जिस से जरदश्तने आतश परस्त अर्थात् अग्निपूजक मत की नीव डाली।

पंजाब देश के प्रसिद्ध रीफोरमर अर्थात् मत प्रचारक गुरू नानक साहिब और उन के उत्तराधिकारी भी रात के पिछले प्रहर से दिन के पहिले प्रहर तक के समय का बहुत सा भाग इसी पवित्र रोशनी के दर्शन करने और उस से प्रेरणा पाने में लगाया करते थे और उसी के अनुसार धर्म्म का प्रचार किया करते थे।

शंका—यदि ऊपर लिखे प्रकाश के द्वारा सत्य प्रकाश होता है और ऊपर लिखे कई महात्माओं को हुआ तो बतलाइये कि उन सब के मतों में सत्य ही है, वा कुछ असत्य भी? और यदि सत्यही है तो फिर दूसरे अंतर क्यों हैं?

समाधान—इस शंका का उत्तर सुनने से पहिले यह समझना अवश्य है कि सत्य और असत्य का क्या स्वरूप है।

। सत्य और असत्य का स्वरूप ।

सत्य—वह है जो कभी बदले नहीं अर्थात् भूत भविष्यत

और वर्तमान काल में एक ही तरह पर रहे. वह केवल ऊपर लिखी हुई चमत्कार रूप शक्ति है, जिस को चैतन्य शक्ति भी कहते हैं, और उस के कई वर्ग हैं—जैसे शरीर के अंगों में उस को देवता कहा है प्रत्येक शरीर के भागों के पृथक२ देवता हैं जो अपने २ भाग में स्वतंत्रता से काम कर सक्ते हैं परंतु अपने से बड़े भाग की अपेक्षा, आधीनता का संबंध रखते हैं. इन असंख्य देवताओं को नियम में रखनेवाली शक्ति को जीवात्मा कहते हैं, जो संपूर्ण शरीर में व्यापक होकर, जहाँतक उस का अधिकार है प्रत्येक काम करने को स्वतंत्र है परंतु जो कार्य एक वार किया जाता है, उस के उत्तम वा निकृष्ट फल को भोगने के लिये, अपने से बड़ी ईश्वरी शक्ति के आधीन है—अर्थात् संपूर्ण जीवात्मा ईश्वर के नियमों के आधीन हैं, और जो शक्ति इन सब शक्तियों को सहारा दे रही है और नियम में रखती है, उस को परमात्मा--परमेश्वर—और ब्रह्म कहते हैं. वास्तव में एक ही शक्ति है, परंतु काम पृथक पृथक होने के हेतु भिन्न भिन्न नाम रक्खे गये हैं, भरत खण्ड के सर्व साधारण मनुष्य राम नाम से इस शक्ति को पुकारते हैं और लौकिक में "राम नाम सत्य है" यह वाक्य प्रचलित है और मुख्य कर के जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उस की रथी के साथ यही वाक्य वारम्वार बोला जाता है--जिस से अधिक बुद्धिमान् और न्यून बुद्धीय संपूर्ण समझ जाते हैं, कि मृत्यु सिरपर स्थित है, और सत्य केवल परमात्माही है इसी प्रकार से मुसलमानों के मत में भी सत्य स्वरूप परमात्मा को "हक़ताआला" कहते हैं।

--असत्य—वह है, जो सदैव एक सूरत से दूसरी सूरत में बदलता रहे, जिस को बोल चाल में प्रकृति और जड़ शक्ति भी

कहते हैं और वह स्थूल देह अर्थात् शरीर है, जिसकी सब से सूक्ष्म शक्ति बुद्धि है।

ऊपर लिखी हुई दोनों सत्य वा असत्य और जड़ वा चैतन्य शक्ति स्वभाव से अनादि हैं. इनमें से सत्य शक्ति तो, सदैव एकही प्रकार से रहती है, परंतु जड़ शक्ति प्रभाव से सदैव बदलती रहती है।

अलंकार में सत्य शक्ति को अमृत रूपी सर कहा गया है, जो चारों ओर माया रूपी मिट्टी की ऊंची २ दीवारों के कोट से घिराहुआ है. योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य उस सर का अपने अंतर में अनुभव करता है और संयम रूपी डोल और रस्सी से सांसारिक मनुष्यों के अज्ञान रूपी रोग के नाश करने के हेतु, उस सर में से सात्विक बुद्धि रूपी बर्तन में अमृत भर कर बाहर ले आता है, और धर्म्म की तृषावाले मनुष्य उस के पास आकर अपनी तृषा बुझाने लगते हैं. ऊपर लिखा पात्र अर्थात् सात्विक बुद्धि जितना स्वच्छ और विशाल होता है, उतना ही सत्य का प्रकाश उस में अति स्पष्ट और अधिक मात्रा में आता है, और उसी परिमाण से उस मनुष्य के उपदेश में अधिक प्रभाव और लाभ होता है, और सहस्त्रों पुरुष उसके कथन को तुरंत ग्रहण कर लेते हैं–क्योंकि वह अपनी तीव्र बुद्धि के कारण कठिन से कठिन बात को साधारण शब्दोंमें कहकर सब को समझा देता है–कई पुरुष अपने निश्चय के अनुसार, उस को भी परमेश्वर वा परमेश्वर के स्थानापन्न समझने लगते हैं–निदान धर्म्म प्रचारक महात्माओं के उपदेश में अंतरीय भेद तो बुद्धि के परिमाण से होता है, और बाहरी भेद के कारण नीचे लिखे जाते हैं ॥

सात्विक बुद्धि से रीफोरमर अर्थात् धर्म्म प्रचारक के हृदय में जो सत्य का प्रकाश होता है—उस के द्वारा केवल यह प्रेरणा होती है, कि जिस सुधार को यह चाहता है, उस में अवश्य सफलता होगी-यह प्रेरणा उस के मन में इतनी जम जाती है, कि चाहे जितने दुःख और क्लेश सहने पड़े—परंतु वह न घबराकर, प्रसन्नतापूर्वक उन को सहन करके, अपना कार्य किये चला जाता है, और उस काम के करने के लिये उस को मुख्य मुख्य रीतियां समयानुकूल उस काल के मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, गृहस्थ, सामाजिक और पारलौकिक धर्म्म की अवस्थाओं का अनुमान कर के, सोचनी और धारण करनी पड़ती हैं-साथ ही उस के पबलिक ओपिनियन अर्थात् सर्व साधारण की सम्मति-राज्य-प्रकृति-विद्या इत्यादि की अवस्था और प्रभाव का भी ध्यान रखना पडता है. १. अनेक मतों में भेद हो जाने के ऊपर वर्णन किये हुए कारण ऐसे हैं कि वे सदैव बने रहेंगे—परंतु इन के रहते हुए प्रत्येक सच्चे धर्म्म का उत्साही, अपने मत या जिस मत को वह अच्छा समझे, उसके नियमानुसार चलने से मन की इच्छाएँ पूरी कर सक्ता है।

नाना प्रकार के मत मतान्तर जो वर्तमान हैं, ये ऐसे समझो कि सच्चे धर्म्म की प्राप्ति के लिये मानो घाट बने हुए हैं, जिन में होकर ऊपर वर्णन किये हुए अंतरीय सर पर सहज से पहुंचना संभव है—परंतु उन घाटों के द्वारा अंदर जाने के बदले, कोट के बाहर खडे खड़े यह वाद विवाद किया जावे, कि हमारा घाट उत्तम है, और दूसरे संपूर्ण बुरे हैं, तो कोई लाभ नहीं हो सक्ता।

और यदि वाचक ज्ञानी महात्मा, स्वार्थ इत्यादि से, सच्चे धर्म्म के उपदेश करनेवाले को दुःख देते हैं तो परमात्मा के न्याय से दंड के भागी होते हैं—क्योंकि सैकड़ों में से कोई एक ज्ञान की ओर ध्यान देता है-सहस्रों ध्यान देनेवालों में से कोई २ यथायोग्य यत्न करता है—और लाखों यत्न करनेवालों में से कोई यथार्थ ज्ञान को प्राप्त होता है—और करोड़ों ज्ञानियों में से कोई ज्ञान का उपदेश करने के लिये खड़ा होता है—निदान ऐसे विरले परमात्मा के प्यारे उपदेशक को दुःख देने का विचार करना, मानों परमात्मा के विरुद्ध लड़ाई का झंडा खड़ा करना है. जो कोई मनुष्य ऐसे महात्मा का अपराध करता है वह जैसे कि कुष्ठ के रोग वाला दुःख पाता है और उस के दुःख का प्रभाव पीढियोंतक रहता है, उसी प्रकार अपनी सात पीढ़ी समेत नरक में वास करता है—और यदि वह किसी कुल का मुखिया होता है तो सारे कुल को क्लेश होता है-यदि वह जातिका अगवा होता है तो सारी जाति की हानि होती है—यदि राजा होता है तो उसका राज्य नष्ट हो जाता है—इस के विरुद्ध जो कोई ऐसे महात्मा का यथायोग्य आदर करता है, वह अपनी सात पीढी समेत स्वर्ग का भागी होता है—कुल का मुखिया हो तो उस का संपूर्ण कुल लाभ उठाता है—जाति का अगवा हो तो सारी जाति उन्नति पाती है—राजा हो तो उस के राज्य में अनेक उन्नतियां होने लगती हैं—और जो कोई उस महात्मा के उपदेश का आदर करके, उस के अनुसार चलता है, वह सच्चा ज्ञान प्राप्त करके यह लोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लेता है—अहोभाग्य है वे मनुष्य वे कुल के मुखिये, वे जाति के अगुए, और वे राजा,

जो सच्चे महात्मा का पूर्ण आदर करते हैं और उन के उपदेश के अनुसार चलते हैं !

दूसरी शंका ।

आपने ज्ञान प्राप्ति की बड़ी लंबी चौड़ी रीतियां वर्णन की हैं और वेदव्यासजी ने कि जिन्हों ने वेदान्त शास्त्र रचा है, और शंकर स्वामी ने कि, जिन्होंने वेदान्त शास्त्र का भाष्य अर्थात् टीका की है, ज्ञान प्राप्ति के लिये केवल एक वाक्य जानना उचित समझा है अर्थात् "ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म एक हैं और मैं ब्रह्म हूं" इस को महावाक्य और संपूर्ण वेदों का सार कहते हैं इसी का उपदेश गुरू मंत्र की भांति दिया जाता है क्या इस बात के जानने से मनुष्य ज्ञानवान् नहीं हो सक्ता ?

। समाधान ।

इस वाक्य ही को क्या परंतु चारों वेदों को भी पढ़कर ज्ञानी होना संभव नहीं, उस समय तक कि वेदों को पढ़ कर- के उन में जो उपदेश लिखे हैं, उस के अनुसार चिरकाल पर्यंत कर्म्म न किए जावें–केवल पुस्तक विद्या से वाचक ज्ञानी हो कर, अपने को ब्रह्म समझना ऐसा है जैसे कि थिएटर–अर्थात् नाटकगृह के कौतुक में राजा इन्द्र का स्वांग बन कर कोई मनुष्य अपने को राजा इन्द्र समझ ले ।

ऋषियों ने असम्प्रज्ञात योग की निर्विकल्प समाधि द्वारा ज्योति स्वरूप परमात्मा का अनुभव किया है, जिस से उन को निश्चय हुआ है, कि इस जगत् में सार वस्तु, जो स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म है, केवल ब्रह्म स्वरूप परमात्मा ही है- उस से ही सब पदार्थ उत्पन्न हुए, वही उन सब को सत्ता दे रहा है, और महा प्रलय के समय उसी में सब पदार्थ लय हो

जावेंगे—यदि केवल एक वाक्य के जानने से ही ज्ञानी होना संभव होता तो बडे बडे ऋषि और मुनियों ने जो बहुत काल तक तप, सत्संग, और योगाभ्यास किया क्या वह सब व्यर्थ था ?

। शुकदेव मुनि का वृत्तान्त ।

यह महात्मा बादरायण ऋषि अर्थात् वेदव्यासजी के पुत्र हुए हैं—बाल्यावस्था से वैराग्य आदि शुभ गुणों से सुशोभित थे—चिरकाल पर्यंत तप करने के पश्चात् इन्होंने अपने पिता से आत्म विद्या की शिक्षा पाई परंतु इन को कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति और पूर्ण शांति न हुई तब व्यासजी ने इन को राजा जनक के पास उपदेश लेने को भेजा । राजा जनक ने पहिले इन की कई प्रकार से परीक्षा की और जब इन का अंतःकरण शुद्ध पाया, और इन के मन में ज्ञान प्राप्ति की सच्ची अभिलाषा देखी, तब इन के अधिकार के अनुसार उपदेश करके इन की तृप्ति की—यदि केवल एक वाक्य से ही ज्ञानी बनना संभव होता तो इतने परिश्रम और उद्योग के बदले वह वाक्य व्यासजी बचपन में ही शुकदेवजी को बतला सक्ते थे वा राजा जनक विना परीक्षा के उनके पहुँचतेही तुरंत बतला देते ॥

नारद जी का आख्यान ।

इसी प्रकार से छांदोग्य उपनिषद् में एक इतिहास आता है, कि नारदजी को वेद शास्त्र आदि पढ़ लेने पर भी सच्चे ज्ञान की प्राप्ति और शांति न हुई—इस कारण वे जहां किसी ज्ञानवान् पुरुष से मिलते थे उन से ज्ञान प्राप्ति का यत्न पूछते थे—और जब वह साधारण पुस्तकों में लिखे नियम बतलाता था, तो नारद जी निरास होकर कहा करते थे, कि

यह संपूर्ण उपदेश तो हम पुस्तकों में पढ़ चुके हैं–परंतु उन से ज्ञान और उस के द्वारा परमानंद प्राप्त नहीं हुआ, अंत में कहावत प्रसिद्ध है कि "जिन खोजा तिन पाइया" नारद जी का एक बार सनत्कुमार से मिलाप हुआ उन से भी नारदजी ने ज्ञान प्राप्ति का उपाय पूछा सनत्कुमारजी विद्यावान् अभ्यासी थे–उन्हों ने नारदजी से पहिले यह प्रश्न किया कि नारदजी ने क्या २ विद्या पढ़ी है जिस से अधिक विद्या का उपदेश करें नारदजी ने उत्तर दिया कि हम ने ऋक, यजुः, साम, अथर्व चारों वेद और आयुर्विद्या आदि चारों उपवेद और ज्योतिष आदि चौदह विद्या इत्यादि पढ़ी हैं–यह उत्तर सुनकर सनत्कुमार जी ने मुसकरा करके कहा कि नारद जी जिस परमात्मा का वर्णन तुम ने इन सब पुस्तकों में पढ़ा है उस को योगाभ्यास के द्वारा अपने अंतर में खोजो, तब सत्य ज्ञान और परमानंद प्राप्त होगा–यह कहकर योगाभ्यास की सुगम रीतियां नारद जी जैसे शुद्ध अंतःकरण वाले पुरुष को अधिकार के अनुसार उन्हों ने बतलाईं–जिन के द्वारा नारद जी को ज्ञान प्राप्त हुआ ॥

। तीसरी शंका ।

प्राचीन इतिहासों से यह भी निश्चय होता है कि अभ्यासी महात्माओं ने ज्ञान क्षणभर में भी सिखला दिया है निदान दो प्रसिद्ध इतिहासों का उदाहरण दिया जाता है ॥

। जड़ भरतजी और राजा रहुगण का वृत्तान्त ।

कहते हैं कि राजा रहुगण पालकी में बैठे हुए किसी बन में जा रहे थे–पालकी का एक कहार बीमार होगया राजा ने आज्ञा दी कि उस के बदले दूसरा मनुष्य तुरंत लाया जावे–

दैवाधीन उस बन में जड़ भरत जी विचरते थे, राजा के सेवकों ने उन को पुष्ट और भारी शरीरवाला देखकर, बीमार कहार के स्थान पर, पालकी में लगा दिया-जड़ भरत जी ने उस को प्रारब्ध का भोग समझ के कुछ बाद नहीं किया—परंतु मार्ग में चिऊंटी इत्यादि जीवों को दुःख न पहुंचने के अभिप्राय से देख २ करके कभी जलद कभी धीरे पांव रखते थे एकबार पालकी को लेकर बैठने लगे तब राजा ने क्रुद्ध होकर उन से वैसा करने का कारण पूछा—जड भरतजी ने धर्म्म भाव के साथ ऐसे उचित् कारण बताये कि राजा के मनपर बड़ा प्रभाव हुआ और उन को ज्ञानवान् महात्मा समझकर, वह पालकी से उतर पड़ा, और उनके चरणोंपर मस्तक नाय, अपने दोष की क्षमा मांगी; और ज्ञानोपदेश की प्रार्थना की— जड़भरतजी ने उस को एक पल में ऐसा ज्ञानोपदेश किया कि राजा पालकी और अपने सेवकों को त्याग कर उसी बन में ज्ञान के आनंद में मग्न होकर विचरने लगा ॥

। राजा जनक और अष्टावक्र का वृत्तान्त ।

इसी प्रकार से कहते हैं कि राजा जनक ने यह इच्छा प्रगट की कि कोई उस को एक पल में ज्ञानोपदेश करे—बहुधा महात्मा तो इस इच्छा का पूर्ण होना असंभव समझते थे—परंतु महात्मा अष्टावक्र ने राजा से कहा कि हम तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे—अर्थात् इतना ही शीघ्र उपदेश कर देंगे- जैसा कि तुम चाहते हो—परंतु यह बताओ कि उस उपदेशके बदले तुम हम को क्या दोगे? राजा जनक ने कहा कि संपूर्ण राज्य आप के भेट कर दूंगा. अष्टावक्र ने इस में दोष निकाला, कि राज्य प्रथम तो प्रजाका है जिस को वे चाहें राजा बनावें, दूसरे जैसे तुम अपने

पिता के स्थानापन्न राजा हुए उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारे पीछे राज्य का अधिकारी है-इस हेतु तुम दूसरे को किस प्रकार दे सके हो राजा ने कहा कि अपनी रानी दे दूंगा अष्टावक्र ने इस में भी दोष निकाला, कि जैसे वह तुम्हारी स्त्री है, इसी प्रकार तुम्हारे पुत्र की माता है- वह कैसे अपनी माता को भेट करने देगा-निदान इसी प्रकार से जिस जिस वस्तु को राजा अपनी समझ कर भेट करना चाहताथा उन सब वस्तुओं को अष्टावक्रजी सिद्ध कर देते थे कि वे राजा की नहीं हैं-अंत में राजा ने कहा कि मैं अपना मन संकल्प करने को उद्यत हूं-अष्टावक्रजी ने कहा कि यद्यपि मन भी तुम्हारी वस्तु तो नहीं है, पर तो भी मन को हम भेट में लेना स्वीकार करते हैं, संकल्प कर दो, जब राजा ने अपना मन अष्टा वक्रजी को भेट कर दिया अष्टावक्रजी बिना ही उपदेश किये उठ खड़े हुए, और वहां से चल दिये-राजा ने पूछना चाहा कि उपदेश क्यों नहीं किया-परंतु फिर यह सोच कर, कि मन अष्टावक्रजी को संकल्प कर दिया है उस में जो इच्छा उत्पन्न हो वह मेरी इच्छा नहीं है, चुप हो रहा--एक वर्ष तक इसी प्रकार जो इच्छा मन में होती थी उस को रोक कर निःसंकल्प होगया--एक वर्ष पीछे अष्टा-वक्रजी फिर आये और राजा के मन को इच्छाओं से रहित देख कर, ज्ञानोपदेश किया ॥

। समाधान ।

ये दोनों दृष्टान्त हमारे कथन को ही दृढ़ करते हैं, जड़ भरत जी ने राजा रहुगण को उपदेश करते ही अवश्य ज्ञानी बना दिया परंतु राजा रहुगण बहुत काल से अधिकारी हुआ था

और अब कपिलजी के पास उपदेश के लिये चला था इसी कारण तुरंत ही जडभरतजी के उपदेश का प्रभाव हो गया– वही उपदेश पालकी उठानेवालों ने भी सुना था परंतु उन पर कुछ भी प्रभाव न हुआ–क्योंकि वे इस मार्ग के भेदू न थे राजा जनक और अष्टावक्र के दृष्टांत में आप स्वयं कहते हो, कि राजा एक वर्ष तक निःसंकल्प रहा, निःसंकल्प हो जाना योगाभ्यास का सच्चा साधन है–उस निःसंकल्पता के पीछे प्रत्येक मनुष्य ज्ञानोपदेश से तुरंत लाभ उठा सक्ता है– अंतःकरण शुद्ध हुए बिना, ज्ञानोपदेश चाहे कितने ही बडे सांसारिक बुद्धिवालों को किया जावे, वह उपदेश कोई मुख्य प्रभाव नहीं कर सक्ता–निदान कहते हैं कि विदुरजी ने महात्मा सनत्सुजात के द्वारा महाराजा धृतराष्ट्र को महाभारत की लडाई से पहिले ज्ञानोपदेश किया, विदुरजी का प्रयोजन यह था कि इस को ज्ञान प्राप्त होने से संभव है; कि महाभारत का भयानक युद्ध रुक सके–परंतु धृतराष्ट्र ने संपूर्ण उपदेश सुन कर उत्तर दिया, कि महाराज ! आप के उपदेश ने मेरे हृदय पर बिजली की भांति प्रकाश डाला और उसी के प्रकाश की तरह नष्ट भी हो गया--जब विदुरजी ने महाभारत के युद्ध के पीछे, वैराग्य के कारण धृतराष्ट्र का मन इच्छाओं से, रहित हो जाने पर, वही ज्ञानोपदेश किया तो तुरंत उस का प्रभाव हुआ ॥

जिस तरह अग्नि को अच्छी तरह प्रज्वलित किये बिना यदि उस में हवन की सामग्री डाल दी जावे, तो न वह जल सक्ती है और न उस में से सुगंध निकल सक्ती है, इसी प्रकार से बिना अंतःकरण की शुद्धि और बिना ज्ञानोपदेश की इच्छा के ज्ञानोपदेश निष्फल जाता है–बरन सुननेवाला

उस का आदर जैसा चाहिये वैसा नहीं करता है. परमात्मा का यह एक नियम है, कि जिस प्रकार भूखे की दृष्टि रोटी के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर नहीं जाती, और प्यासे को जब तक पानी न मिले अत्यंत व्याकुल रहता है, इसी प्रकार से जब ज्ञान प्राप्त होने की सच्ची तृषा लगे और ज्ञान प्राप्ति बिना चित्त किसी ओर न लगे, उस समय ज्ञान प्राप्त होता है—वास्तव में जीवात्मा ज्ञात और अज्ञात दोनों विषयों को जानने वाला है परंतु मल, विक्षेप और आवरण के चिकों से उस का ज्ञान ढका हुआ रहता है-निदान वे चिक दूर करने चाहिये—फिर ज्ञानोपदेश प्रत्येक द्वार वा दीवार से स्वयं मिलना आरम्भ हो जाता है ॥

प्रश्न—क्या यह सत्य है कि ज्ञानी जन्म मृत्यु से रहित हो जाता है—अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति से आवागमन छूट जाता है?

उत्तर—हां यह सत्य है और उस का कारण जानने के लिये पहिले यह जानना चाहिये कि आवागमन क्या तत्त्व है।

। आवागमन का कारण ।

जब मृत्यु काल आता है, उस समय जिस इच्छा का मन पर अधिक प्रभाव होता है और जिन जिन व्यतीत कर्म्मों के फल भोगने का समय आ जाता है उन दोनों के अनुसार प्रारब्ध बनकर दूसरा जन्म मिलता है-प्रारब्ध के अनुसार उत्तम वा निकृष्ट कुल में राजा वा रंक के घर में, आरोग्य वा रोगग्रस्त अवस्था में, जन्म धारण करना होता है । उत्पन्न होने के पश्चात् पिछले कर्म्म संस्कार रूप होकर श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ इच्छाएं उत्पन्न करते रहते हैं और वर्त्तमान संबंध अर्थात सत्संग वा कुसंग इत्यादि का भी प्रभाव पड़ता रहता है—इसी

प्रकार से प्रारब्ध और पुरुषार्थ मिलकर जन्म भर भली या बुरी अवस्था उत्पन्न करते रहते हैं—निदान इस प्रकार से अनंत कर्म उत्पन्न होकर संचित होते रहते हैं और उन में से कई कर्म बारम्बार प्रारब्ध बनकर भोगे जाते हैं ॥

योगाभ्यास के द्वारा प्रारब्ध और संचित कर्म्मों का अनुमान होता है और धीरे धीरे उन कर्मों से छूटना आरंभ होता है—अर्थात् योगाभ्यासी पुरुष पहिले अत्यंत पुरुषार्थ कर के दुष्ट कर्म्मों को श्रेष्ठ कर्म्मों से काटता है जैसे एक लोहे की गोली साधारण चाल में नीचे की ओर—अर्थात् दक्षिण में—लुढकी जारही हो और एक दूसरी गोली किञ्चित् अधिक बल से उस के पीछे फिर लुढ़काई जावे,इस प्रकार से कि वह दूसरी गोली पहिली से टकराकर थोडीसी दक्षिण-पूर्व की ओर आकर्षण करे,तो पहिली गोली की दिशा भी दक्षिण पूर्व की ओर हो जावेगी—इसी प्रकार दुष्ट कर्म्म भी जो दक्षिण की ओर अर्थात् नरक मार्ग में लेजा रहे हैं उन को पूर्व की ओर अर्थात् शुभ कर्म्मों के द्वारा स्वर्ग मार्ग की ओर मोड़ना चाहिये और फिर पूर्व से उत्तर की ओर अर्थात् मोक्ष मार्ग की ओर फेरना चाहिये. योगाभ्यासी पुरुष अशुभ कर्म्मों को शुभ कर्म्मों से बदल कर के, शुभ कर्म्मों के विभाग करता है और छोटे पद के कर्म्मों को त्यागन करता हुआ, उच्च पद के कर्म्मों में प्रवृत्त होता है और उच्च पद के कर्म्मों से निष्काम कर्म्मों तक पहुचता है—जैसे जैसे निष्काम कर्म्म अधिक किये जाते हैं, वैसे ही इच्छाएँ न्यून होती जाती हैं और जब किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती, तो शरीर जो इच्छाओं से बना हुआ है, इच्छा रहित हो जाता है और मृत्यु के समय कोई इच्छा के न रहने से दूसरा शरीर नहीं मिलता—निदान योगाभ्यास के द्वारा अंतःकरण शुद्ध होने पर

ज्ञानी जन्म मरण से रहित हो जाता है–अर्थात् आवा गमन से छूट जाता है और सर्व काल मोक्ष के सुख को भोगता रहता है, जिस का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

। दूसरा भाग ।

। चौथा अध्याय ।

। मोक्ष ।

। मोक्ष की व्याख्या ।

मोक्ष एक संस्कृत शब्द है, जिस का अर्थ छूटना है. बोलचाल में मोक्ष उस सुख की अवस्था को कहते है, जिस में संसार के दुःखों से निवृत्ति होकर, परमानंद की प्राप्ति होती है—अर्थात् संसार के क्लेशों से छूट कर सदैव का सुख प्राप्त होजाताहै ॥

। मोक्ष के लिये ऋषियों की सम्मति ।

भरतखंड में जब कि सामाजिक उन्नति का उत्तम प्रबंध था और सच्चे धार्मिक पुरुष क्रम से उन्नति करते हुए, मोक्ष की अवस्था को सुगमता से प्राप्त हो सक्ते थे, उस समय के कई महात्माओ की मोक्ष के लिये जो सम्मति है वह नीचे लिखी जाती है ॥

। वशिष्टजी की सम्मति ।

वशिष्टजी महाराज ने महाराजा रामचंद्रजी, दूसरे राजकुमारों और अधिकारी पुरुषों को अनेक प्रकार से उपदेश किया है, जिस के कारण महाराजा दशरथ, महाराजा रामचंद्रजी, हनुमानजी, महारानी कौशल्या इत्यादि आठ अधिकारी पुरुष मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुए है, उन का विधि पूर्वक वर्णन योगवाशिष्ट नाम पुस्तक मे लिखा है. इन वशिष्टजी महाराज की सम्मति है, कि जब योगाभ्यास के द्वारा

दुष्ट कर्म और दुष्ट वासना क्षय होजाती हैं, तब मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियां अपने स्वभाव में स्थित होजाती हैं, स्वभाव से विरुद्ध कोई कार्य नहीं करती हैं और इस कारण से कोई दुःख प्राप्त नहीं होता है. जैसे कि गहरी निद्रा में स्थूल देह की कुछ सुध नहीं रहती वैसे ही जागृत अवस्था में भी यही दशा हो जाती है, और अति बाह्य देह से सम्पूर्ण सुख भोगे जाते हैं, इसी अवस्था को मोक्ष माना है ॥

२ पतञ्जलिजी–जिन्हों ने योग शास्त्र रचा है, और जिस का संक्षेप वृत्तान्त पारलौकिक धर्म के दूसरे अध्याय योगाभ्यास में हो चुका है, सारे क्लेशों से छूटने को मोक्ष कहते हैं. पतञ्जलिजी ने सारे क्लेशों को सारी चित्त की वृत्तियों की भांति पांच विभागों में बांटा है. वे पांच विभाग नीचे लिखे जाते हैं ॥

(१)–अविद्या–इस को सम्पूर्ण क्लेशों की जड़ कहा है, इस अविद्या के कारण ही जन्म मरण आदि दुःख सागर में झूलना पड़ता है. पतञ्जलिजी ने अविद्या के भी चार भाग किए हैं.

(क)–नित्य पदार्थों को अनित्य और अनित्य पदार्थों को नित्य समझना–जैसे परमात्मा जो जगत का निमित्त कारण है और इसी प्रकार से जीवात्मा जो देह का निमित्त कारण है और प्रकृति जो उपादान कारण है ये तीनों अनादि हैं इन को अनित्य समझना और कारज रूप संसार को अर्थात् पृथ्वी तत्व से बने हुए स्थूल शरीर को नित्य समझना अविद्या का पहिला भाग माना है ॥

(ख)–शौच में अशौच और अशौच में शौच बुद्धि का करना, अर्थात् मल मूत्र आदि से भरे हुए शरीर में पवित्र बुद्धि का करना, स्पर्श इन्द्रियों के भोग में अत्यन्त प्रीति

करना-महता भाषण आदि व्यवहारों को शुद्ध समझना और सत्य भाषण, परोपकार आदि व्यवहारों में अपवित्र बुद्धि का करना अविद्या का दूसरा भाग कहा गया है ॥

(ग)-दुःख में सुख और सुख में दुःख बुद्धि का करना अर्थात् विषय, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, ईर्षा आदि दुःख रूप व्यवहारों में सुख मिलने की आशा करना; और जितेन्द्रियता, संतोष, प्रेम, मित्रता आदि सुख रूप व्यवहारों में दुःख बुद्धि का करना अविद्या का तीसरा भाग कहा गया है ॥

(घ)-अनात्मा में आत्मा बुद्धि और आत्मा में अनात्मा बुद्धि-अर्थात् अपने देह को अजर और अमर समझ कर अपने सुख के लिये पशु पक्षियों आदि में जो आत्मा है उस को जड़ समझ कर, उन को अनेक प्रकार के दुःख देना-यह अविद्या का चौथा भाग है । इस चार भाग वाली अविद्या में फँसे रहने से सदैव बंधन रहता है ॥

(२)-दूसरा क्लेश अस्मिता का माना है अर्थात् अभिमान और अहंकार से अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझकर, उन की उत्तम शिक्षा और उत्तम गुणों को ग्रहण न करना ॥

(३)-तीसरा क्लेश राग अर्थात् मोह का होना माना है-जब कोई सुख बहुत काल तक भोगा जावे और फिर किसी कारण से वह सुख न रहे, तो उस सुख को स्मर्ण करके तरसते रहना ॥

(४)-चौथा क्लेश द्वेश अर्थात् शत्रुता करना माना है-जब किसी कारण से दुःख पहुंचा हो तो उस को स्मरण करके सदा क्रोध बुद्धि होना ॥

(५)—पांचवां अभिनिवेश क्लेश माना है-अर्थात् मृत्यु से डर कर सदा यह उद्योग करना कि कभी मृत्यु न आवे ॥

इन क्लेशों से छूटने के उपाय भी पतञ्जलिजी ने कहे हैं-अर्थात् महात्माओं के उपदेश और सत्संग और योग साधनों के नियम से अविद्या नष्ट हो जाती है, उस के नष्ट होने से रहे सहे क्लेश भी नष्ट हो जाते हैं—अभिमान नम्रता से बदल जाता है—संयोग और वियोग के नियम को अच्छे प्रकार समझने से राग, द्वेश, और अभिनिवेश क्लेश का अभाव हो जाता है—इसी को मोक्ष माना है ॥

३—गौतम ऋषि भी, जिन्हों ने न्याय शास्त्र रचा है, अविद्या के दूर होने से ही मोक्ष अवस्था की प्राप्ति मानते हैं. गौतमजीका निश्चय है कि अधर्म, अन्याय, विषय आसक्त आदि की वासना में फंसे रहना दुःख का मूल कारण है-जब वासना दूर हो जाती है तो फिर जन्म नहीं मिलता और जन्म न मिलने से सब दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है-दुःखों के अभाव से सुख ही सुख भोगना शेष रह जाता है और इसी का नाम मोक्ष है ॥

४—पराशरजी, जो वेद व्यासजी के पिता थे, कहते हैं कि जीवात्मा मोक्ष अवस्था में अपने स्वाभाविक गुणों से आनंद भोगता है, इन्द्रियादि पदार्थों का उस अवस्था में अभाव हो जाता है। उन के पुत्र वेदव्यासजी का ऐसा सिद्धान्त है कि भाव और अभाव दोनों ही बने रहते हैं-अर्थात् क्लेश, अज्ञान, और अशुद्धि का अभाव हो जाता है और आनंद, ज्ञान, शुद्धता आदि गुणों का भाव बना रहता है।

५-जैमनीजी, जिन्हों ने पूर्व मीमान्सा शास्त्र रचा है, कहते हैं कि मोक्ष अवस्था में जीवात्मा के साथ शरीर, प्राण और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति बराबर बनी रहतीहै, उपनिषदों में भी बहुधा प्रमाण मिलताहै, कि मोक्ष अवस्था में जीवात्मा संकल्प से शरीर रचलेताहै और संकल्प से ही उस को त्याग देताहै ॥

। बंध और मोक्ष बुद्धि का विषय है ।

सत्य बात यह है कि बंध और मोक्ष बुद्धि में है--जब बुद्धि मोह और अज्ञान में फंसती है तब बंधन समझना चाहिये. उस समय हर्ष और शोक होताहै और इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है वह मिथ्या और शोक का देनेवाला होता है ॥

। मोहका उदाहरण ।

कोई साहूकार निर्धन हो गया था, धन कमाने को उस ने परदेश में जाने का विचार किया.उस समय उस की स्त्री गर्भवती थी. थोड़े काल में उस के घर पुत्र का जन्म हुआ, जब पुत्र बड़ा हुआ तो उस ने अपने पिता का वृत्तान्त पूछ कर, उस से मिलने के लिये देशाटन का विचार किया. इस काल में साहूकार भी धनाढ्य हो गया था, उस ने भी अपने नगर को पीछा लौट आने और अपने पुत्र से मिलने का विचार किया. दैव योग से दोनों का मार्ग में एक धर्मशाला में मिलाप हुआ, परन्तु पुत्र को अपने पिता की सुध न थी और पिता अपने पुत्र को नहीं पहिचानता था. पुत्र धर्मशाला में पहिले से आ टिकाथा, पीछे से पिता भी आया और पास ही की कोठरी में ठहर गया. दैवाधीन रात्रि को पुत्र का पेट दूखना आरंभ हुआ-और वह पीड़ा से व्याकुल होकर रुदन और

विलाप करने लगा, उस के पिता साहूकार ने धर्मशाला के प्रबंधक को बुलाकर और कुछ द्रव्य देकर कहा कि इस दूसरे पथिक को धर्मशाला से बाहर निकाल दो, हम को इस का रोना चिल्लाना सुन कर निद्रा नहीं आती, पुत्र को अंत में सराय से बाहर जाना पड़ा और प्रातः काल उस को ऐसी मूर्छा आई कि उस के चाकर नौकर उस को मृतक समझ कर रोना पीटना करने लगे, उस समय साहूकार भी सराय से बाहर निकला और उस ने वृत्तान्त पूछा और यह जानने पर कि वह उस का पुत्र था, बहुत शोक करके रोने लगा, उस समय एक धन्वन्तर रूप महात्मा का उस स्थान में पधारना हुआ, उन्हों ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन कर साहूकार को उपदेश किया, कि इस संसार में सब जीव अपने २ कर्म अनुसार मिलते हैं और सुख दुःख भोगते हैं, जब प्रारब्ध रूपी सम्पूर्ण कर्म का अंत हो जाता है तो देह छूट जाती है और सब संबंध टूट जाते हैं–निदान उचित यह है, कि जन्म से मरण पर्यंत सम्पूर्ण जीवों से जिस प्रकार का संबंध हो उस को अत्यन्त उत्तमता के साथ धर्म भाव से निर्वाह करना चाहिए और जब उस की मृत्यु आजावे, जो केवल उसी के अंतिम कर्मों के भोग पूरे होने पर आती है, तब संयोग वियोग के तत्व को भले प्रकार समझकर, कुछ शोक नहीं करना चाहिए, इस ज्ञान के उपदेश से साहूकार को कुछ धीरज बंधी और महात्मा ने उस बालक को ध्यान से देखा तो मृत्यु के बदले मूर्छित पाया, उचित दवा देने से उस की मूर्छा खुली और वह सचेत हुआ और आरोग्यता प्राप्त हुई उस समय साहूकार बहुत प्रसन्न हुआ और अनेक प्रकार से मोह प्रगट करने लगा, उस समय फिर महात्मा साधु ने उपदेश किया कि इस अधिक मोह का

फल फिर दुःखदायक होगा–जैसे तुम को उचित न था कि इस अपने पुत्र की पीडा की अवस्था में अपना संबंधी न समझ कर, निर्दयता से सराय के बाहर करवादिया, इसी प्रकार से यह भी उचित नहीं है, कि अब अपार प्रीति करो– वरन उचित यह है कि सारे संसार के मनुष्यों को अपना संबंधी समझकर उन के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ताव करते रहो. ऐसा करने से न कभी हर्ष होगा और न शोक–परन्तु कृतकृत्य होने से ऐसा आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मोक्ष का आनंद होता है॥

। शोक का उदाहरण ।

कहते हैं कि कोई मनुष्य प्रति दिन एक लोटा जल अपने सिराहने रखकर सोया करता था. और प्रातःकाल उठते ही वह लोटा लेकर शंका निवारण को जाया करता था, एक दिन रात्री को जब वह सोगया, उस की स्त्री ने एक दूसरे लोटे में रंग घोलकर, वह लोटा भी चारपाई के पास रख दिया. वह मनुष्य प्रातःकाल उठते ही अपने स्वभाव के अनुसार लोटा लेकर जंगल को चलागया. जब हाथ पानी लेने लगा तो दैवात उस की दृष्टि अपने हाथ पर और बिखरे हुए पानी पर पड़ी, उस में लाल रंगत देखकर, समझा कि उस के शरीर से लोहू निकलाहै. उसी समय शरीर में निर्बलता जान पडी, नेत्रों के सामने अंधेरा छागया, बडे कष्ट से गिरता पडता नगर में आया, मार्ग में एक वैद्य मिल गया, उस से लोहू निकलने का वृत्तान्त कहा. वैदजी ने नाडी इत्यादि देखकर, एक बडा लंबा चौडा औषध पत्र अर्थात् नुसख़ा लिख दिया. वह लेकर घर पहुंचा और जातेही चारपाई पर

गिर पडा. स्त्री भी बीमारी का वृत्तान्त सुनकर और मुंह को देख कर घबराई. थोडे काल पीछे स्त्री ने गेरू के लोटे को ढूंढा तो उस के बदले दूसरा लोटा धरा पाया. जब यह भूल उस मनुष्य को ज्ञात हुई तो सारी कल्पित बीमारी चली गई और हँसता हुआ चारपाई से उठ खड़ा हुआ. यह दोनों उदाहरण कान और आंखों के दिए गए है, यही दोनों इन्द्रियां है,-जिन के द्वारा मनुष्य बंधन में फंसता है, और यही पवित्र द्वार है, जिन के द्वारा सत्य ज्ञान होकर, सब बंधनों से छूटकर मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ॥

। मोक्ष सुख बुद्धि को जीवात्मा के द्वारा मिलता है ।

जाग्रत अवस्था में बुद्धि बाहर के पदार्थों और इंद्रियों के मेल से सुख अनुभव करती है. जब इन्द्रियां स्वप्न अवस्था में शान्त हो जाती है, तो वैसा ही सुख बुद्धि, अंतर में इन्द्रियों और बाहरी पदार्थों के बिना भी, मन के द्वारा अनुभव करती है. जब गहरी निद्रा में मन भी शान्त हो जाता है, तो भी सुख का अनुभव होता है, जिस को जागने पर वर्णन किया जाता है-अर्थात् यह कहा जाता है कि बड़े सुख से निद्रा आई कुछ भी न जान पड़ा.

और जब योग साधनों के द्वारा बुद्धि, जीवात्मा की चमत्कार रूप शक्ति का, अनुभव करती है तब ऐसा सुख मिलता है, कि बहिर्मुख होने की इच्छा ही नहीं रहती. उस से उत्तम सुख कोई भी नहीं है और वह नित्य रहनेवाला है. जिन्हों ने उस सुख को प्राप्त किया है, वे और सम्पूर्ण सुखों को एक बूंद के तुल्य और उस सुख को सागर के तुल्य कहते है-उसी को परमानंद, ब्रह्मानंद, और मोक्ष सुख कहते है ।

। मोक्ष के भेद ।

मोक्ष के दो भेद हैं-जीवन मोक्ष और कैवल्य मोक्ष-जब योगाभ्यास के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब हर्ष शोक से रहित सम्पूर्ण कर्मों को धर्मानुसार करते हुए, और उन के फल की इच्छा न रखते हुए काम आदि विकारों के वेग को रोकते हुए और वैराग्य का सहारा लिये हुए, सदैव काल आनंद में मग्न रहना जीवन मोक्ष का स्वरूप है ॥

। राजा जनक का वृत्तान्त ।

प्रसिद्ध कहावत है, कि राजा जनक का एक चरण तो वड़ी सुंदर स्त्रियां अपने स्तनों से दबाती थीं, और एकचरण अग्नि में जलता था परन्तु उन को न सुख होता था और न दुःख अभिप्राय यह है कि राजा जनक युद्ध के समय धर्मानुसार युद्ध करते थे और उस में जो कुछ दुःख वा हानि होती थी उस का सोच नहीं करते थे. अन्तःपुर में जब जाते थे, तो धर्मानुसार वहां के सम्पूर्ण सुख भोगते थे. थोड़ासा काल नित्य प्रति एकान्त में बैठने और संसार की अनित्यता पर विचार करने के लिये भी रखते थे, और थोड़ा समय संत महात्माओं के सत्संग में भी अवश्य बिताते थे निषिद्ध कर्म्मों का सदैव परित्याग रखते थे. सकाम कर्म्मों को करके उन के फल की इच्छा नहीं करते थे, नित्य कर्म्म शौच आदि को कर्तव्य समझकर रीति अनुसार किया करते थे, और निष्काम कर्म्मों को उद्योग करके किया करते थे. वाणी मन और शरीर को सदैव अपने वश में रखते थे, इस कारण से उन को जीवन मोक्ष का सुख प्राप्त था और जो मनुष्य इस रीति से जन्म व्यतीत करे, वह जीवन मोक्ष का सुख प्राप्त कर सक्ता है ॥

जब बहुत काल तक जीवन मोक्ष का सुख मिलता रहता है, तब शरीर छूटने पर दूसरी स्थूल देह नहीं मिलती है-

क्योंकि कोई इच्छा नहीं रहती है और ऊपर लिखा जीवन मोक्ष का सा सुख जीवात्मा के स्वाभाविक गुणों के द्वारा मिलता रहता है--इस अवस्था को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥

। जन्म से ही मोक्ष वा बंधन का आरंभ होता है ।

जैसे मनुष्य पचास वर्ष के लगभग तक उत्पन्न होता रहता है, और इसी प्रकार से आगामी पचास वर्ष की अवस्था तक मरता रहता है, ऐसेही मोक्ष वा बंधन भी एक पल में नहीं होजाता, किंतु धीरे २ उत्पन्न होता है यदि जन्म लेते ही धर्म्म में प्रवृत्ति आरंभ होजावे तो धीरे २ मोक्ष अवस्था की ओर चलना होता है और यदि अधर्म में रुचि होजावे तो बंधन की ओर ॥

जब बालक जन्मता है उसी समय से जैसा २ उस को बोध होताजाता है, वैसेही उस के मन में विचार और कर्म्म उत्पन्न होते जाते हैं, यदि वह अपने माता पिता और दूसरे संबंधियों को छल कपट और मिथ्या भाषण आदि दोषों में फँसे हुए पाताहै, तो वह भी उन्हीं दोषों को ग्रहण करना आरंभ कर देता है और यदि उन को शुभ गुणों--विद्याध्ययन, परोपकार, सत्य भाषण आदि में प्रवृत्त हुए पाता है, तो वह भी उन गुणों को स्वाभाविक ही अंगीकार करलेताहै, इस लिये माता पिता आदि संबंधियों को प्रयत्न करके शारीरिक, मानसिक वा आत्मिक धर्म्म को भले प्रकार स्वीकार करना, और अपनी संतान को स्वीकार कराना चाहिए--परन्तु ये धर्म्म उस समय ही पालन होसक्तेहैं, जब गृहस्थ धर्म्म ठीक हो और गृहस्थ धर्म्म केवल सामाजिक धर्म्म की सहायता से यथोचित नियम में रहसक्ताहै, सामाजिक धर्म्म की उन्नति से ही सन्यास आदि पारलौकिक धर्म्म के नियम भी पालन किए जाना और उन में उन्नति होती रहना संभव है, इस लिये सम्पूर्ण बुद्धिमान् और विद्वान् और देशहितैषी सज्जन पुरुषों को उचित है, कि

सामाजिक उन्नति में भले प्रकार प्रवृत्त हों और यदि आर्य्यावर्त्त में इस समय नाना प्रकार की रीति से सामाजिक उन्नति का आरंभ होगयाहै, तो भी उन सब रीतियों में धर्म्म महोत्सव के द्वारा शीघ्र और भले प्रकार सामाजिक धर्म्म में उन्नति होना संभव है, क्योंकि इन में सारे धार्मिक पुरुष और धर्म्म के खोजी, चाहे वे किसी जाति और संप्रदाय के हों, चाहे वे किसी मत मतांतर को अच्छा समझते हों और स्वीकार करते हों, वे सब एकत्र होकर सुगम रीतियां सामाजिक उन्नति की सोच सक्ते हैं, और काम में ला सक्तेहैं ॥

प्रश्न—क्या सामाजिक उन्नति के बिना कोई मनुष्य मोक्ष अवस्था को प्राप्त नहीं होसक्ता ?

उत्तर—सामाजिक उन्नति मानो एक पक्की सड़क है, जिस के द्वारा मोक्ष रूपी पर्वत पर सुगमता से चढ़ना हो सक्ता है परन्तु यदि किसी को सच्ची रुचि हो, तो वह अनेक महात्माओं और उन की पुस्तकों के द्वारा एक पगडंडी बनाकर परिश्रम और क्लेश के साथ चढ़सक्ता है-परन्तु यह बड़े साहसवालों का काम है और उन को भी हर पांवडे पर नीचे गिरजाने का भय रहता है ॥

दूसरा प्रश्न—श्री कृष्णजी महाराज ने अर्जुन को सारे धर्मों का उपदेश करके अंत में यह कहा है, कि सब धर्मों को त्याग कर, मेरी शरण ले. क्या यह सत्य है और इस रीति से मोक्ष पदवी मिलसक्ती है ?

उत्तर—यह सत्य है और एक साधारण रीति मोक्ष के प्राप्त होनेकी है-परन्तु इस उपदेश पर चलना बहुत कठिन है और यदि उस के अनुसार वर्ताव किया जावे, तो निराकार परमात्मा उस सच्चे अभ्यासी के हृदय में ऊपर लिखा धर्म प्रगट कर देतेहैं, वा किसी अभ्यासी महात्मा से उस का संबंध करा देते हैं-परन्तु परमात्मा पर ही भरोसा रखने से यह प्रयो-

जन है, कि अपने संकल्प को सर्वथा त्याग दे और जो शिक्षा जिस काल अन्तःकरण में मिले तुरंत उस के अनुसार करे ॥

। ग्रंथकर्त्ता का स्वयं अनुभव ।

पन्द्रह वर्ष से अधिक समय हुआ, कि ग्रंथकर्त्ता ने जो किसी शास्त्र वा धर्म पुस्तक से उस समय जानकर न था और न किसी महात्मा का रीति अनुसार सत्संग किया था, केवल एक परमात्मा पर विश्वास किया. अन्तरयामी परमात्मा ने सच्ची प्रीति और निश्चय को देखकर एक पूर्ण विद्यावान् और पूर्ण योगी स्वामी शिवगिरीजी महाराज से संबंध कर दिया. यह महाराज कुंजाह, ज़िला गुजरात, देश पंजाब में मौन वृत्ति धारण किए चालीस वर्ष से रहते हैं. मेरा सच्चा भाव देखकर, महात्मा ने स्वप्न द्वारा, उपदेश देना आरंभ किया जिस का पालन जहांतक हो सका मैं ने किया. उन्हीं महात्मा की कृपा दृष्टि और सहायता से विशेष करके, मैं ने यह पुस्तक लिखी है और मेरा दृढ़ निश्चय है, कि मेरी भांति यदि कोई सच्चे मन से परमात्मा की शरण लेगा और सांसारिक प्रयोजन के बिना और सुख वा दुःख, हानि वा लाभ, आदर वा निरादर, का विचार किये बिना परमात्मा का उपदेश प्राप्त करने के लिये, हर समय उद्यत रहे और उस के अनुसार करना अपना कर्तव्य समझे, तो परमात्मा चाहे उस की बुद्धि सात्विक करके उस के हृदय में स्वयं सच्चे ज्ञान का उपदेश कर देवेंगे, चाहे किसी पूर्ण ज्ञानी महात्मा से संबंध करा देवेंगे, और धीरे २ जब वह पूरा अधिकारी हो जावेगा, तो उस को मोक्ष का भागी कर देंगे ॥

इति शुभम् ।

श्रीः ।

साधारणधर्म-कठिनशब्दों का कोष ।

अ

अग्रगण्य-आगे की गिन्ती में आनेवाला
अघाना-मरजाना
अजर-बूढ़ा नहीं होनेवाला.
अजायब-अद्भुत
अंडकोष-वीर्य वाहिनी नाड़ी, ब्रह्माण्ड का खजाना
अत एव-इसी से
अत्याचार-जुल्म
अति-बहुत.
अतिरिक्त-सिवाय
अतिसार-बहुत बहना
अत्युत्तम-बहुत अच्छा
अन्तर्गत-भीतर प्राप्त हुआ
अन्तःपुर-जनाना.
अद्वैत-वेदान्त
अध्यक्ष-मालिक
अध्याय-पाठ
अधर्म-पाप.
अधर्मी-पापी
अधिकारी-हाकिम.
अधिपति-मालिक
अधृति-अधीर.
अनभिज्ञ-अनजान
अन्य-दूसरा
अन्तिम-पिछला.
अनात्मा-मूर्ख.
अनाहत-ध्वनि अर्थात् शब्द जो बिना ताड़ना के उत्पन्न हो
अनित्य-बिगड़नेवाला.
अनुकरण-नकली.
अनुकूल-मददगार
अनुगामी-पीछे चलनेवाला
अनुचर-चाकर.
अनुचित = अयोग्य
अनुपम = अनूप, श्रेष्ठ
अनुवाद = उल्था.
अनुभव = अन्दरी ज्ञान.
अनुयायी = साथ चलनेवाला.
अनुराग = प्रेम.
अनुष्ठान = अभ्यास.
अनुसार = मुताबिक.
अपठित = बिन पढ़ा.
अपमान = निरादर
अपरा = दूसरी.
अपरिग्रह = देखो. पृष्ठ २१९
अपान = ,, ,, २२६
अप्रिय = बुरा
अपेक्षा = से, निस्बत
अपोलव = रसूल.
अफीमची = अमलदार.
अभ्यास = रत्न.
अभिप्राय = मतलब.
अभिमान = घमंड, देखो पृष्ठ. ४०

अभिलाषा = इच्छा.
अर्पण = देना, सौंपना,
अल्प = थोड़ा.
अलंकार = आभूषण.
अवकाश = फुर्सत.
अवनति = घटाव.
अवयव = अंग, भाग
अवरोध = रुकावट.
अवलोकन = देखना, पढ़ना.
अवसर = मौका.
अवस्था = उम्र, देखो पृष्ठ २२६.
अविद्या = मूर्खता, देखो पृष्ठ २४६.
अश्वविद्या = सालहोत्र घोड़े की विद्या.
अश्रद्धा = श्रद्धाहीन, देखो पृष्ठ ७७.
अशौच = अपवित्र, „ २४६
अष्टांग = आठ भाग, „ २१७.
असहन = नहीं सहना.
अस्तेय = चोरी न करना, पृष्ठ २१९.
अस्थि = हड्डी
अस्मिता = अपनापन, देखो पृष्ठ २४७.
अस्वीकार = नामंजूर.
असाध्य = बेबस.
असंख्य = बेशुमार.
असम्प्रज्ञात = नहीं जाना हुआ.
अहर्निशि = दिन रात.
अहिंसा = नहीं मारना.
अहंकार = घमंड, गुरूर.
अक्षि = नेत्र.
अज्ञात = नहीं जाना हुआ.

आ.

आकर्षण = खेंचना.
आकुल = भराहुआ.
आख्यान = कहना, वर्णन.
आगामी = आनेवाला.
आग्रह = हठ
आचरण = चलन.
आचार्य = मन्त्रका अर्थ करनेवाला
आतुरता = जल्दी, पीड़ा.
आत्मिक = आत्मा सम्बन्धी.
आदि = शुरू प्रथम वगैरा.
आन्तरीय = भीतरी
आधान = स्थापन.
आध्यात्मिक = मन का दुःख
आधिदैविक = किसी का दिया हुआ दुःख
आधिभौतिक = शरीर का दुःख.
आधीन = वश.
आपत्ति = दुःख.
आपदा = आपत्ति.
आयुर्दा = उम्र, अवस्था.
आरम्भ = शुरू
आरोग्य = तन्दुरुस्त.
आल्हाद = आनन्द.
आवरण = ढकना.
आवश्यकता = जरूरत.
आवागमन = आनाजाना, मरकर फिर जन्म लेना.
आश्चर्य = अचम्भा.
आश्रम = स्थान, देखो पृष्ठ १८२.
आसक्त = लगाहुआ.
आक्षेप = दुर्वचन.

इ

इत्यादि = आदि, वगैरा.
इन्द्रियदमन = देखो पृष्ठ ७९.

ई

ईर्षा = द्वेष.

उ

उचित = योग्य.
उत्तराधिकारी = पिछला हाकिम, जान शीन, काइम मुकाम.
उत्कृष्ट = श्रेष्ठ.
उत्पत्ति = पैदाइश.
उत्पन्न = पैदा.
उत्साह = उमंग.
उद्देश = उदाहरण.
उद्यत = मुस्तैद.
उद्योग = धन्धा, काम.
उन्नति = बढ़वारी.
उन्मत्त = मतवाला.
उपदेश = शिक्षा, सिखाना
उपदेशिका = शिक्षा देनेवाली.
उपनिषद् = वेद का श्रेष्ट अंग.
उपवेद = वेद से निकला वेद
उपयुक्त = योग्य.
उपयोगी = लाभकारी.
उपस्थित = मुस्तैद, मौजुद हुआ.
उपाधि = बखेड़ा.
उपासना = देखो पृष्ठ ८८.
उभारना = बाहर करना.
उल्लंघन = उलांगना

ऋ

ऋतु = ऋतु छ होती है १ चैत्र वैशाष बसंत, २ जेष्ठ, आषाढ, ग्रीष्म. ३ सावण, भादों, वर्षा. ४ आसोज, कार्तिक, शरद. ५ मृगशिर, पोष, शिशिर. ६ माघ, फाल्गुण, हेमन्त.
ऋतंभरा = सत्य से परिपूर्ण.

ए

एकत्र = एक जगह, इकट्ठा.
एकान्त = तनहाई, गुप्त जगह.

ऐ.

ऐनुलयकीन = देखो पृष्ठ ७९.
ऐश्वर्य = सामर्थ्य.

क.

कटु = कडुवा.
कदाचित = शायद.
कन्याशाला = लडकियों का मदर्सा.
कनिष्ठ = छोटा.
कर्तव्य = करने योग्य.
कर्म = काम.
कल्पना = विचार.
कल्पित = बनाया हुआ.
कष्ट = दुःख.
कातरता = कायरपन.
कांग्रेस = मजमा, सभा.
कान्फ्रेन्स = सभा.
कान्ति = तेज.
क्याथोलिक = इसाईयों का एक फिर्का जिस का महंत पोप कहलाता है.
किंचित् = थोडा.
कुपित = कोपा हुआ.
कुष्ट = कोढ़
कुम्हिलाना = मुर्झाना.
क्रुद्ध = कोपयुक्त.
कृतकृत्य = पूर्ण काम.
कृतार्थ = धन्यधन्य.
कृपाण = तलवार.
कृषीकार = काश्तकार.

केन्द्र = बीच, मर्कज
केवल = सिर्फ,
कोमल = नरम
कोष = खजाना,
कौतुक = तमाशा

ख.

खिसियाना = गुस्सा करना,

ग.

गज = हाथी
गज = एक माप ३ फुट
गर्भ = बीच, हमल,
ग्रस्त = पकड़ा हुआ
ग्रहण = पकड़ना,
गुणग्राही = गुण की कदर करनेवाला,
गुप्त = छिपाहुआ,
गृहस्थ = स्त्रीपुत्र,
गोचर = इंद्रियों के विषय,
गोप्य = छुपायाहुआ,
गौण = साधारण,

घ

घातक = मारनेवाला,
घ्राण = नाक,
घृणा = ग्लानी, नफरत,

च.

चक्रवर्तीराजा = बहुतसे छोटे राजाओंका अधिपति
चपलता = चचलता
चक्षु = आँख, नेत्र,
चापलूसी = खुशामद,
चाशनी = रस, स्वाद,
चिरकाल = बहुतसमय,
चिरस्थायी = बहुत कालतक रहनेवाला

छ.

छिद्र = छेद, गलती,

ज

जठराग्नि = पेट की अग्नि
जनरल एज्यूकेशन = आम तालीम
जिज्ञासा = जानने की इच्छा,

ट

टाइमटेबल = समय का विभाग,
टी पार्टी = चाह पिलाने के लिये अपने बहुत से मित्रों का किसी स्थान मे एकत्र करना

ड

डेलिगेट = एल्ची, वकील

त

तत्व = साराश, असली
तत्वविवेचक = तत्वो की यथार्थ जाननेवाला
तदाधीन = उस के वश
तम = अंधेरा
तरी = गीलापन
तरुण = जवान,
त्वचा = चमड़ी
तामसी = तमोगुणी, गुस्सेवाला,
त्याग = छोड़ना
तितीक्षा = क्षमा,
तिरस्कार = निरादर
तीव्र = तेजवान
तीक्ष्ण = तेज
तुच्छ = निकम्मा
तृषा = प्यास
तोबा = माफी मागना

थ

थियेटर = नाटक घर.
थीयोसोफीकेल = तत्वविवेचक.

द

दर्पण = काच.
द्रव्य = धन, पदार्थ.
दान = देना, खैरात.
दार्ष्टांत = दूसरा उदाहरण.
द्वारा = साधन, वसीला.
दिव्य = चमकीला, मकाशवान.
द्विविध = दो तरह का.
दीनार = मुहर, अशरफी.
दुर्ग = किला, गढ़.
दुर्गंध = बदबू.
दुरशील = बुरे स्वभाववाला.
दुष्ट = दुःख देनेवाला.
दुष्पच = दुर्जर, कठिनाई से हज़्म होनेवाला.
दुरदर्शिता = दूर देश.
दृढ़ = मजबूत.
दृष्टि = नज़र.
देशाटन = परदेश फिरना
द्वेश = वैर.

ध

धनुर्विद्या = धनुष की विद्या.
धारणा = बुद्धिबल.
धार्म्मिक = धर्म्मवान, धर्मात्मा.
धी = बुद्धि
धृति = धारण.
धैर्य = धीरज.

न

नपुंसक = नामर्द.
नष्ट = नाश.
नाद = ध्वनि, आवाज़.
न्यायशाला = अदालत, इन्साफ़ की जगह.
निकृष्ट = अधम.
नित्य = सदा रहनेवाला.
निदिध्यासन = निरंतर ध्यान में लाना.
निवृत्ति = छुटकारा.
निम्न = नीचे.
निमंत्रिण = न्यूतना, नीतादेना.
नियत = मुकर्रर.
नियम = प्रण.
निरपेक्ष = इच्छा रहित.
निरर्थक = विना अर्थ.
निरी = केवल.
निरुत्साही = बिन उमग.
निरूपण = वर्णन करना.
निरंतर = लगातार.
निर्गम = निकलना.
निर्जन = मनुष्यरहित, शून्य.
निर्णय = निश्चय करना.
निरपराधि = बिना कुसूर.
निर्वाह = गुज़ारा.
निर्मल = साफ, स्वच्छ.
निर्माण = बनाना.
निर्लज्जता = बेशर्मी.
निर्विकल्प = शंका रहित
निवारण = फेरदेना.
निश्चय = ठीक.
निशि = रात्रि.

निष्काम = बेकाम.
निष्पक्षता = बेहिमायत.
नीति = न्याय, क़ानून.
न्यूनाधिक = थोडाबहुत.
नैरोग्यता = तन्दुरुस्ती.
नेशनल = कौमी.

प

पटल = ढकणा.
पठान = मुसल्मानों की ज़ातका नाम है.
पथ्य = हितकारी.
पथिक = बटोही, राहगीर.
पब्लिक ओपिनियन = आमराय.
परम = बड़ा.
परमाणु = बहुत ही छोटा अंश
पराजय = हार.
परास्त = हरादिया.
परिमाण = अंदाजा
परिवर्त्तन = बदलना
परिवर्त्तनीय = बदलनेयोग्य.
परिश्रम = मिहनत.
परीक्षा = इम्तिहान.
पर्यंत = तक.
पश्चात् = पीछे.
पक्षपात = हिमायत करना.
प्रकाश = उजाला, चांदना.
प्रकाशित = जाहिर, प्रगट.
प्रकृति = स्वभाव, आदत.
प्रचलित = जारी.
प्रचारक = चलानेवाला.
प्रचंड = तेज़.
प्रज्वलित = जलता हुआ, प्रकाशयुक्त.
प्रण = प्रतिज्ञा
प्रत्याहार = इन्द्रियों को विषयोंसे रोकना.
प्रतिकूल = उलटा, विरुद्ध.
प्रतिबिम्ब = अक्स, परछांही.
प्रतिष्ठित = इज्जतपाया हुआ.
प्रतिक्षण = हरवक्त.
प्रतिज्ञा = नियम, प्रण.
प्रत्युत्तर = जवाब.
प्रधान = मुख्य.
प्रबल = बलवान्.
प्रबन्ध = बन्दोबस्त, इन्तिज़ाम.
प्रबन्धक = मुन्तज़िम, प्रबंध करनेवाला.
प्रवृत्ति = लगना.
प्रभाव = असर.
प्रभाविक = असर करनेवाला.
प्रमत्त = मतवाला.
प्रमाद = असावधानी, गफलत.
प्रयत्न = उपाय
प्रयोजन = आशय, मतलब
प्रशंसा = तारीफ़, बड़ाई
प्रसव = जन्माना, जनना.
प्रसंग = सिलसिला.
प्रहर = पहर, याम.
प्रज्ञा = अच्छा जाननेवाली बुद्धि.
पाठशाला = स्कूल, मदर्सा.
पाणि = हाथ, कर, दस्त.
पातन = गिराना, पटकाना.
पारलौकिक = परलोकका, दूसरे लोकका.
पारितोषिक = सिरुपा, इनाम.
पाश्चात्य = पश्चिम के रहनेवाले.
प्रागट्य = प्रगट होना.

प्राचीन = पुराना.
प्राप्त = मिला.
पित्त = शरीर की धातु विशेष.
पिपीलिका = कीड़ी, चिउटी.
पीब = रुधिर विकार.
पुतली = प्रतिबिंब, नमूना.
पुनरुक्त = कहे हुए को कहना.
पुरुषार्थ = सामर्थ्य.
पुरस्कृत = पहले किया हुआ.
पुष्टि = पोषण.
पूर्णता = समाप्ति.
पूर्वक = अनुसार.
पृथक = जुदा, अलग.
प्रेरणा = आज्ञा करना.
प्रेषित = भेजा हुआ.
पैग़म्बर = खबर लानेवाला, अवतार
पोप = बड़ा पादरी जो रोम (इटली) में रहताहै
पोषण = पालन.
प्रोटेस्टेन्ट = इसाईयो का एक फिर्का.

ब

बपतिस्मा = देखो पृष्ठ १६०
बरन = बल्कि
बर्णन = विषय.
बर्द्धन = बढाव.
बन्द = कैद
ब्यक्ति = प्रगट
ब्यतीत = बीता हुआ.
ब्यय = खर्च
ब्यवस्था = हालत
ब्रह्मचर्य = देखो पृष्ठ ६७
ब्रह्मनिष्ठ = ब्रह्मलयलीन
बाइबल = इनजील, इसाईयो की पवित्र पुस्तक
बाजि = घोड़ा.
बाटिका = बगीची.
बानप्रस्थ = देखो पृष्ठ १८०.
बास = निवास, महल्ला
बाहन = सवारी
बाह्य = बाहरका
ब्याधि = दुःख, रोग.
ब्यापता = लगता
ब्यापार = पेशा, सौदागरी
ब्यास = चौड़ाई
विकल्प = देखो पृष्ट ७७
विकार = बदल.
विग्रह = लड़ाई.
विचक्षणता = चतुराई.
विचित्र = तरहतरहका.
विपत्ति = आपदा, दुःख.
विवेचन = पहचान.
विभाग = खंड, टुकड़ा.
विरुद्ध = उलटा.
विलम्ब = देर.
विशाल = बड़ा.
विषयी = व्यसनी, शौक़ीन.
विषमता = घटावबढाव
विषय = मज़मून, आशय
विसर्जन = त्याग
विस्तार = फैलाव.
व्युहरचना = मोरचाबांधना.
वृषभ = बैल.
वेदोक्त = वेदके अनुसार.
वेष = रूपबनाना

वैराग्य = विषयत्याग.
बोधनी = समझानेवाली.
बौद्ध = बौद्धमती, बुद्धमतमें चलनेवाला.
व्यौहारिक = व्योहारमें लानेवाला.

भ.

भविष्यत् = आनेवाला समय.
भय = डर.
भ्रमण = फिरना.
भारतीय राष्ट्रीय = देखो पृष्ट १७२.
भाषण = बोलना.
भी = डर.
भूमिया = ज़मीनदार.
भृकुटी = भवें.

म.

मई = विशेषता के साथ.
मगज़ = दिमाग.
मद्यप = शराबी.
मनोरथ = इच्छा, चाह
ममता = अपनापन, मोह
मरुस्थल = रेतीला, मैदान
मर्यादा = हद, सीम.
मल = विष्टा
महत् = बड़ा.
महत्व = बड़ापन.
महात्यागी = बड़ा छोड़नेवाला,
महाभारत = बड़ी लड़ाई
महावाक्य = बड़ा जुमला, "तत्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" इत्यादि को वेदान्त में महावाक्य कहते हैं
महिमा = बड़ाई, तारीफ.
मातृभाषा = माकी बोली जो बोली घर मे बोली, जाती है
मादक = नशेकी वस्तु
माननीय = स्वीकार करने योग्य.
मानसिक = मन सम्बन्धी.
मिशन = धर्मप्रचार.
मूत्र = पेशाब.
मृत = मरा हुआ.
मृत्यु = मौत.
मोजिज़ा = करामात, परचा,, अद्भुत बात.
मोह = प्रीत.
मोक्ष = छूटना.
मौनव्रत = चुपचाप रहना.

य.

यथायोग्य = जैसा चाहिये वैसा.
यथार्थ = जैसा का तैसा.
यथावत् = अनुसार.
यथोचित = मुनासिब.
यज्ञोपवित = जनेऊ,
यावत् = जबतक.
युद्धाभिलाषी = लड़ाई चाहनेवाला.
युवा = जवान.
युनिटेरियन = अद्वैतवादी, वेदान्ती.
योगाभ्यास = योगसाधन.
येग = टापर.

र.

रजस्वला = पुष्पवती, मासिकधर्मवाली.
रज्जु = डोरी, रस्सी
रहवास = रहने की जगह
रहस्य = छुपी हुई बात,

रक्षा = बचाव.
राग = स्नेह.
राजकीय = राजाका, सरकारी.
राज्यसभा = राजा की सभा.
राज्याधिकारी = हाकिम.
रामायण = रामचरित्र.
रीफोरमर = इस्लाह देनेवाला, धर्म्म प्रचारक.
रोमन कैथोलिक = इसाईयो का एक फिर्का जिस का महत पोप कहलाता है.
रंक = दरिद्री, गरीब.

ल

लघुशंका = पेशाब.
लज्जा = लाज, शर्म.
लम्पट = दगाबाज.
लिपायमान = लिपटा हुआ.
लौकिक = लोकको, ससारी.
लंका = जो टापू हिन्दुस्तान के दक्षिण मे है उस का नाम लका है.

व

वायु = पवन.
व्याख्या = वर्णन.
व्यायाम = कसरत.
वास्तव = दर असल.
वितर्क = विचार.
विदित = मशहूर, प्रसिद्ध.
विद्यमान = मौजूद.
विद्याध्ययन = इल्म का पढना.
विद्यालय = पाठशाला.
विपरीत = उलटा, विरुद्ध.
विभा = चमक, प्रकाश.
विवेक = ज्ञान, बोध.
विशेष = अधिक, ज्यादा.
विश्व = ससार.
वीर्य = धातु, बल.
वीर्यवाहिनी = धातुवाली.
वृत्तान्त = हाल.
वेतन = तन्खा, मोल.

श.

शक्ति = सामर्थ्य.
शरीफ़ = अच्छा.
शरीर = देह, बदन.
श्रवण = कान, कर्ण, श्रोत्र.
शारीरिक = शरीर सम्बन्धी.
शाला = स्कूल, मदर्सा.
शान्ति = स्थिरता.
शीघ्र = जल्द.
श्रुति = कान, वेद.
श्रेणी = पंक्ति, अवली.
श्रेष्ठतर = सब से अच्छा.
शोकातुर = रंजीदा.
श्रोत्री = सुननेवाला.
शौच = पवित्र, पाक.
शंका = शक, भ्रम, सदेह.

ष.

षोडश = सोलह.

स.

सच्चिदानन्द = भगवान्, ईश्वर.
सत्य = देखो पृष्ट २१९.
सदाचार = अच्छा चलन.
सदुपदेश = अच्छी नसीहत.
सनातन = कदीमी, आदिका.

सन्यास = आहारहित, चौथे आश्रम का नाम है.
सफलता = फल सहित होना.
सविकल्प = संदेह युक्त.
समाधान = उत्तर.
सर = सरोवर.
सर्वजनिक = सब जनों में होनेवाला.
सर्वथा = सबतरह.
सहनशक्ति = सहने की सामर्थ्य बरदास्त करने की ताकत.
सहमत = एकराय.
सहानुभवता = साथ मिलकर अनुभव करना.
सहानुभूति = हमदर्दी, दुखसुख का साथी होना.
सहायकता = मददगारी.
संकल्प = देखो पृष्ट ७७
संकेत = इशारा.
संतति = औलाद.
संतान = औलाद.
संथा = सबक, पाठ.
संदिग्ध = संदेह युक्त.
संपाद = धनमाल.
संप्रज्ञात = अच्छी तरह जाना हुआ.
संबंध = रिश्ता
संबंधी = रिश्तेदार.
संवाद = बहस.
संभव = मुमकिन, होसकना.
संभावना = इज्जत, कद्र.
संस्कार = भावना.
संस्कृत = एक बोली का नाम है.
संक्षेप = मुख्तसिर.

स्तन = कुच, छाती.
स्मरण = याद.
स्वजातीय = अपनी जात का.
स्वतंत्र = स्वाधीन.
स्वतः = आपोआप.
स्वयं = खुद.
शाखा = डाली, टहनी.
सात्विक = सतोगुण वृत्ति.
सामाजिक = पंचायती.
साहस = हिम्मत.
स्थानापन्न = एवजी.
स्थापित = ठहराया हुआ, मुकर्रर.
स्मारक = यादगार.
स्वाधीनता = आजादी.
स्वाभाविक = स्वभावसे.
स्वार्थ = अपना मतलब.
सिद्धांत = अंतमें साबित हुआ अर्थ.
स्थिति = ठहराव.
स्वीकार = मंजूर.
सुकुमारता = कोमलता, नजाकत
सुगोच्चार्य = आसानी से बोलने आनेके.
सुगमता = आसानी.
सुलभता = आसानी.
शुष्क = सूखा.
सुषुप्ति = सोने की हालत.
स्तुति = बड़ाई, तारीफ, देखो पृष्ठ
सूक्ष्म = पतला.
स्थूल = बड़ा.
सौरभ = बड़ा मरतबा.
सौम्य = सुन्दर.

ह.

हकताआला = सत्यरूप परमात्मा, ईश्वर.
हुक्कुल यकीन = देखो पृष्ठ ६९.
हठवादी = हठसे वाद करनेवाला.
हदीस = मुसल्मानों का धर्मशास्त्र.
हनन = मारना.
हब्श = देशका नाम, एफरिका.
हाजत = चाह.
ह्री = लाज.
हृदयग्राही = मन को पकडनेवाला.
हेतु = कारण.

क्ष.

क्षणभंगुर = थोडे वक्तमे नाश होनेवाला.
क्षय = नाश.
क्षोभ = घबराहट.

त्र.

त्रिमूर्तिवाद = ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनो देवताओं का कथन.

ज्ञ.

ज्ञात = जाना हुआ.

॥ शुभम ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	१२	मान्सिक	मानसिक
२२	१२	इन्द्रि	इन्द्री
३६	११	मवाशों	बास बास
४८	१२	अवया	अथवा
१५८	१३	स्रियों	स्त्रियों
१८५	२२	उत्साहे	उत्साह
१९६	१०	महात्याभी	महात्यागी
२००	३	कुबंर	कुवंर
२०३	१०	वो	वा
२१३	१३	स्यिर	स्थिर
२२४	१२	,,	,,
२४४	१	अयात	अर्थात्
२४४	१	स	से
२५२	१०	इंद्रियाँ	इंद्रियों
२५६	९	शिवगिरी	शिवगिरि